हिन्दी काव्य
पिछला दशक

हिन्दी काव्य : पिछला दशक

गोविन्द शर्मा 'रजनीश'

मंगल प्रकाशन
गोविंदराजियों का रास्ता
जयपुर

प्रकाशक
उमरावसिंह मंगल
संचालक,
मंगल प्रकाशन
गोविंदराजिया का रास्ता
जयपुर

प्रथम संस्करण अगस्त १९६४
मूल्य दस रुपया
संशोधित मूल्य [illegible] मात्र

मुद्रक—
मंगल प्रकाशन
— प्रेस विभाग
जयपुर

विषय-सूची

से नयी कविता तक' नाद म जोडा गया है, जिसमे प्रयोगवादियों और नयी कविता के कथित प्रवर्तकों द्वारा उठाये कतिपय प्रश्नों और भ्रान्तियों का निराकरण किया है। इधर मेरे साम्प्रतिक अध्ययन ने इस तथ्य की पुष्टि करदी है कि इस ह्रासोन्मुख काव्य के सर्जन के मूल मे सक्रान्तिकालीन कतिपय परिस्थितियाँ विशेष रूप से सजग हैं। नये भाव बोध, अभिनव उपमान और प्रतीकों की दुहाई देने वाले नये कवि भी अनुभूत करने लगे हैं कि नयी कविता अब रूढिग्रस्त हो चुकी है।

इस प्रबन्ध के लिखने में मैंने अनेक मूल तथा समीक्षात्मक पुस्तकों, पत्रिकाओं से सहायता ली है। मैं उनके अध्येताओं और सम्पादकों का आभारी हूँ।

श्रद्धेय डॉ० माताप्रसाद गुप्त, सम्प्रति निदेशक, हिन्दी विद्यापीठ, आगरा के कुशल निदेशन के लिये कृतज्ञ हूँ जिनकी सद्भावना मुझे सतत् परिश्रम करने के लिये प्रेरित करती रही है। श्री नित्यानन्द तिवारी और श्री सत्यनारायण दीक्षित ने समय-समय पर जो सुझाव और पाण्डुलिपि को तैयार करने म सहायता दी है, उसके लिये वे साधुवाद के पात्र हैं। पुस्तक के शीघ्र प्रकाशनार्थ श्री उमरावसिंह मगल भी धन्यवाद के पात्र हैं।

जयपुर

दिनाङ्क १ जौलाई १९६४ — गोविन्द 'रजनीश'



अपनी बात

नयी कविता के प्रति अभिरुचि और जिज्ञासा ही इस विवेचन प्रबन्ध के लिखने मे प्रेरक रहे हैं। विषय के विस्तृत होते हुए भी कहीं कहीं प्रबन्ध की सीमाओं के कारण दायरा मे बँधना पड़ा है।

इस विषय पर मुझसे पूर्व श्री प्रतापनारायण टंडन ने 'हिन्दी साहित्य पिछला दशक' मे हिन्दी काव्य पर एक अध्याय लिखा है। पर उक्त कृति मे अनिवार्य तथा मौलिक तथ्यो के अभाव मे केवल परिचयात्मक दृष्टि को अपनाते हुए पिछले दशक के काव्य की सतही समीक्षा हुई है। उक्त अभाव ने मेरे मानस को कुरेदा और इस विषय पर लिखने के लिये प्रेरित किया।

दशक के काव्य को समझने के लिए पूर्व पीठिका अनिवार्य हो गई थी। सर्वेक्षण मे कुछ विश्लेषणात्मक, कुछ परिचयात्मक दृष्टिकोण अपनाया गया है। दशक का काव्य 'नयी कविता' से आक्रान्त होने के कारण, उसी को ध्यान मे रखते हुए अभिव्यक्ति के उपादानो का विवेचन किया गया है। प्रवृत्तियाँ वर्गीकृत आधारो पर ली गई हैं। प्रेम और सौन्दर्य तथा प्रकृति वर्णन के अध्यायो मे वाद के सकुचित दायरे को भटकने का प्रयास किया है। पाश्चात्य काव्य और पिछला दशक मे पाश्चात्य काव्य और उससे उद्भूत नयी कविता' का तुलनात्मक अध्ययन किया गया है।

नयी कविता इस दशक की प्रमुख काव्यगत प्रवृत्ति रही है। नये आयामो में ढली, नये परिवेशो से सज्जित इस कविता की समीक्षा ही मेरा ध्येय बन गई थी।

मैंने अपने एम ए (राजस्थान विश्वविद्यालय) के विवेचन प्रबन्ध को बिना परिवर्तित किये प्रकाशनार्थ दे दिया है। केवल अन्तिम अध्याय 'प्रयोगवाद

—x—

१ | पूर्व-पीठिका

हिन्दी काव्य की नवचेतना

हिन्दी-काव्य की नवचेतना को तीन युगों में विभक्त किया जा सकता है —

(१) उन्मेष युग (सन् १८५० से १९०० तक)।
(२) सुधार-युग (सन् १९०० से १९२० तक)
(३) अभ्युदय युग (सन् १९२० से आज तक)

काव्य के भावलोक का निर्माण अनेक सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक परिस्थितियों के मध्य होता है। अत: इन परिस्थितियों का विश्लेषण संक्षेप में किया जा रहा है।

(१) उन्मेष युग

१९ वीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में रीतिबद्ध कविता में विचित्र नवीनता फैल गई थी। जनता और सत्ताधारी के मध्य गहरी खाई खुदी हुई थी। सामाजिक इकाई समाप्त हो रही थी। प्रताड़ित जनता इसे दैवीय प्रताड़ना समझकर भिक्षाजीवी बनी हुई थी। इन परिस्थितियों की प्रेरणा का प्रतिफलन जीवन के विलक्षण और सुदृढ़ रूढ़िबद्धता में प्रकट हुआ। मौलिकता के स्थान पर रीति प्रियता अपना स्थान बना रही थी। सुदूर पश्चिम से आये गौरांग वणिकों का छद्मजाल भारतीयों को कसता गया। मराठा और मुगल साम्राज्य के निःशेष दीपक इस भीषण झंझावात के प्रबल झोंके का सामना नहीं कर सके। सामन्तों

इस समय स्वतन्त्रता के लिए अमर्त्यवीर पुत्रों का आह्वान किया गया।[1] राष्ट्रीय चेतना के सजग और प्रबुद्ध प्रहरी मैथिलीशरण गुप्त ने अतीत का गुणगान किया।[2] दहेज ठहराना अभिशाप माना गया।[3] ठहरौनी का विरोध हुआ।[4] बाह्याडम्बरों के विरोध में प० नाथूराम 'शंकर' का 'गर्भरंडा रहस्य' सैयद अमीर अली 'मीर' का 'बूढे का ब्याह' जैसे सशक्त व्यंग्य काव्य लिखे गये। 'हरिऔध' ने अपनी लेखनी से विधवा पुनर्विवाह पर रोक देने वाली सामाजिक व्यवस्था पर आक्रोश मय प्रहार किया है।[5] पारिवारिक जीवन में नारी को सम्मान प्राप्त हुआ।[6]

इस युग में ब्रजभाषा अपदस्थ हो गई। खड़ी बोली में सम्पूर्ण साहित्य लिखा जाने लगा। यद्यपि खड़ी बोली का शैशव-काल था फिर भी द्विवेदी जी के प्रयास से भाषा परिमार्जित और प्रांजल रूप में प्रयुक्त हुई।

कांग्रेस का अधिनायकत्व युग पुरुष महात्मा गांधी के हाथों में केन्द्रित हो गया। गांधीजी ने सत्य और अहिंसा के अस्त्रों से राजनैतिक स्वतन्त्रता के लिये लक्ष्यवेधन प्रारम्भ कर दिया। राजनैतिक गतिविधियों ने भी तेजी से काव्य को अनुप्राणित किया। गांधीवादियों के प्रति श्रद्धा का प्रादुर्भाव हुआ।[7]

भारतेन्दु युग में जिस चेतना का स्फुरण हुआ, उसे परिमार्जित कर इस युग ने विकसित किया। साहित्य में भी प्राचीन मर्यादाओं, मूल्यों, अन्ध-

---

१ जयशंकर प्रसाद, 'चन्द्रगुप्त' (नाटक), चतुर्थ अङ्क पृष्ठ १७१।

२ मैथिलीशरण गुप्त, 'भारत भारती', (२३ वां संस्करण) अतीत खण्ड, पृष्ठ २५।

३ ठाकुर गोपालशरण सिंह, 'दहेज की कुप्रथा', सरस्वती जुलाई १९१५।

४ महावीरप्रसाद द्विवेदी, 'ठहरौनी', सरस्वती, नवम्बर १९०६।

५ अयोध्यासिंह उपाध्याय, 'चुभते चौपदे', पृष्ठ १६१।

६ श्रीमती पार्वतीदेवी, 'भारतोद्धार के मूल उपाय', स्त्री दर्पण, जुलाई १९१४।

७ भारती, 'विचित्र संगम', प्रभा, फरवरी सन् १९२२।

विश्वासों, परम्पराओं का उन्मूलन हुआ, जिससे काव्य अव्याहृत और यथार्थ स्वरूप ग्रहण कर कलात्मक दृष्टि से अपने लोक-मंगलकारी लक्ष्य की ओर उन्मुख हो सका।

(३) अभ्युदय युग

भारतेन्दु-युगीन और द्विवेदी-युगीन कविताएं किसी भी वाद के अन्तर्गत नहीं आती। इस नवीन युग में आलोचकों ने कविता को वादों का आवरण पहना दिया। नये वादों का आविर्भाव कविता के आकस्मिक मोड़ का सूचक रहा है।

इस युग का काव्य कलात्मक स्वतन्त्रता के लिये प्यासा रहा है, क्योंकि उसमें विशिष्ट मूल्यों के प्रति तीव्र अनुभूति सन्निहित थी। यही कारण है कि इस युग का काव्य स्थूल का विरोधी और सूक्ष्म का साधक हुआ क्योंकि उस स्थूलता में न तो कलात्मकता थी न यथार्थ जीवन की अभिव्यंजनाएं। सूक्ष्म साधना में यथार्थ अनुभूतियों की अभिव्यंजना होती है तथा स्पन्दनों का भी सरलता से अंकित किया जा सकता है।

राजनैतिक स्वतन्त्रता के संघर्ष ने नये मूल्यों की प्राप्ति के लिए देश को सन्नद्ध कर दिया। काव्य की प्रतिमा भी जीर्ण-शीर्ण परिवेश को उतारकर नयी दिशा की ओर उन्मुख होती रही। नवीन का आह्वान हुआ। प्राथमिक रूप में जीर्ण-शीर्ण परम्पराओं का विरोध विगलित कुण्ठाओं और निराशाओं के रूप में हुआ। लेकिन अन्त में संघर्ष हुआ और स्वच्छन्दता का स्वर मुखर हुआ।[1]

विवेच्य दशक (१९५१–६०) का काव्य अभ्युदय युग की इस साहित्यिक चेतना से अनुस्यूत तथा अनुप्राणित है। इस युग से पिछले दशक तक की घट-

१ सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला', 'गीतिका', तृतीय संस्करण, पृष्ठ ३।

नाए सूत्रबद्ध तथा शृङ्खलायुक्त हैं। अतः इसी के परिप्रेक्ष्य में हमें विवेच्य दशक की साहित्यिक चेतना को देखना चाहिए।

१. छायावाद

द्विवेदी युग की इतिवृत्तात्मक, गद्यवत्, बहिर्मुखी कविताओं की प्रतिक्रिया स्वरूप छायावाद का विकास हुआ। विशिष्ट कारणों से ह्रासोन्मुख छायावाद अवसान से पूर्व प्रौढ़ावस्था में आ चुका था।

छायावादी कवि ने वर्ण्य वस्तु का यथा तथ्य वर्णन न करके अपनी सूक्ष्म भावनाओं की अभिव्यंजना की। यह स्थूल के प्रति सूक्ष्म की प्रतिक्रिया थी। वह मूर्त से अमूर्त की ओर गया। विषय की गौणता तथा भावनाओं के चित्रण की प्रमुखता पुरातन पंथियों को अस्पष्ट लगी, जिसे व्यंग्य में छायावाद के नाम से अभिहित किया।

आलोचकों ने छायावाद के सम्बन्ध में विभिन्न दृष्टिकोण प्रस्तुत किये है —

रामचन्द्र शुक्ल के अनुसार—"छायावाद समझकर जो कविताएं हिंदी मे लिखी जाती हैं उनमें से अधिकांश का छायावाद या रहस्यवाद से कोई सम्बन्ध नहीं होता। उनमे से कुछ तो विलायती अभिव्यंजनावाद (क्रोचे का सिद्धांत) के आदर्श पर रची हुई बंगला कविताओं की नकल पर, और कुछ अंग्रेजी कविताओं के लाक्षणिक, चमत्कारपूर्ण वाक्य शब्द प्रति-शब्द उठाकर जोड़ी जाती हैं।"[१]

रामचन्द्र शुक्ल ने छायावाद को अभिव्यञ्जना की शैली मात्र माना है। किन्तु एक अन्य स्थान पर उन्होंने छायावाद और रहस्यवाद को अभिन्न भी माना है। यथा—

---

१ रामचन्द्र शुक्ल, 'चिन्तामणि', द्वितीय भाग, (काव्य मे रहस्यवाद)।

"छायावाद शब्द का प्रयोग दो अर्थों में समझना चाहिये। एक तो रहस्य-वाद के अर्थ मे जहा उसका सम्बन्ध काव्यवस्तु से होता है अर्थात् जहा कवि उस अनन्त और अज्ञात प्रियतम को आलम्बन बना कर अत्यन्त चित्रमयी भाषा में प्रेम की अनेक प्रकार की व्यञ्जना करता है। 'छायावाद' शब्द का दूसरा प्रयोग काव्यशैली या पद्धति विशेष के व्यापक अर्थ मे है।"[1]

रामकुमार वर्मा ने छायावाद को, परमात्मा की छाया आत्मा में, आत्मा की छाया परमात्मा मे पड़ने को माना है। एक स्थान पर कहा है—"उसकी छाया में सान्त का अनन्त से मिलाप है।"[2]

शान्तिप्रिय द्विवेदी का मत है—"छायावाद एक दार्शनिक अनुभूति है। अत दोनो मे परस्पर सम्बन्ध है।"[3]

डॉ० केसरी नारायण शुक्ल ने रामचन्द्र शुक्ल का अनुमोदन करते हुए कहा है—"छायावाद का अपना इतिहास है। इसका मूल बंगला साहित्य के 'छाया सदृश' पद मे मिलता है। ब्रह्म समाज की उपासना का ढग रहस्यात्मक है। इसके उपासना के गीतो में उस प्रियतम की झलक का वर्णन होता है जिसका उपासक को कभी कभी आंशिक आभास मात्र मिलता है। उपासक के लिए प्रतीको का प्रयोग आवश्यक हो जाता है क्योंकि इस माध्यम द्वारा वह 'दिव्य ज्योति' को धूमिल बनाकर आत्मा के साक्षात्कार के उपयुक्त बनाता है। उस प्रियतम की अपूर्व प्रतिकृति होने के कारण इन प्रतीको (छाया सदृश) से युक्त कविता का नाम छायावादी कविता पड़ा।"[4]

डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी का विचार है—"छायावाद के मूल में पाश्चात्य रहस्यवादी भावना अवश्य थी। इस श्रेणी (छायावाद) की मूल प्रेरणा अंग्रेजी की रोमांटिक भावधारा की कविता से प्राप्त हुई थी और इसमें सन्देह

---

१ रामचन्द्र शुक्ल, 'हिन्दी साहित्य का इतिहास' पृष्ठ ६६८।

२ डा० रामकुमार वर्मा, 'कविता' (साहित्य समालोचना)।

३ शान्तिप्रिय द्विवेदी, 'कवि और काव्य' पृष्ठ १५०।

४ डॉ० केसरीनारायण शुक्ल, 'आधुनिक काव्यधारा', पृष्ठ २६२–२६३।

नहीं कि उक्त भावधारा की पृष्ठभूमि में ईसाई सन्तों की रहस्यवादी साधना अवश्य थी।"[1]

छायावाद की वरयित्री महादेवी वर्मा का विचार है—"यह युग (छायावाद) पाश्चात्य साहित्य से प्रभावित, और बंगला की नवीन काव्यधारा से परिचित तो था ही साथ ही उसके सामने भारतीय परम्परा भी रही।"[2]

लेकिन इसके विरोधी मतोंवाले विद्वान भी हैं। स्वयं 'प्रसाद' ने कहा है—"छायावाद में रहस्यवाद को कोई स्थान प्राप्त नहीं है।"

"मोती के भीतर छाया की जैसी तरलता होती है वैसी ही कान्ति की तरलता अङ्ग में लावण्य कही जाती है। इस लावण्य को संस्कृत साहित्य में छाया और विच्छित्ति के द्वारा कुछ लोगों ने निरूपित किया था। शब्द और अर्थ की स्वाभाविक वक्रता, विच्छित्ति, छाया और कान्ति का सृजन करती है। हाँ, मूल में यह रहस्यवाद भी नहीं है—छाया भारतीय दृष्टि से, अनुभूति और अभिव्यक्ति की भंगिमा पर निर्भर करती है। ध्वन्यात्मकता, लाक्षणिकता, सौन्दर्यमय प्रतीक-विधान तथा उपचार-वक्रता के साथ स्वानुभूति की विवृति छायावाद की विशेषताएँ हैं।"[3]

नन्ददुलारे वाजपेयी का मत है—"छायावाद को हम शुक्लजी के अनुसार अभिव्यक्ति की एक लाक्षणिक प्रणाली नहीं मान सकेंगे। इसमें एक नूतन सांस्कृतिक मनोभावना का उद्गम है और एक स्वतन्त्र दर्शन की नियोजना भी पूर्ववर्ती काव्य से इसका स्पष्टतः पृथक अस्तित्व और गहराई है।"[4]

---

१. डॉ० हजारीप्रसाद द्विवेदी, 'अवन्तिका' (काव्यालोचना), जनवरी १९५४ पृष्ठ २११।

२. श्रीमती महादेवी वर्मा, 'आधुनिक कवि', भूमिका।

३. जयशंकर प्रसाद 'काव्य और कला तथा अन्य निबंध', (छायावाद और यथार्थवाद)।

४. नन्ददुलारे वाजपेयी, 'आधुनिक साहित्य'।

डॉ० नगेन्द्र के अनुसार—"निष्कर्ष यह है कि छायावाद एक विशेष प्रकार की भावपद्धति है। जीवन के प्रति एक विशेष भावात्मक दृष्टिकोण है। (जिस प्रकार भक्ति काव्य जीवन के प्रति एक प्रकार का भावात्मक दृष्टिकोण था और रीतिकाव्य एक दूसरे का उसी प्रकार छायावाद भी एक विशेष प्रकार का भावात्मक दृष्टिकोण है।) इस दृष्टिकोण का आधेय नव-जीवन के स्वप्नों और कुण्ठाओं के सम्मिश्रण से बना है, प्रवृत्ति अन्तर्मुखी तथा वायवी है, और अभिव्यक्ति हुई है प्राय प्रकृति के प्रतीकों द्वारा।"[१]

डॉ० देवराज का मत है—"छायावाद साधारण गीतिकाव्य, प्रेमकाव्य या रहस्यवादी काव्य नहीं है। उसकी तीन विशेषताएं हैं—

(१) धूमिलता या अस्पष्टता।
(२) बारीकी या गुम्फन की सूक्ष्मता।
(३) काल्पनिकता, कल्पना वैभव।"[२]

अन्यत्र डा० देवराज ने अपने मत का खण्डन किया है। छायावाद को प्रकृति काव्य और लौकिक काव्य माना है—"छायावाद मुख्यत प्रकृति काव्य और लौकिक प्रेमकाव्य है-आध्यात्मिकता का आरोप करना उचित नहीं है।"[३]

हाथी से अपरिचित ग्राम में हाथी पहुँच गया। गांव वालों के अन्तस्तल में उसके प्रति अनेक कौतूहल थे। सब ने अपने अपने ढंगों से एक एक अङ्ग का विश्लेषण कर उसका नामकरण किया। इसी प्रकार छायावाद की व्याख्या में एकांगी दृष्टिकोण अपनाया गया है। वस्तुत ये जितनी परिभाषाएं हैं उनमें प्रवृत्तियों का विश्लेषण मात्र ही किया गया है। छायावाद अभिव्यञ्जना प्रणाली विशेष भी है। स्थूल के प्रति सूक्ष्म की प्रतिक्रिया भी है। प्रकृति में चेतन सत्ता का आरोप भी है। इस प्रकार अनेक प्रवृत्तियों से समन्वित छायावाद को इन व्याख्याओं के सकुचित दायरे में नहीं बाँधा जा सकता है।

---

१ डा० नगेन्द्र, 'आधुनिक हिन्दी कविता की प्रमुख प्रवृत्तियां', पृष्ठ १५।
२ डॉ० देवराज, 'छायावाद का पतन', पृष्ठ ११।
३ डॉ० देवराज, 'छायावाद का पतन', पृष्ठ १७।

> ाराश्रयों के सम्बन्ध मे इतना ही कहना पर्याप्त है कि आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने छायावादी कविता पर सहानुभूतिपूर्वक विचार नहीं किया। उनके अनुयायियों ने उनका अनुमोदन किया। डा० नगेन्द्र तथा नन्ददुलारे वाजपेयी ने सहानुभूतिपूर्ण दृष्टिकोण अपनाया। यह बात माननीय है कि छायावाद पर अंग्रेजी के रोमांटिक काव्य और बंगला के रवीन्द्रनाथ की कविताओं का कुछ प्रभाव पड़ा है, लेकिन छायावाद को उनकी नकल मात्र नहीं माना जा सकता।

दूसरे, रहस्यवाद और छायावाद पृथक्-पृथक् हैं। छायावादियों ने अनेक स्थलों पर रहस्यवादी भावनाओं का प्रस्फुटन अवश्य किया है, लेकिन दोनों को एक दूसरे का प्रतिरूप मान लेना असंगत है।

छायावाद के प्रसाद, पंत निराला, महादेवी, चार प्रमुख स्तम्भ हैं। अन्य कवियों मे रामकुमार वर्मा, हरिवंशराय 'बच्चन', रामधारीसिंह 'दिनकर' नरेन्द्र शर्मा अंचल', माखनलाल चतुर्वेदी आदि प्रमुख हैं। इनको स्वच्छन्दता वादी भी कहा गया है।

छायावादी युग की सर्वप्रमुख कृति है "कामायनी" और जयशंकर 'प्रसाद' हैं इस युग के सर्वप्रमुख प्रवर्तक। रामचन्द्र शुक्ल के मतानुसार छायावादी युग के प्रवर्तक 'प्रसाद' न होकर, मैथिलीशरण गुप्त और मुकुटधर पाण्डेय हैं।[1] लेकिन शुक्लजी का मत भ्रामक है। गुप्त से बहुत पहले 'प्रसाद' ने 'इन्दु' में अनेक छायावादी कविताएं लिखी थी। सुमित्रानन्दन पंत ने लिखा है—"प्रसाद जी को हम हिन्दी में छायावाद का जनक मानते हैं।"[2]

छायावादी युग की प्रमुख प्रवृत्तियां

युग की आर्थिक सामाजिक राजनैतिक और सांस्कृतिक पूर्व पीठिका के आधार पर छायावादी युग की प्रमुख प्रवृत्तियां इस प्रकार हैं —

१ रामचन्द्र शुक्ल, 'हिन्दी साहित्य का इतिहास', पृष्ठ ६५०।

२ सुमित्रानन्दन पंत, अवन्तिका' (काव्यालोचनांक) पृष्ठ १६०।

१. वैयक्तिकता एव विषय गत प्रवृत्तियाँ

डॉ० केसरीनारायण शुक्ल ने वैयक्तिकता को छायावाद की प्रमुख प्रवृत्तियों में से एक प्रवृत्ति स्वीकार करते हुए कहा है— "छायावादी कविता में बाह्य वास्तविकता से अपने को अलग करने की प्रवृत्ति लक्षित होती है। छायावादी कवि बाह्य पदार्थों के वर्णन में प्रवृत्त न होकर अपनी आन्तरिक अनुभूतियों में अधिक डूबे हुए प्रतीत होते हैं। बाह्यात्मकता से अधिक अन्तर्दर्शन की प्रवृत्ति छायावादी कविता की प्रधान विशिष्टता है।"[१] डॉ० हजारीप्रसाद द्विवेदी ने भी लिखा है— "विषय इसमें (छायावाद में) गौण हो गया, विषयी (कवि) प्रधान।"[२]

वैयक्तिकता ने निजी अनुभूतियों को प्रधानता दी तथा आत्मप्रत्यय की भावना को दृढ किया। दूसरी ओर अतिशय कल्पना को प्रश्रय मिला। हृदय की सूक्ष्मातिसूक्ष्म भावनाओं को साकार रूप प्रदान किया गया।

२ प्रकृति के प्रति नूतन दृष्टिकोण

छायावादियों ने हृदयगत भावनाओं का प्रकृति के साथ तादात्म्य किया। हृदय का प्रसार सम्पूर्ण दृश्यजगत के साथ किया। पंत ने प्रकृति के सुन्दर, असुन्दर चित्रों का चित्रण किया —

आज तो सौरभ का मधुमास
शिशिर में भरता सूनी सांस।
वही मधु ऋतु की गुञ्जित डाल
झुकी थी जो यौवन के भार
अकिंचनता में निज तत्काल
सिहर उठती — जीवन है भार।[३]

१ डा० केसरीनारायण शुक्ल, 'आधुनिक काव्यधारा का सांस्कृतिक स्रोत', पृष्ठ १७०।

२ डॉ० हजारीप्रसाद द्विवेदी, 'हिन्दी साहित्य', पृष्ठ ४५५।

३ सुमित्रानन्दन पंत, 'पल्लविनी', पृष्ठ ११६।

प्रकृति-चित्रण मे मानवीकरण इस युग की प्रमुख विशेषता है —

सिंधु सेज पर धरावधू अब
तनिक सकुचित बैठी-सी,
प्रलय निशा की हलचल स्मृति मे
मान किये – सी ऐंठी सी ।[1]

प्रकृति पर नायक-नायिका का आरोप भी हुआ —

सोती थी
जाने कैसे प्रिय आगमन वह
नायक ने चूमे कपोल
डोल उठी वल्लरी की लड़
जैसे हिंडोल ।[2]

३ विषाद और निराशा

इस कोटि में विरहानुभूति, पलायनवाद, संवेदनशीलता, वेदना और निराशा की प्रवृत्तियो की गणना की जा सकती है। कहीं-कहीं पर महादेवी की वेदना तीव्र रूप से मुखर हुई है —

विस्तृत नभ का कोई कोना
मेरा न कभी अपना होना
परिचय इतना इतिहास यही
उमडी कल थी मिट आज चली ।[3]

४ अलौकिक प्रेम की व्यंजना

छायावादी कवि लौकिक प्रेम से अलौकिक की ओर उन्मुख हुए । प्रकृति की ओट मे क्रीडाओ की मति हो चुकी थी । उद्दामवासनाओ को व्यंजित करने

१ प्रसाद, 'कामायनी', आशासग, पृष्ठ २४ ।

२ निराला 'कवि श्री' (जुही की कली) पृष्ठ ८ ।

३ महादेवी वर्मा, 'यामा', पृष्ठ २२७ ।

के लिए अलौकिकता को माध्यम बनाया गया। यौवन की जिस आयु में इन कवियों ने अध्यात्म, अलौकिक, दिव्य प्रेम सम्बन्धी काव्य का सृजन किया, उसमें इतनी परिष्कृत भावनाओं का प्रस्फुटन होना मनोवैज्ञानिक दृष्टि से महती मूल आश्चर्य है। कुछ कविताएं बहुत ही अच्छी हैं जिनमें रहस्यात्मक अनुभूतियों के आध्यात्मिक संकेत मिलते हैं —

हे अनन्त रमणीय ! कौन तुम ?
यह मैं कैसे कह सकता।
कैसे हो ? क्या हो ? इसका तो
भार विचार न सह सकता ?[1]

— — —

न जाने कौन, अये द्युतिमान
जान मुझको अबोध, अज्ञान
फूंक देते छिद्रों में गान।[2]

५ विचार गत प्रवृत्तियां

दर्शन में अध्यात्मवाद, सर्वात्मवाद, मानवतावाद, समाज के क्षेत्र में समन्वयवाद और कला में सौन्दर्यवाद आदि की अभिव्यक्ति छायावाद में हुई है।

६ शैलीगत प्रवृत्तियाँ

पंत ने कोमल कान्त पदावली को प्रयुक्त कर खड़ी बोली को ब्रज भाषा के सदृश सरस बना दिया —

सरलपन ही था उसका मन,
निरालापन था उसका आभूषन
कान से मिले अजान नयन,
सहज था सजा सजीला तन।[3]

---

१ प्रसाद, 'कामायनी', (आशा सर्ग) पृष्ठ २६।
२ पंत, 'आधुनिक कवि', पृष्ठ २४, (दशम संस्करण)।
३ पंत, 'आधुनिक कवि' (उच्छ्वास की बालिका) पृष्ठ ६,(पंचम संस्करण)।

मृदु मन्द–मन्द मन्थर–मन्थर।
लघु तरिणी हंसिनी सी सुन्दर।
तिर रही खोल पालो के पर।[1]

छायावादी कवियों ने अलंकारों में भी अभिनव अलंकारों को प्रयुक्त किया विरोधाभास, रूपकातिशयोक्ति, विशेषण विपर्यय, मानवीकरण आदि को अधिक प्रयुक्त किया।

पिछले दशक में छायावाद का ह्रास दृष्टिगत हुआ। 'प्रसाद' दिवंगत हो गए थे। 'पंत' ने मार्ग परिवर्तन कर लिया था। निराला का मानसिक सन्तुलन बिगड़ गया था। महादेवी ठहरी अबला। इसके ह्रासोन्मुख कारणों का उल्लेख करते हुए महादेवी वर्मा ने कहा है—"छायावाद ने कोई रूढ़िगत अध्यात्म या वर्गगत सिद्धान्तों का संचय न देकर हमें केवल समष्टिगत चेतना और सूक्ष्मगत सौन्दर्य सत्ता की ओर जागरूक कर दिया था, इसी से यथार्थ रूप में उसे ग्रहण करना कठिन हो गया था।"[2] इसका पूर्ण अवसान तो नहीं हुआ था। इसके भग्नचिह्न पिछले दशक में भी शेष रह हैं।

२. प्रगतिवाद

सन् १९३५ से काव्य और राजनीति के क्षेत्र में एक विशिष्ट धारा प्रवाहित हुई जिसको प्रगतिवाद के नाम से अभिहित किया गया। इस समय मार्क्स दर्शन का क्षितिज शनैः–शनैः व्यापक हो रहा था। समाजवाद अब अन्तर्राष्ट्रीय धरातल पर विचर रहा था। सन् १९१७ में रूसी क्रांति ने जो अनुपम सफलता प्राप्त की उससे मार्क्सवादी भौतिक दर्शन को प्रशस्त और सुदृढ़ मार्ग प्राप्त हुआ। सन् १९३५ तक रूस में साम्यवादी व्यवस्था उन्नति के चरम शिखर पर थी। भारत में भी प्रगतिशील तत्वों का समावेश और प्रस्फुटन इसी क्रांति से

---

१ पंत, 'आधुनिक कवि', (नौका विहार) पृष्ठ ४०, (दशम संस्करण)।

२ महादेवी वर्मा, आधुनिक कवि', (तृतीय संस्करण) भूमिका, पृष्ठ १६।

प्रभावित होकर हुआ । सन् १९३६ में प्रगतिशील संघ का अधिवेशन प्रेमचन्द की अध्यक्षता में हुआ।

वर्ग सघर्ष की पाश्चात्य और भारतीय परिस्थितियों में अन्तर था। अंग्रेजो की नीति से इस देश में औद्योगीकरण पनपने नहीं पा रहा था। कच्चे माल के बदले तैयार माल का आयात हो रहा था। करो का बाहुल्य था । यह भी आर्थिक शोषण का एक रूप था। देश में जो थोड़ा बहुत औद्योगीकरण हो रहा था, उससे दो वर्ग पैदा हो रहे थे । एक शोषक वर्ग, तो दूसरा सर्वहारा या शोषित वर्ग। अत प्रगतिवादियो ने साम्राज्यवाद और पूजीवाद दोनो के विरुद्ध नारा बुलन्द किया। श्रमिको और कृषको की दयनीय अवस्था को देखकर उनके हृदय मे आक्रोश था। द्वितीय विश्वयुद्ध की महगाई ने मध्यवर्ग को भी विचलित कर दिया। फलस्वरूप उसने भी प्रगतिवाद का साथ दिया।

साहित्य में प्रगति तत्व सदैव से रहे हैं। प्रगतिशील और प्रगतिवाद में एक महान अन्तर है। प्रगतिवाद राजनतिक विचारधारा को लेकर आया, और इसी के माध्यम से वह सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक, सास्कृतिक जीवन में क्रान्ति लाना चाहता था । किन्तु प्रगतिशील साहित्य को वाद के सकुचित दायरे मे नही बाधा जा सकता है । साहित्य में आदिकाल से ही प्रगतिशील तत्व मिलते हैं । डा० रागेयराघव ने इसे स्पष्ट करते हुए लिखा है—"महान लेखक प्राय ही अपने भीतर प्रगति तत्व धारण करता है, कितनी अधिक, कितनी कम, इसका निर्धारण प्रगतिशीलता के मापदण्ड कर सकते हैं । प्रगति ससार मे सदव रही है, जीवन में भी, साहित्य मे भी, किन्तु अब हम जिसे प्रगतिशीलता कहते हैं वह सामाजिक तथा राजनैतिक विश्लेषण के आधार की स्थिति है और उसी के आधार पर हम किसी कवि को तत्कालीन समाज और तत्कालीन राजनीति मे सापेक्ष रूप से रख कर उसकी आलोचना करते हैं।"[1]

प्रगतिवादियों के हृदय मे साम्राज्यवाद और पूजीवाद के विरुद्ध विद्वेष की भयकर ज्वाला भडक रही थी। मार्क्स पुज रहा था। पूजीवाद और व्यक्तिवाद का घोर विरोध हो रहा था।

---

१ डॉ० रागेयराघव, 'प्रगतिशील साहित्य के मानदण्ड', पृष्ठ ६–७।

होंगे भस्म अग्नि में जलकर, धरम-करम औ पोथी पत्रा ।
और पुतेगा व्यक्तिवाद के चिकने चेहरे पर अलकतरा ।
सड़ी गली प्राचीन रूढ़ि के भवन गिरेंगे दुर्ग ढहेंगे ॥
युग प्रवाह पर कटे वक्ष से दुनिया भरके ढोंग बहेंगे ।
पतित दलित मस्तक ऊँचा कर, संघर्षों की कथा कहेंगे ।
और मनुज के लिए मनुज के द्वार खुले के खुले रहेंगे ॥[1]

बंगाल के प्रकाल ने अग्नि में आहुति का कार्य किया । जहां कलकत्ते में विलास के उपादान एकत्र किये जा रहे थे, दूसरी ओर धन और अन्न के अभाव में बंगाल की भूखी मानवता तड़फड़ा रही थी । मुट्ठी भर दाना के लिये प्रतिष्ठा और शरीर बेचे जा रहे थे । तभी कवियों का हृदय हुङ्कार कर उठा, उन्होंने साम्राज्यवाद से टक्कर लेने की तैयारी कर दी ।

प्रगतिवाद का संश्लिष्ट अर्थ किसी विचार को अग्रसर या गतिमान करने से है । प्रगति का तात्पर्य विकास से है । वाद का संयोग बाद में हुआ है । लेकिन उसे प्रगतिशील साहित्य के सन्दर्भ में नहीं लिया जा सकता है । प्रगतिवादी अपना लक्ष्य और पथ मार्क्सवादी सिद्धान्त को मानते हैं । डॉ० नगेन्द्र का मत है कि प्रगति का अर्थ आगे बढ़ाना अवश्य है, परन्तु एक विशेष ढंग से, विशेष दिशा में । प्रगतिवाद को समझने के लिये मार्क्सवाद के मूलभूत सिद्धान्तों की ओर संकेत कर देना अनिवार्य है ।

१ द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद

मार्क्स के अनुसार सृष्टि और समाज का उद्भव तथा विकास आध्यात्मिक शक्ति से न होकर भौतिक जगत की वस्तुओं के परस्पर द्वन्द्व से हुआ है । द्वन्द्व में पदार्थ अग्रसर होने के लिये संघर्ष करता है । यही सृष्टि के 'विकास' का मूल कारण है । भौतिक पदार्थ में परिवर्तन का गुण होने से सृष्टि निरन्तर परिवर्तित होती रहती है ।

---

१ गोपालसिंह नेपाली, नवीन नया संसार', पृष्ठ २४ ।

२ इतिहास की भौतिक-व्याख्या

मार्क्स के अनुसार समाज संगठन का मुख्य आधार आर्थिक व्यवस्था है। मानव का प्रत्येक कार्य क्रमार आर्थिक ढांचे मे संचालित होता है । साहित्य, कला, नैतिकता धार्मिकता, का स्वरूप अर्थ-व्यवस्था मे निर्धारित होता है।

३ अतिरिक्त मूल्य का सिद्धान्त

पू जीपतियो की समृद्धि और वभव का आडम्बर, अतिरिक्त मूल्य के लाभ के कारण होता है, जो वस्तुत श्रमिको को मिलना चाहिए।

४. वर्ग-युद्ध

औद्योगिक व्यवस्था से समाज में दो वर्ग उत्पन्न हो जाते हैं। पहला पू जीपति वर्ग, दूसरा शोषित या श्रमिक अथवा सर्वहारा वर्ग। विपरीत परिस्थिति जन्य विषमता से दोनो में वर्ग सघर्ष का बीजारोपण होता है। शोषको के पास धर्म, धन, बल, विद्या, बुद्धि तथा अनेक प्रत्यक्ष तथा अप्रत्यक्ष साधन हैं। अत शोषितो को चेत य करना आवश्यक है क्योंकि उनका शत्रु कोई एक व्यक्ति न होकर एक वर्ग है। इस वर्ग को समाप्त करने के लिए एक क्रान्ति की आवश्यकता है, जिसमे वर्गहीन समाज की स्थापना हो सके।

✓ मार्क्सवाद ने हिन्दी काव्य को इन प्रवृत्तियो से निर्दिष्ट किया —

१ बुद्धिवादी दृष्टिकोण

छायावादी कविता कल्पना उदधि में 'अनन्त', 'असीम' को खोजती रही। लेकिन प्रगतिवाद में भौतिक समस्याओ की उग्रता ने कविता को यथार्थवाद की धरा पर उतार दिया। बुद्धिवादी भावना ने काव्य को गरीबो, दलितो, गन्दी कोठरियों और झोपडियो की ओर प्रेरित किया। साम्यवाद को स्वर्णयुग का अग्रदूत माना गया —

रजत स्वप्न साम्राज्यवाद का ले नयनो में शोभन,
पूँजीवाद निशा भी है होने को आज समापन।

— — —

सभ्य शिष्ट, औ संस्कृत लगते मन को केवल कुत्सित
धर्मनीति औ, सदाचार का मूल्यांकन है जनहित।
साम्यवाद के साथ स्वर्णयुग करता मधुर पदार्पण,
मुक्त निखिल मानवता करती मानव का अभिवादन।[1]

बुद्धिवादी दृष्टिकोण में घोर यथार्थ के साथ व्यंग का समावेश भी हो गया है। कभी यह व्यंग मार्मिक हो जाता है कभी चुटीला। निराला की कविताएं ऐसे ही तीव्र व्यंग से युक्त हैं —

ऐ गर्म पकौडी।
तेल की भुनी
नमक मिर्च की मिली,
ऐ गर्म पकौडी।
मेरी जीभ जल गई
सिसकियाँ निकल रहीं,
लार की बूँदे कितनी टपकी,
पर दाढ तले तुझे ही दबा रखा मैंने
कंजूस ने ज्यो कौडी—
ऐ गर्म पकौडी।
तूने पहले मुझे खीचा,
दिल लेकर फिर कपडे सा फीचा
तेरे लिये छोडी बम्हन की पकाई
मैंने घी की कचौडी—
ऐ गर्म पकौडी।[2]

१ पंत, 'चिदम्बरा', (साम्राज्यवाद) पृष्ठ ४६।
२ निराला, (डॉ० भोलानाथ की पुस्तक 'आधुनिक साहित्य' से उद्धृत)।

२ ईश्वर और धर्म के प्रति क्षोभ

मार्क्सवाद मे धर्म, ईश्वर, आध्यात्मिक-शक्ति सनातन आदर्श, पाप-पुण्य को कोई स्थान नहीं है। रागेय राघव ने ईश्वर को आततायि माना है।[1] बुद्धिवादी दृष्टिकोण के कारण इन कवियों की ईश्वर और धर्म में लवलेश मात्र भी आस्था नहीं थी। उसका स्थान कर्तव्य और विराट् मानव ने ले लिया था। मार्क्सवादियों के अनुसार ईश्वर और धर्म मनुष्य को मनुष्य की ओर से उदासीन ही नहीं करते दया और तज्जन्य तिरस्कार की भावना भी पैदा करते हैं—

ऊपर बहुत दूर रहता है शायद आत्मप्रवचक एक
जिसके प्राणों में विस्मृति है, उर मे सुख श्रीका अतिरेक
जिसका ले ले नाम युगों से मांस लुटाते तुम रोये,
किंतु न चेना जो निशि-निशि भर तब तक
क्षुधातुर तुम सोये,

आज अस्त हो जाय वही अभिशाप अनय रौरव पोषक,
और वही दुर्दान्त महा उन्मत्त हड्डियों का शोषक।[2]

आज का मनुष्य देवताओं का गुलाम नहीं है, न ही उनके दया का पात्र है—

तुम्हें जानना है मनुष्य तुम,
नहीं गुलाम देवताओं के,
और न उनके दयापात्र ही,
और न उनके ऊपर निर्भर,
तुम्हे आत्म-अवलम्ब चाहिये।[3]

---

१ रागेय राघव, पिघलते पत्थर, (आततायि) पृष्ठ १०८।

२ अञ्चल, 'मधूलिका'।

३ बच्चन, 'बंगाल का अकाल'।

३. सामाजिक विषमता

मार्क्सवादी विचारधारा ने सामाजिक विषमता के प्रति नवीन अन्तर्दृष्टि दी। कवियों ने समृद्धि और दारिद्र का मार्मिक चित्रण किया —

एक ओर समृद्धि थिरकती, पास सिसकती है बगाली,
एक देह पर एक न चिथड़ा, एक स्वर्ण के गहनों वाली,
उधर खड़े हैं रम्य महल वे आसमान को छूने वाले,
और बगल में बनी झोपड़ी जिसके छप्पर चूने वाले।[१]

४ श्रमिक और कृषक के प्रति सहानुभूति

विपन्नों की दुर्दशा से वैभवशालियों के प्रति प्रगतिवादियों का आक्रोश होना स्वाभाविक था। कवियों ने इनमे चेतनता का मन्त्र फूकने के लिये श्लाघनीय प्रयास किया —

मन से अब सन्तोष हटाओ।
असन्तोष का नाद उठाओ॥
करो-क्रान्ति का नारा ऊंचा।
भूखो अपनी भूख बढाओ॥[२]

कवि को नृशंस और हत्यारे सम्पन्नो से घृणा हो जाती है —

वे नृशंस हैं, वे जन के श्रम बल से पोषित।
दुहरे धनी जोंक जग के, भू जिनसे शोषित॥[३]

कवि को आश्चर्य है कि इन दुखियों की कर्कश आह से आसमान क्यों नहीं फट जाता है —

---

१ बच्चन, 'बगाल का अकाल'।

२ बच्चन, 'बगाल का अकाल' पृष्ठ २२।

३ पत, युगवाणी' (धनपति) पृ० ४३।

फटता है क्यों आकाश नहीं, सुनकर इनकी कर्कश कराह ।
कुत्ते से बदतर मौत मिली, यह किस स्वदेश की गर्वहाय ॥
सोई हैं उनकी आशाएं कंकड पत्थर पर आज विवश ।
गिर पड़े गाज प्रसादों पर, ढह जाय समुन्नत स्वर्ण कलश ॥[1]

लेकिन इन कवियों को पूर्ण विश्वास है कि सर्वहारा-वर्ग की विजय निश्चित है क्योंकि श्रमिक वर्ग सब कुछ करने में समर्थ है—

अरे सर्वहारा की जय हो
जिनका श्रम जीवन की धारा
आग लगा देंगे जग भर में
जहां जहां शोषण होता है
वहां वहां है रक्त बहाना
जहां जहां मानव रोता है ।[2]

५ नये युग और नये मानव की कल्पना

प्रगतिवादियों का अन्तिम लक्ष्य वर्गहीन समाज की स्थापना है तथा समाज में प्रत्येक व्यक्ति के विकासार्थ समुचित सुविधाएं प्रदान करना है साथ ही यथार्थ धरातल का सस्पर्श कराना है । पंत भी इस आदर्श के कारण प्रगतिवाद की ओर उन्मुख हुए थे—

"ऐतिहासिक विचारधारा से मैं अधिक प्रभावित इसलिये भी हुआ हूं कि उसमें कल्पना के स्रोत को दिशा और वास्तविक पथ मिलता है । छायावाद के दिशाहीन शून्य-सूक्ष्म, आकाश में अति काल्पनिक उड़ान भरने वाली अथवा रहस्यवाद के निर्जन अदृश्य शिखर पर कालहीन विराम करने वाली कल्पना को एक हरी भरी ठोस, जनपूर्ण, धरती मिल जाती है ।"[3]

१ शिवमंगलसिंह 'सुमन', 'बेघरबार', हंस, जुलाई १९४१ ।
२ रांगेय राघव, 'मेधावी', पृ० २६२ ।
३ सुमित्रानन्दन पंत, 'आधुनिक कवि की भूमिका' पृ० ३१ ।

किन्तु प्रगतिवाद में काव्य के कलापक्ष की उपेक्षा की गई। यही कारण है कि इस युग के कवियों की प्रतिभा राजनैतिक वाग्जाल में उलझ गई। प्रगतिवादी धारा केवलमात्र राजनैतिक धारा ही रही।

"हिन्दी का यह युग समाजवाद, यथार्थवाद, प्रगतिवाद, मार्क्सवाद का है। जनता ने साम्राज्यवादी मार्ग के विरुद्ध में अपना नया जनजागरण मार्ग बनाया है और साम्राज्यवादी नीति का अन्तकाल आ गया है। अब हिन्दी कविता न रस की प्यासी है, न अलंकार की इच्छुक है और न संगीत की तुकान्त पदावली की भूखी है। भगवान उसके लिये व्यर्थ है, आज जिसके राज्य शासक हैं, पूँजीपति शासक हैं।"[1]

प्रगतिवाद का अवसान हो गया है। जहाँ तक समाज के निर्माण का प्रश्न है प्रगतिवादियों ने सुन्दर तथा कल्याणकारी मार्ग अपनाया है। युग की माँग को उसने पूर्ण किया है। मार्क्सवादी विचारधारा का अस्तित्व शाश्वत है और रहेगा। उसमें साम्राज्यवाद और वर्ग विषमता के विरोध में एक प्रशस्त मार्ग का निर्देश है लेकिन प्रगतिवादियों ने साम्यवाद का समवेत गान करके काव्य को उद्देश्य कला और लक्षणा से च्युत करके काव्य की आत्मा का जो हनन किया है वह असहनीय है।

३ प्रयोगवाद

छायावाद की प्रतिक्रिया स्वरूप काव्य जगत में दो वादों का प्रादुर्भाव हुआ। नवीन प्रवृत्तियों से अलंकृत तथा अभिनव उपमानों से युक्त प्रयोगवादी कविता का सूत्रपात 'प्रतीक' के अङ्कों, प्रथम 'तार सप्तक' तथा अज्ञेय' के कुछ संग्रहों से हुआ। 'तार सप्तक' में प्रगतिवादी कवि भी थे जिन्होंने शैली गत कुछ प्रयोग किये थे। वास्तव में प्रयोग तो सनातन होते हैं।

इस काव्य की पूर्वपीठिका में द्वितीय विश्व युद्ध की विभीषिका मानव मूल्यों को विघटित कर रही थी। विध्वंसक प्रवृत्तियाँ प्रबल थीं। बौद्धिकता के आधार

१ केदारनाथ अग्रवाल, 'युग की गंगा', (प्राक्कथन) पृ० ८।

पर प्रेम, दया, सौंदर्य और प्रकृति का पर्यावेक्षण किया गया था। प्रगतिवाद ने धर्म और ईश्वर की आस्था को डगमगा दिया था । प्रयोगवाद ने उसे निर्मूल करके युगों से उपास्य ईश्वरीय प्रतिमा को खण्डित कर दिया । मानव मूल्यों के विघटन, ईश्वर पर अविश्वास और युद्ध की विभीषिका ने कविता में अनास्था के स्वरों का सरगम दिया।

विज्ञान के बढ़ते चरणों ने बौद्धिकता का विकास किया, जिसने नये काव्य को नये प्रतीक दिये। विज्ञान से तार्किक शक्ति का उद्‌भव हुआ । तार्किक शक्ति से द्वन्द्व का उदय हुआ। ईश्वरीय अनास्था ने नतिक बन्धनों की मर्यादा को भंग कर दिया। इससे व्यक्तिवादी तथा स्वच्छन्दतावादी प्रवृत्तियों का विकास हुआ। इसमें अहं के विकसित होने का प्रशस्त पथ मिला । अहं की जटिल, व्यक्तिगत अनुभूतियों ने व्यक्तिगत प्रयोग दिये, जिससे काव्य में अस्पष्टता और दुरूहता आ गई।

काव्य क्षेत्र में प्रयोगवादी जितना टी० एस० इलियट, सार्त्र, इजरा पाउण्ड, यूनियर से प्रभावित हुआ उतना ही मनोवैज्ञानिक क्षेत्र में फ्रायड, एडलर और युंग से प्रभावित हुआ। अहं के प्रस्फुटन में भी मनोविज्ञान था। इसीलिये मानवीय विगलित यौन-कुण्ठाओं, विभीषिकाओं का ही चित्रण होता रहा । यूरोप में मानव मूल्यों का विघटन तीव्रता से हो रहा था। रसेल, आइन्स्टीन, स्पेंग्लर ने इस सांस्कृतिक विघटन की अनुभूतियों को प्रतीत किया।

राजनीति के सक्रमणकाल में ही यथार्थवाद की दो धाराएं प्रस्फुटित हुई, जिनका नाम पूर्व में उल्लिखित किया जा चुका है। लेकिन राजनीति में विस्फोट सन् ४२ की क्रान्ति के रूप में हुआ, जिसमें जनता ने भी समवेत स्वर का नाद किया । मैथिलीशरण गुप्त, बालकृष्ण शर्मा 'नवीन', माखनलाल चतुर्वेदी, सोहनलाल द्विवेदी ने राष्ट्रीय भावनाओं से युक्त काव्य सृजन किया। लेकिन सन् १९४३ में प्रकाशित 'तार सप्तक' में क्रान्ति का उल्लेख मात्र तक नहीं था।

इस सप्तक में रूढ़िगत भावनाओं का, कोमल-कान्त उर्वर कल्पनाओं का कठोर यथार्थ ने बहिष्कार ही नहीं किया, अपितु भोंडी, सस्ती अभिव्यंजना को स्थान दिया।

एक ओर प्रयोगवादी मुर्गे की आवाज सुनता है तो दूसरी ओर पिल्ले की रिरियाहट। कवि अज्ञेय चित्रण के न जाने कितने प्रयोग करता है —

निकट-चरती हुई धेनु, बाड़ में निर्वेद
मूत्र सिंचित मृत्तिका के वृत्त में
तीन टाँगों पर खड़ा, नत ग्रीव
धैर्यहीन गदहा।[1]

इस प्रकार प्रयोगवादी कवि मायाजाल में उलझा रहा।

सन् १९५१ में प्रयोगवादी संग्रह 'दूसरा सप्तक' प्रकाशित हुआ जो विशेष्य दशक के अन्तर्गत आता है। 'तार सप्तक' तथा अज्ञेय के संग्रहों ने प्रयोगवादी विचारधारा की स्थापना का सफल प्रयास किया, जिसका प्रतिफलन सुदृढ़ तथा परिवर्तित काव्य धारा के रूप में हुआ। पिछले दशक की कविता छायावाद, प्रगतिवाद और प्रयोगवाद से प्रेरणा लेती हुई अग्रसर रही है। पर उसमें अनेक मौलिक उद्भावनाओं का भी समावेश हो गया है।

---

१ अज्ञेय, 'इत्यलम्', (शरद की राका-निशा) पृ० १६६।

२ | पिछले दशक का काव्य-एक सर्वेक्षण

पिछले दशक का काव्य मात्रा की दृष्टि से बहुत ही पुष्ट है। लगभग १५० काव्य संग्रहों का प्रणयन इस काल में हुआ है। कुछ छोटे हैं कुछ मोटे हैं, कुछ परिपक्व हैं, कुछ अपरिपक्व। इसे काव्य संग्रहों का बाढ़ युग कहें तो अधिक उचित रहेगा। इस बाढ़ में निर्मल जल की अपेक्षा पंक, इतर सड़ी-गली हुई वस्तुएं ही अधिक उभर कर आई हैं। सामाजिक परिप्रेक्ष्य में इस कविता का मूल्यांकन भी नहीं हो सकता क्योंकि यह असामाजिक तत्वों तथा प्रतिक्रियावाद की ओर अधिक उन्मुख रही है। इसने अभिव्यक्ति के क्षेत्र में निषेधात्मक दृष्टि अपनाकर कविता के नये आयामों को स्थापित करने में असमर्थता दिखलाई है। पत्र एवं पत्रिकाओं की भी बाढ़ आई। कुछ मौसमी, कुछ क्षणभंगुर, कुछ भार वाहक, कुछ प्रचारवादी और गुटबन्दी पत्रों ने हल्ला बहुत किया। ज्ञात अज्ञात, अल्प प्रसिद्ध कवि छाते रहे, टिमटिमाते रहे, बुझ भी गये। शेष जो तैर कर अनुशीलन योग्य कृतियां बचीं, उनको इस प्रकार वर्गीकृत किया जा सकता है।

१. महाकाव्य

सन् १९५१ से ६० तक प्रतिवर्ष ८–१० महाकाव्यों का प्रणयन हुआ हो सकता है कुछ प्रकाशन की महतीभूत आकांक्षा संजोये प्रतीक्षा में हों। इस युग के महाकाव्यों में उनकी भारतीय परिभाषा मान्य नहीं रही है। सर्गों की संख्या आठ तक ही सीमित न रहकर महाकाव्यकार की इच्छा पर निर्भर हो गई है। एक सर्ग में कई छन्द भी हो सकते हैं। नायक धीरोदात्त, देवता, गुणान्वित क्षत्रिय के स्थान पर निम्नकुल एकलव्य भी हो सकता है और सूत पुत्र कर्ण भी। महाकाव्य के लक्ष्य में भी परिवर्तन आ गया है। 'कामायनी', 'प्रियप्रवास', 'साकेत', 'नूरजहां', 'वैदेही बनवास', 'कृष्णायन' आदि आधुनिक

महाकाव्यों ने कुछ भारतीय लक्षणों की उपेक्षा की है। दशक के महाकाव्यकारों ने भी नयी उद्भावनाओं का सम्मिश्रण कर उक्त परम्परा को विकसित किया है।

महाकाव्य के सम्बन्ध में आधुनिक दृष्टिकोण मौलिक आवश्यकताओं से युक्त अन्तरंग बातों को लेकर चलता है। प्रत्येक महाकाव्य कल्पना मण्डित अतीत से सम्बन्ध रखता है। यह दूसरी बात है कि वह स्वप्निल न हो, उसमें रहस्य, भयानकता, दिव्यता की मात्रा न्यून हो। कथानक महिमा मण्डित अवश्य हो सकता है लेकिन अति प्राकृतिक शक्तियों तथा नियति लीलाओं का पूर्ण रूप से परिहार किया जा रहा है। नया महाकाव्यकार भी शैली को गरिमापूर्ण तथा सात्विक बनाने के लिये सतत प्रयास करता है।

दशक के कुछ काव्य 'साकेत' तथा 'कामायनी' के पथ पर चल रहे हैं। उल्लेखनीय महाकाव्य इस प्रकार हैं —

१ वर्द्धमान

'प्रियप्रवास' जैसी भाषा शैली में लिखा गया, अनूपशर्मा द्वारा रचित सत्रह सर्गों का महाकाव्य है। जैन धर्म के उन्नायक महावीर का चरित्र एवं जीवन सांगोपांग रूप में चित्रित हुआ है। संस्कृत के महाकाव्यों की परिपाटी अपनाई गई है। षट ऋतु वर्णन, नायक नायिका भेद, शृङ्गार वर्णन परम्परानुकूल हुआ है। नायिका का अभाव होने पर महाकाव्यकार ने महावीर की माता रानी त्रिशिला के नख शिख तथा रति क्रीडाओं का वर्णन विशदता से किया है। वर्णन उपमा रूपक जैसे अलंकारों की सज्जा से युक्त है —

"प्रभा शरच्चन्द्र-मरीचितुल्य है,
विभा शरत्कंज-समान नेत्र की।
शुभा शरद् हंस-समा सुचाल है,
विशाल तेरी वि वाम-लोचने।"[१]

---

१ अनूपशर्मा, 'वर्द्धमान', (सर्ग २) पृष्ठ ८४।

किन्तु यह शृङ्गार वर्णन अनुचित लगता है। सहृदय पाठकों पर इसका विपरीत प्रभाव पड सकता है। भाषा 'प्रियप्रवास' जैसी संस्कृतनिष्ठ खडी बोली है।

२ रावण

बाल्मीकि रामायण को कथानक का आधार बनाते हुए हरदयालुसिंह ने चिरकाल से उपेक्षित ऐतिहासिक पात्र रावण के चरित्र को इस ब्रजभाषा के महाकाव्य म १७ सर्गों म चित्रित किया है। 'रावण' का रावण अपरिमेय पराक्रम, लोकोत्तर-शौर्य, पाण्डित्य एवं आत्मदर्प का प्रतीक है। सीता-हरण वह अपमान के कारण करता है और सीता के साथ उसका व्यवहार शालीनता और राज्योचित शिष्टता, सौम्यता लिये हुए हैं। अन्त मे रावण के पुत्र अरिमदन द्वारा विभीषण का पराजित दिखाया गया है और प्रजातन्त्र शासन को प्रतिष्ठापित किया गया है। प्रकृति चित्रण सजीव है —

चन्द्रिका सा ससि रीतो भयो, छनदा छन में अब चाहती चाली।
लागे विहगम वृद उडान, चहूँ दिसि कूजि उठी चटकाली॥
मन्द बहैं लगी सीरी समीर, औ व्योम पै छाय रही बहु लाली।
भाल पै प्राची दिसा के मनो, धरि सिंदूर बिन्दु दियो उषा आली॥[१]

रघुवश मेघदूत, कादम्बरी आदि का इस पर प्रभाव है। इसको रीतिबद्ध महाकाव्य की कोटि में रखा जा सकता है।

३ जयभारत

महाभारत की सम्पूर्ण कथा को मैथिलीशरण गुप्त ने 'जयभारत' के रूप म प्रस्तुत करने का सराहनीय प्रयास किया है। उपाख्यानो, प्रसगों के बहिष्कार करने पर भी कथानक में धारावाहिकता ही नही टूट गई है, बल्कि इतिवृत्तात्मकता और नीरसता का आधिपत्य हो गया है। महाभारत की अलौकिक और

---

१ हरदयालुसिंह, 'रावण', (सर्ग २) पृष्ठ १।

समानधीय घटनाओं का यथावत् वर्णन किया है। मर्मस्पर्शी, भावपूर्ण, सरस स्थलों का पूर्णतया अभाव है। प्रकृति चित्रण में कवि का मन रमा नहीं है। हो सकता है शरद् ऋतु वर्णन में कतिपय दृश्यांश मिल जावें। चरित्र चित्रण में युधिष्ठिर द्रौपदी आदि श्रेष्ठ बन पाये हैं। भाषा प्रवाहमयी, सरस और प्रसाद गुण युक्त है। रस व्यंजना में कवि पूर्ण रूप से सफल हुआ है। महाकाव्य के इन सर्गों का नामकरण प्रतिपाद्य विषयानुकूल हुआ है।

४ पार्वती

कालिदास के 'कुमारसम्भव' को कथा का आधार बनाते हुए रामानन्द तिवारी 'भारती नन्दन' ने 'पार्वती' महाकाव्य का २७ सर्गों में प्रणयन किया है। कुमारसम्भव के १७ सर्गों को लेकर मौलिकता प्रदर्शित करने के लिये जयन्त अभिषेक, राक्षस, पावक और कामनपुरों की स्थापना, शिव धर्म, शिव नीति शिव-संस्कृति का वर्णन किया गया है। परम्परा से चले आये पूत चरित्र को पौराणिक आख्यानों के पुट से मांसल बनाने का प्रयास किया है। कवि की काव्यकला कहीं-कहीं दर्शनीय है पर सर्वत्र नहीं। शैव सिद्धान्तों से प्रभावित काव्य रसायन सा भरा गया है। हिमालय को पर्वराज न मानकर पर्वतराज का अधिपति राजा माना गया है। हिमालय के वर्णनों में 'कुमारसम्भव' तथा 'कामायनी' का प्रभाव स्पष्ट परिलक्षित है। कहीं-कहीं कल्पना का पुट देकर नई भव्यता प्रस्तुत की गई है।

महाकाव्य में शैव धर्म तथा शैव संस्कृति का गम्भीरतापूर्वक विवेचन किया गया है। दर्शन, धर्म संस्कृति सम्बन्धी कवि के विचार बीच-बीच में अनुस्यूत होते हैं। भाषा परिष्कृत और भावानुसारिणी है। लेकिन अनेक स्थलों पर महाकाव्यकार ने 'कुमारसम्भव' के पद्यों का ज्यों का त्यों अनुवाद रख दिया है –

(१) पुनर्गृहीतु नियमस्थयातया
　　　　द्वयऽपि निक्षेप इवार्पित द्वयम।
　　न तासु तन्वीसु विलास चेष्टिते —
　　　　　चलोल दृष्ट हरिणाग तासु च॥ —कुमार सम्भव

सयमित थे नियमशीला के ममी व्यवहार
वचन, दर्शन और गति सब नियम के अनुसार,
वचन सखियो को, लताओ को विनोल विलास,
हरिणियो को चल विलोक न दे दिये कर न्यास।[1]

(२) मन्दाकिनी सैकत वेदकाभि
सा कन्दुकै कृत्रिम पुत्र केश्च
रेमे मुहुर्मध्यगन सखीना
क्रीडा रस निर्विशतीव वाल्ये।[2]

मन्दाकिनी नदी के तट पर सिकता के पुलिनो मे,
कन्दुक और पुत्रिकाओ से सखियो सग दिनो मे,
खेल खेल कर बाल्यकाल मे, मातु समीप निशा म,
कह कह चित्र कथाए, हरती मन दग फेर दिशा म।[3]

इस प्रकार के अनेक स्थलो पर 'कुमारसम्भव' की छाया है। अनक स्थला पर कवि की कवित्वशक्ति, भावुकता, मानवतावाद, भारतीय सस्कृति की अभिव्यक्ति सुन्दर ढग से हुई है।

५ मीराँ

मरुधारा की मदाकिनी के चरित्र को मरुधारा के कवि परमेश्वर 'द्विरेफ' ने तेरह सर्गों में प्रस्तुत किया है। मीरा की सम्पूर्ण जीवन गाथा को इसमें प्रस्तुत किया गया है। मीरा के चरित्राकन मे द्विरेफ को पूर्णतया सफलता प्राप्त हुई है। बाल्य-क्रीडाओ मे रत मीरा, यौवनसुलभ लज्जा और गाम्भीर्यवाली मीरॉ एव कृष्ण विरह में व्याकुल मीराँ का चित्रण सुन्दर है। कही कही अच्छे मार्मिक चित्र हैं —

१ रामानन्द तिवारी, 'पावती', स१ ६।
२ 'कुमारसम्भव', (सग १) पृष्ठ २९।
३ रामानन्द तिवारी, 'पावती', (सग २) पृष्ठ ४६।

एक ओर खड़ा हुआ था मातृकुल परिवार
दूसरे वे, वहन की जो ले चुके पतवार।
खींचता पीछे निरन्तर जन्म भू का स्नेह,
धर्म आवश्यक पहुँचना किन्तु पति के गेह ॥'[1]

प्रकृति पर्यवेक्षण वर्णित विप्रलम्भ शृङ्गार का चित्रण तथा उसका परिपाक सुन्दर ढंग से हुआ है। भाषा सरल, सुबोध, नैसर्गिक, मुहावरेदार है। लेकिन कथा प्रवाह का अवरुद्ध होना इस महाकाव्य का बहुत बड़ा दोष है। कवि ने एकादश सर्ग में समासबहुला, संस्कृत गर्भित भाषा को प्रयुक्त कर भाषा के सहज सौन्दर्य को खो दिया है। इसके अलावा वैविध्य पूर्ण जीवन का सर्वाङ्गीण चित्रण भी इस काव्य मे नहीं हो सका है। कवि ने तत्कालीन समाज का चित्रण करने का प्रयास किया है। दहेज प्रथा, नारी पराधीनता अछूतों की शोचनीय अवस्था पर अपने विचार प्रकट किये हैं लेकिन ऐसे स्थल, नीरस एवं उपदेशात्मक हो गये हैं।

६ उर्मिला

रामकथा की उपेक्षिता उर्मिला का चरित्र स्पष्ट करने के लिये बालकृष्ण शर्मा नवीन ने उर्मिला की कथा छः सर्गों मे वर्णित की है। अन्तर यही कि रामकथा के उर्मिला – लक्ष्मण से सम्बन्धित कथानक में मौलिक उद्भावनाएं की गई हैं। लेकिन कार्याचित घटना – विस्तार तथा विविध प्रसंगो का सम्बन्ध निर्वाह न होने के कारण कथानक विशृङ्खलित हो गया है। पांचवें सर्ग में ब्रज भाषा को ग्रहण कर दोहा – सोरठा छन्दों में कथा की रचना होने के कारण प्रबन्धात्मकता पूर्ण रूप से लुप्त हो गई है।

उर्मिला का चरित्र स्वाभाविक तथा सुन्दर ढंग से व्यक्त हुआ है। जनकपुर के राजप्रासाद में क्रीडारत उर्मिला अयोध्या के राजप्रासाद में रिपुसूदन और ननद के साथ परिहास करती हुई उर्मिला, सरलहृदया, भावुक अबला, तथा

---

१ परमेश्वर 'द्विरेफ', 'मीरा', (सर्ग ५) पृ० ७६।

बुद्धिमती वीरनारी के रूप में मुखर हुई है । वह राम वन गमन की नीति का विवेक बुद्धि से परिपूर्ण आलोचना करती है।[1]

लक्ष्मण का चरित्र भी मौलिकता लिए हुए है। शृङ्गार रस से संयोग वियोग पक्ष का भी इसमें पूर्ण रूप से परिपाक हुआ है। 'साकेत' के भाव साम्य और प्रतिच्छाया का सहज ही इस महाकाव्य में देखा जा सकता है।

नाचो मयूर, नाचो कपोत के जोडे,
नाचो कुरंग तुम लो उडान के तोडे।[2]
— — —
कुरंगम कूदो खेलो खेल
हरिणियो, नाचो अपना नाच।[3]

ऐसे स्थल अनेक है। जहा एक ओर इस महाकाव्य मे चरित्र चित्रण उत्कृष्ट है और मार्मिक प्रसगो की सृष्टि है दूसरी ओर महाकाव्योचित घटना विस्तार, प्रबन्ध निर्वाह और वैविध्यपूर्ण जीवन की व्याख्या नही है।

७ तारक वध

शिव-पार्वती के पुत्र कार्तिकेय द्वारा तारकासुर वध के पौराणिक कथानक को गिरजादत्त शुक्ल 'गिरीश' द्वारा नवीन रूप मे प्रस्तुत किया गया है। इस संघर्ष को आसुरी और दैवी प्रवृत्तियो के चिरतन संघर्ष का प्रतीक माना गया है। साथ ही यह प्रदर्शित किया गया है कि देव दानव, मानव एक ही सत्य के त्रिगुणात्म रूप हैं जिनके सामंजस्य से मानव जीवन पूर्ण होता है। इस रचना में कार्तिकेय द्वारा हिंसात्मक तरीको से तारका का वध नही है, वरन् ऋषि द्वारा अहिंसात्मक प्रयोगो की सहायता से तारकासुर का हृदय परिवर्तन कराया है। चरित्र चित्रण सजीव एव स्वाभाविक है। ऋतु वर्णन मार्मिक है —

१ बालकृष्ण शर्मा 'नवीन', 'उर्मिला', (सर्ग ३) पृ० १४६।

२ मैथिलीशरण गुप्त, 'साकेत', (सर्ग ८) पृ० १६०।

३ बालकृष्ण शर्मा, 'नवीन', 'उर्मिला', (सर्ग २) पृ० १७।

पहन मोर दुलहन आये तरु रसाल बौराये।
मजुल लतिका-जयमाला ह्रित मोदित शीश नवाये।
वेदोच्चार किया मधुकर ने गान पिकी ने गाया।।[1]

परन्तु कहीं कहीं नीरस नामावली भी प्रस्तुत की है। भाषा प्रौढ़ प्राञ्जल और बोधगम्य है। साम्यवाद, गांधीवाद तथा युग वैषम्य, का चित्रण भी हुआ है।

८ ऋतम्भरा

केदारनाथ मिश्र 'प्रभात' द्वारा विरचित मनु शतरूपा के आख्यान का नव्य रूप है। यद्यपि 'कामायनी' की समता म यह नगण्य है, लेकिन भाषा और शैली के अनुष्ठान ने नये आयाम स्थापित किये हैं। अंत मे मानव और मानवता की विजय दिखलाई गई है —

मनु ने जो दीप जलाया, वह बुझा नहीं जलता है,
मृत्युलोक यह, मृत्यु खड़ी है, पर मानव चलता है।[2]

दीर्घ प्रबन्ध काव्य

दशक की इस कोटि की रचनाएँ गिनी चुनी हैं। इस कोटि म उन रच नाओं का लिया गया है जिसमे कवि ने म०काव्य की रचना का प्रयास किया लेकिन किसी त्रुटि से वह एक दीर्घ प्रबंध काव्य मात्र बन कर रह गया। कुछ ने इतर सामग्री का रूप देकर उसे पाठको के सिर माथे पटक दिया कि वे ही इसका निर्णय करें कि लिखी हुई कृति क्या है? आकार में वृहद होने के कारण इन्हें दीर्घ प्रबंध काव्य कहा जा सकता है।

---

१ गिरजादत्त शुक्ल, 'गिरीश', 'तारकवध' (सर्ग ४)।

२ केदारनाथ मिश्र, 'प्रभात', 'ऋतम्भरा', पृष्ठ २०७।

(१) रश्मिरथी

महाभारत के एक उपेक्षित पात्र महारथी कर्ण के उज्ज्वल चरित्र को लेकर रामधारीसिंह 'दिनकर' ने प्रबन्ध कृति रश्मिरथी की रचना की है। कथानक सात सर्गों में विभाजित है। लेकिन कृति में रचनाकार का चिन्तन निष्कर्ष मात्र न होकर समस्यामूलक है। कवि का शंकाकुल हृदय ही मस्तिष्क पर चढ़ कर बोला है। यद्यपि मूलकथा महाभारत के आधार पर है लेकिन कवि ने उसमें पर्याप्त संशोधन किया है। चरित्र चित्रण की दृष्टि से कुन्ती और कर्ण का चरित्र बहुत ही श्रेष्ठ बन पाया है। कर्ण के चरित्र में असीम गुरु-भक्ति, आदर्श मैत्री, अद्भुत शौर्य, उच्च कोटि की दानशीलता और महान् त्याग की सुन्दर अभिव्यक्ति हुई है। कुन्ती ममतालु माँ के रूप में निखर कर आई है।[1]

प्रकृति चित्रण के कतिपय भव्य और संश्लिष्ट चित्रण हुए हैं। लेकिन अनेक स्थल पर रमणीय वर्णन के लिए पर्याप्त अवसर होने पर भी कवि हृदय प्रकृति चित्रण में नहीं रमा है। वीर रस का परिपाक अच्छा हुआ है —

> क्या धमकाता है काल ? अरे
> आजा मुट्ठी में बन्द करूं।
> छुट्टी पाऊं, तुझको समाप्त
> कर दूं, निज को स्वच्छन्द करूं।[2]

भाषा सरल, मुहावरेदार प्रवाहमयी, ओजस्वी और विषयानुकूल है। कथा-वस्तु की संक्षिप्तता और नायक के सम्पूर्ण जीवन के सर्वाङ्गीण चित्रण के अभाव में यह कृति महाकाव्य न होकर, सफल प्रबन्ध काव्य ही कहा जा सकता है।

(२) एकलव्य

एकलव्य में डॉ० रामकुमार वर्मा ने मानवतावादी विचारधाराओं से प्रभा-

---

१ रामधारीसिंह 'दिनकर', 'रश्मिरथी' (सर्ग ५) पृष्ठ ९४।
२ ,, ,, (सर्ग ७) पृष्ठ १६८।

वित भारतीय संस्कृति के उपेक्षित पात्रों को ऊंचा उठाने का प्रयास किया है। महाभारत की ३० श्लोकों की संक्षिप्त एकलव्य कथा को डा० रामकुमार वर्मा द्वारा नवीन उद्भावनाओं सहित चौदह सर्गों में वर्णित किया है। इसमें एकलव्य के चरित्र का पुनरुत्थान करके द्रोण के कलंक का परिहार किया गया है। एकलव्य आदर्श गुरुभक्त, शीलवान, नम्र, शौर्यवान, मातृभक्त के रूप में चित्रित हुआ है। द्रोण का चरित्र मनोवैज्ञानिक द्वन्द्व को लिये है। प्रकृति के कतिपय दृश्य सुन्दर हैं। मानवहृदय और प्रकृति का तादात्म्य भी दिखलाया गया है।

'एकलव्य' में अमित्राक्षर स्वच्छन्द छन्दों को प्रयुक्त किया गया है। भाषा विषयानुकूल, प्राञ्जल, प्रवाहमयी है लेकिन उसमें व्याकरण और काव्यशास्त्र सम्बन्धी अप्रस्तुत योजना, भावों की दुरूहता उत्पन्न कर देती है —

जैसे 'कुहारत्तु' बने लिट के अभ्यास में।[1]

— —

जैसे वंशस्थ की प्रतिज्ञा इन्द्रवज्रा-सी
सुन कर सदैव शार्दूलविक्रीडित हो।[2]

— —

मानो प्रातिपदिकों और प्रत्ययों के मध्य,
लोप होने वाले सभी इत्संज्ञक वर्ण हों।[3]

— —

बद्ध गोधांगुलित्राण पूर्व तूण कार्मुक
सहित संचारियों के जैसे वीर रस हो।[4]

कवि ने व्याकरण और काव्य विषयक ज्ञान दिखाने तक ही अपने को सीमित नहीं रखा है अपितु आत्म विज्ञापन करने का भरसक प्रयास किया है —

---

१ रामकुमार वर्मा 'एकलव्य' (धारणा) पृष्ठ १३६।
२ " (") पृष्ठ १४१।
३ " " (द्वन्द्व) पृष्ठ २५६।
४ " (प्रदर्शन) पृष्ठ १०८।

शिशिर के पीले पत्र सूखने से पूर्व ही,
देना चाहते हैं 'रूपतरंग' ऋतुराज को
एक ध्रुवतारिका में 'कौमुदी महोत्सव',
चाहती 'रजत रश्मि' देखो इस साज को।
अंजलि में मेरी 'रूपराशि' मत देखना
ऐसी 'चित्ररेखा' खिंची जीवन में तार की।
मेरी चन्द्रकिरण में कहाँ 'आकाश गंगा'
सांस में समाई शक्ति विद्युत् तड़प की।[1]

कवि ने यहाँ अपनी सारी कृतियों का नाम गिना दिया है।

महाकाव्य परम्परागत शास्त्रीय लक्षणों का इसमें पूर्ण निर्वाह नहीं हुआ है। आमुख से स्पष्ट होता है कि वर्मा जी बनाने चले थे कुछ, भूल से बन गया कुछ और। इससे महाकाव्योचित विषय की व्यापकता, वैविध्यपूर्ण जीवन की सर्वाङ्गीण व्याख्या और रसात्मकता का अभाव होने से इसे एक दीर्घ प्रबन्ध काव्य मात्र कहा जा सकता है न कि महाकाव्य।

(३) सेनापति कर्ण

अंगराज और रश्मिरथी के पश्चात् कर्ण के जीवन पर 'सेनापति कर्ण' नामक महाकाव्य का सृजन लक्ष्मीनारायण मिश्र द्वारा ५ सर्गों में किया गया है। यह अधूरी कृति है क्योंकि सेनापति कर्ण का इसमें सांगोपांग चित्र प्रस्तुत नहीं हुआ है। महाभारत का अनुसरण करते हुए भी कथावस्तु में अनेक मौलिक प्रसंगों की योजना की गई है। पात्रों का चरित्रांकन सुन्दर ढंग से हुआ है। कर्ण के शौर्य, दानशीलता, मित्र प्रेम, आत्माभिमान आदि का सुन्दर चित्रण हुआ है। वीर रस का परिपाक भी सुन्दर ढंग से हुआ है। अनुभावों का नियोजन सुन्दर ढंग से हुआ है —

हिला काल पृष्ठ कर में
वाम कर कांपा चढ़ी प्रत्यंचा धनुष की,

---

१ रामकुमार वर्मा, 'एकलव्य' (धारणा) पृष्ठ १३७–१३८।

४ ध्वनि रूपक

रजत शिखर

सुमित्रानन्दन पंत का रजतशिखर, फूलों का देश, उत्तरशती, शुभ्र पुरुष विद्युत वसना, शरद चेतना नामक काव्य रूपकों का संग्रह है। इन रूपकों में चौबीस मात्रा का अनुकांत रोला छन्द प्रयुक्त हुआ है, जिसमें नाटकीय प्रवाह तथा वैचित्र्य लाने के लिए यति का क्रम गति के अनुसार बदल दिया है एवं तेरह ग्यारह के स्थान पर दो बारह अथवा तीन आठ मात्रा के टुकड़ों पर रखा गया है। मानवता का गौरव गान, भविष्य की स्वर्णिम कल्पना तथा प्रकृति का भव्य चित्रण इन रूपकों की विशेषताएँ हैं —

झरे, झरे
जीर्ण शीर्ण विश्व पर्ण
चिर विदीर्ण चिर विवर्ण
नवयुग के प्रांगण में
मरें मरें ।[1]

— —

जय विराट युग मानव जय, जय ।
स्वर्गदूत तुम उतरे भू पर
आत्म तेज में विचार निमग्न ।[2]

चन्द्रकला का मुकुट धरे निज ज्योति भाल पर
हीरक कलियों की शत ज्वालाओं में जगमग,
तारक लड़ियाँ गूँथ नील लहरों वेणी में
रजत वाष्प जलदों के सतरंग पंख खोल स्मित

---

१ सुमित्रानन्दन पंत 'रजत शिखर' (उत्तरशती) पृ० ६०।

२ " 'रजत शिखर' (उत्तरशती) " ६५।

नवल शारदीया, सुन्दर सुरबाला सी हंस,
उतर रही, स्वगङ्गा सी साकार गगन से ।[1]

५ गीति नाट्य

अन्धा युग

गीति नाट्य बरबस दिया गया नाम है अन्यथा इसकी गणना ध्वनि रूपक म होती है । 'अन्धा युग' इस दशक का प्रयोगवादी शैली मे लिखा प्रमुख गीति नाट्य है । धर्मवीर 'भारती' द्वारा रचित अन्धा युग के बारे मे अनेक मत हैं । कुछेक इसे खण्डकाव्य, कुछ दृश्य काव्य मानते है । वस्तुत यह पाच अङ्कों मे समाप्त होने वाला गीति नाट्य है जिसमे महाभारत के उत्तरार्द्ध की घटनाओं की पृष्ठभूमि पर आज के नये विनाश और कुरूप युग की ह्रासो मुख संस्कृति का चित्र खीचा गया है । विनाशकारी दो महायुद्धो का जो प्रभाव विश्व के आन्त रिक एव बाह्य जीवन पर पड़ा, उसकी आत्मपरक प्रतीकात्मक अभिव्यक्ति 'अन्धा युग' मे हुई है । इसका विचारक्षेत्र इलियट के 'मर्डर इन दि कैथेड्रल', 'होलोमेन', 'वेस्टलैंड', से प्रभावित है । कथावस्तु महाभारत के अठारवे दिन से लेकर कृष्ण की मृत्यु तक पाच अको, कौरव-नगरी, पशु का उदय, अश्वत्थामा का अर्द्ध सत्य (गतरात पक्ष, पहिए और पहिया) गान्धारी का शाप विजय एव क्रमिक आत्महत्या, समापन – प्रभु की मृत्यु, मे विभाजित है । कवि का दृष्टिकोण इसमे 'यूरोटिक' न होकर संयत मर्यादा, नैतिकता के आग्रह को लिये हुए है । इसमे दादाइज्म या सुररियलिज्म का भाति युद्धोत्तर – 'यूरोटिक' प्रतिक्रिया के साथ साथ शुष्क बौद्धिक तथ्य और घोर ग्लानि एव पश्चाताप मे भरी भावुक प्रलापशैली म भी कवि ने बचने का प्रयास किया है । इस कृति के पात्र निश्चित ही कुण्ठा ग्रस्त हैं । इसम मदुता पुञ्जीभूत सत्य के विरुद्ध है । मह सत्य अनुल्लङ्घय रहा है —

---

१ सुमित्रानन्दन पत 'रजत शिखर' (शरद चेतना) पृ० १४२ ।

हम सबके मन में गहरा उतर गया है युग
अंधियारा है, अश्वत्थामा है संजय है
है दासवृत्ति उन दोनों वृद्ध प्रहरियों की
अन्धा संशय है, लज्जाजनक पराजय है ।[१]

अन्धा युग का सबसे बड़ा दोष यह है कि इसमें मास्यानुरूप महान् चरित्र का अभाव है । कहीं कहीं गद्यात्मकता मानो न राग प्रभावहीनता भी आ गई है —

कृपाचार्य   संजय
तुम्हें ज्ञात है
कहाँ है वे ?

संजय   (धीमे से)
वे हैं सरोवर में
माया से बाँधकर
सरोवर का जल
वे निश्चय अन्दर बैठे हैं
ज्ञात नहीं है
यह पाण्डव दल को ।[२]

६. गीतिकाव्य

इस दशक में गीतिकाव्य की लम्बी कड़ी रहा है जो आत्मा के भकार से निःसृत और कूजित है । प्रेम, प्रीति और प्रकृति गीतिकारों के प्रिय विषय रहे हैं । सर्वमान्य रूप से प्रेयसी ही गीतों की माध्यम एवं प्रतीकार्थ स्वीकृत कर ली

---

१ धर्मवीर भारती, 'अन्धा युग', पृ० १३० ।
२   ,,   ,,   ,,   ३९ ।

गई है। कहीं-कहीं रिंसा ने भाव सौंदर्य को अवरुद्ध कर दिया है। ये गीत चार वर्गों में विभक्त हो सकते हैं —

(१) आत्मनिष्ठापरक
(२) जीवनदर्शन परक
(३) आत्मबोध परक
(४) प्रीति तत्व परक

प्राय गीतकार सौन्दर्य वर्णन में यौन वर्णना की ओर प्रवृत्त होता हुआ दिखाई पड़ता है। कुछ विशिष्ट गीत संग्रह इस प्रकार हैं —

(१) बोलों के देवता

अमर प्रणय गीतों की गायिका, छायावादोत्तर युग के गीतकारों में अग्रणी सुमित्राकुमारी सिंहा का यह नवीन गीत संग्रह है। इसमें जीवन के प्रति निश्चल आस्था, जीवन साधना की रचनात्मक भावभूमि और भौतिक क्षेत्र में कर्म की सुनिश्चित प्रेरणा है। उनकी आस्था प्रेम से पोषित और अनुप्राणित है —

> जी रहे हैं मेरे विश्वास
> प्राण मन को घेरे विश्वास।[१]

कहीं कहीं गीतों में प्राकृतिक उपादानों से प्रेरणा ली गई है —

> तुम दाह घृणा का लेकर मन बैठे हो,
> खिल चटक चांदनी रातें बोती जाती हैं।[२]

भाव व्यंजना के साथ-साथ पूरा संग्रह कल्पना की सृजनशीलता से अनुप्राणित है। कहीं-कहीं प्रतीकात्मक प्रयोग हैं। भाषा सरल, प्रसाद और माधुर्य गुण से युक्त है।

१ सुमित्राकुमारी सिनहा, 'बोलों के देवता' पृ० ५।

२ वही, पृष्ठ २१।

(२) आकाश-गंगा

छायावादी और रहस्यवादी प्रवृत्तियों से युक्त डॉ० रामकुमार वर्मा का नवीन काव्य संग्रह है। इसके दो भाग हैं। तारक मण्डल में गीतात्मक कृतियाँ हैं। आलोक मण्डल प्रबन्धात्मक है। आलोक मण्डल में तारतम्य का अभाव है। तारक मण्डल के कुछ गीत अच्छे हैं। विकास के प्रति कवि की आस्था है लेकिन वह बिखरन से भयभीत भी है —

> कष्ट की गहराइयों में डूब कर,
> जो खिला हृदय का जल जात है।
> पूछता है कौन सुधि की
> अश्रु सिंचित सजल दूरी।
> बात में पूरी कहूँ,
> हर बात रह जाती अधूरी।[1]

प्रकृति वही नर्तकी है, वही ब्रह्म का आभास करने वाली शक्ति।

(३) बलिपथ के गीत

जगन्नाथप्रसाद मिलिन्द द्वारा रचित 'बलिपथ के गीत' में युग चित्रण सरल और मार्मिक ढंग से हुआ है। भाषा की प्रांजलता, विचारों में प्रौढ़ता, अनुभूति की तीव्रता रचना का निखार संग्रह की कतिपय विशेषताएँ हैं। बापू के प्रति करुण कविता कृषक प्रशस्ति तथा पथिक के प्रोत्साहन में मानवतावादी तथा प्रगतिशील स्वर है।

(४) वर्षान्त के बादल

रामेश्वर शुक्ल 'अचल' का नया गीत संग्रह है। अचल के गीतों में रूमानी रंगीनियाँ मांसल चित्रण, यौवन, प्रेम और सौन्दर्य का निरूपण अधिकांश रूप से मिलता है। रूप की अनुभूति और उसकी अभिव्यंजना इस युग के मानवों को शीघ्र ही उद्वेलित कर देती है। इसीलिए 'अचल' पाठकों के सिर पर चढ़

१ रामकुमार वर्मा 'आकाश गंगा', साधना के स्वर, पृ० ९४।

कर बोलने लगे हैं। 'वर्षान्त के बादल' का प्रमुख महत्व इसकी प्रकृति सम्बन्धी कविताओं की सुन्दर अभिव्यंजना के कारण है। 'वर्षान्त के बादल' सर्वश्रेष्ठ कविता है —

जा रहे वर्षान्त के बादल
हैं बिछुड़ते वर्ष भर को नील जलनिधि से
स्निग्ध कज्जलिनी निशा की उर्म्मियों से
गगन को शृङ्गार सज्जित अप्सराओं से।[1]

इस संग्रह में दूसरी प्रकार की कविताएं वे हैं जिनमें कवि का लक्ष्य सौन्दर्य निरूपण मात्र है। भाषा प्राञ्जल, माधुर्य गुण से युक्त है।

(५) पर आँखें नहीं भरीं

शिवमंगल सिंह 'सुमन' का नया गीत संग्रह है। गांधी सम्बन्धी कविताएं सामान्य कोटि की हैं। बाकी में प्रेम चित्रण है। 'मैं नहीं आया तुम्हारे द्वार पथ ही मुड़ गया था' में वात्सल्य है। शरद सी तुम कर रही होगी कहीं शृङ्गार' में चित्रण और भाव दोनों सुन्दर हैं। 'सांसों का हिसाब' बहुत ही श्रेष्ठ कविता है। सुमन के पास जागरूक व तटस्थ दृष्टि है ही और सरल भाषा में अधिकाधिक कह जाने की मौलिक विशेषता है।

(६) विश्वास बढ़ता ही गया

शिवमंगल सिंह 'सुमन' का 'पर आँखें नहीं भरीं' से पूर्व प्रकाशित गीत संग्रह है। इसमें भारत के वर्तमान दुर्दशाग्रस्त जीवन का करुण चित्र खींचा है।

(७) आरती और अङ्गारे

बच्चन के सद्य प्रकाशित गीत संग्रहों में से एक है। काव्यात्मकता इसमें क्षीण है। प्रारम्भ की कविताएं श्रद्धाजंलियां या संस्मरण चित्र हैं। जो खाना

---

१ रामेश्वर शुक्ल 'अञ्चल', 'वर्षान्त के बादल', वर्षान्त के बादल कविता।

पूरी के लिए लिखे गये हैं। लेकिन भाषा की दृष्टि से इसका महत्व है। उर्दू जैसी रवानगी तथा सादगी सर्वत्र मिलती है।

(८) धार के इधर-उधर

'बच्चन' की प्रतिभा दूसरी ओर उन्मुख हो चुकी है। अभिनवता की दृष्टिकोण से, काव्य शिल्प की दृष्टि से संग्रह सामान्य कोटि का है। कविताएं सामान्य हैं —

आजादी के नौ वर्ष मुबारक तुमको
नौ वर्षों के उत्कर्ष मुबारक तुमको।[1]
— —
आओ हिलमिल कर गाए
एक खुशी का गीत।[2]

(९) दिवालोक

शम्भूनाथ सिंह के ४३ गीतों का संग्रह है। इन प्रयोगात्मक कविताओं में लय और छन्द के अभिनव प्रयोग हैं। प्रयोगवादी प्रभाव के कारण कुछ गीत नीरस हो गये हैं। इसमें गजल सानेट, लोकगीतों की धुनों से समन्वित कुछ रचनाएं भी हैं।

(१०) माध्यम मे

शम्भूनाथ सिंह का अभिनव गीत संग्रह है। इसमे उनकी प्रयोगवादी से प्रभावित कुछ कविताए भी हैं।

(११) लेखनी वेला

वीरेन्द्र मिश्र के गीतम के पश्चात दूसरा गीत संग्रह है। कवि ने विभिन्न *गतिविधियों की अनुभूति से* अन्तर और व्यक्तित्व को उद्भासित करने की

१ हरिवंशराय 'बच्चन', 'धार के इधर उधर', पृष्ठ १०३।

२ 'बच्चन', 'धार के इधर उधर', पृष्ठ १०४।

अद्भुत क्षमता है। कवि ने स्वय ही कहा है--'विगत सग्रह की भाति इस सकलन मे भी मृत्यु, निराशा तथा रीतिकालीन शृङ्गार-ग ■ से मुक्त गीता द्वारा नये वातावरण का प्रभाव निवेदित हुआ है'।[१] इस सग्रह मे सामाजिक जागरूकता प्रगट करने वाले मानवतावादी गीत हैं। इनमें सहज निष्ठा है और आत्म-विश्वास का संघटन और उसकी अभिव्यक्ति है ---

सारी बरबादी के पीछे भव्य सृजन की प्यास है,
मिट्टी राख हुई तो क्या अब भी जीवित विश्वास है
तेरे स्वर मे दृष्टि, दृष्टि मे गीत, रूप में माधुरी
और चलाचल, आने वाला कल स्मारक इतिहास है।[२]

लेकिन उद्गार शैली की पुनरावृत्ति इस कृति का बहुत बड़ा दोष है। प्रयोग के सम्ब ध में भी गहरा स्वीकार ध्वनित नहीं होता।

(१२) दो गीत

'नीरज' के इस सग्रह म कल्पित उडान भरी गई है। मृत्यु गीत वेदना से सिक्त है उसमे निराशा है। जीवन गीत म आस्था है। कहीं कहीं वर्णन मार्मिक है—

'नर नाहर' कह कह कर छाती पीटेगी माँ
खा खा पछाड धरती आकाश हिलायेगी
चूडिया तोड, सिंदूर पोछ, सिर धुन धुनकर
विच्छिन्न लता सी प्राण प्रिया बिलखायेगी।[३]

गीतकार पर 'कामायनी' का प्रभाव है।[४]

---

१ धीरेन्द्र मिश्र, 'लेखनी बेला', भूमिका, पृष्ठ ४।

२ " " पृष्ठ ४८।

३ गोपालदास 'नीरज', 'दो गीत', पृष्ठ ११।

४ गोपालदास 'नीरज' 'दो गीत, पृष्ठ ३५।

(१३) प्राणगीत

'नीरज' सम्भवतया सबसे लोकप्रिय गीतकार है, लेकिन काव्यात्मक उप लब्धि की दृष्टि से कृतियों में अनेक अभाव खटकते हैं। 'नीरज' का कविता का दर्शन चिति (सौन्दर्य) रति (प्रेम), मति (मृत्यु) से सम्बन्धित है। लेकिन आज के जीवन की विविधता और जटिलता बहुत कुछ माग करती है। गीतों का स्तर सामान्य है। भाव गाम्भीर्य का इन गीतों में अभाव है। पंक्तियाँ गेयता भावतत्व और शिल्प की दृष्टि से नीरस तथा गद्यात्मक हैं।

> अपने दुख का गीत लिखा मैंने जब रोकर
> सुखी जगत ने हस कर खूब मजाक उडाया
> सुख का गीत रचा जब अपना दर्द दबा कर
> निर्दय आलोचक ने कलम कुठार चलाया ।[१]

यह सब कहने का तात्पर्य यह नहीं है कि 'नीरज' में श्रेष्ठ गीत रचना की क्षमता ही नहीं है अपितु कुछ गीत बहुत ही श्रेष्ठ हैं। कहीं कहीं पुनरावृत्ति अवश्य हुई है।

(१४) नीरज की पाती

'नीरज' केवल गीतीय कवि है यह पहले ही कहा जा चुका है। उन्होंने इसमें उर्दू के एक छन्द का प्रयोग किया है जिसमें लयगत कुछ कमियाँ हैं। यद्यपि नीरज अपनी अकलात्मक अभिव्यक्ति को स्वीकार कर लेते हैं फिर भी 'नीरज' की लोकप्रियता को देखते हुए उनके काव्य सृजन का उचित मूल्यांकन नहीं हो पाया है। नीरज की बहुचर्चित और लोकप्रिय रचनाओं में भावापहरण का आरोप लगाया जाता है।

(१५) बादर बरस गयो

'नीरज' के प्रणय गीतों का सग्रह है। 'कविप्रिया' को सम्बोधित करके

---

१ नीरज, 'प्राण गीत'।

भावुक तथा रसभीने गीतो की सृष्टि की है । कही कवि की मनुहार है कही चोट खाया हुआ आत्मदर्प, कही कवि नश्वरता से भयभीत है —

मत करो प्रिय, रूप का अभिमान,
कब्र है धरती, कफन है आसमान [१]

(१६) नदी किनारे

'नीरज' के वेदनासिक्त गीतो का सग्रह है । गीतो मे निराशा, वेदना, परवशता, अभावग्रस्त कुण्ठा ही अधिक व्यक्त हुई है —

कितना एकाकी मम जीवन ?[२]

— —

कितनी परवशता है ।[३]

— —

कितनी अतृप्ति है जीवन मे ।[४]

(१७) आसावरी

'नीरज' के गीत सग्रह उसकी मनोस्थितियो के दर्पण हैं । इस गीत सग्रह मे यौवन का उन्माद और प्रेम की तृष्णा है । स्वरो को आशा का सम्बल है —

हर दपन तेरा दर्पन है, हर चितवन तेरी चितवन है,
मै किसी नयन की नीर बनू, तुमको ही अर्घ्य चढाता हू ।[५]

---

१ 'नीरज', बादल बरस गयो', पृष्ठ १८ ।
२ 'नीरज', नदी किनारे', पृष्ठ २ ।
३ 'नीरज', " पृष्ठ ३ ।
४ 'नीरज', " पृष्ठ ५ ।
५ 'नीरज, 'आसावरी' ।

(१८) मेरा रूप तुम्हारा दर्पण

तरुण कवि बालस्वरूप 'राही' का प्रथम काव्य संकलन है। गीतकार होने से कवि रूमानी है भावुक है। संग्रह में कुछ चिंतन है। भाषा सरल, भाव कोमल हैं। लेकिन प्रेम, शृङ्गार, यौवन की अनुभवहीनता ही इन गीतों में अधिक मुखर हुई है। गीतकार बात करता है [illegible] आत्मिक अनुभूतियों की किन्तु वर्णन करता है [illegible]। इन गीतों में विशुद्ध गीति तत्व का अभाव है। कहीं कहीं [illegible] में [illegible]। गजल और मुक्तकों का समावेश न होता तो उपयुक्त रहता।

अन्य गीत संग्रहों में वीरेन्द्र मिश्र का 'गीतम' तथा रामावतार त्यागी' का 'आठवाँ स्वर' प्रमुख हैं।

७ वैयक्तिक काव्य-संग्रह

वैयक्तिक काव्य संग्रहों में प्रयोगवादी या नई कविता के संग्रहों की प्रचुरता है। नयी कविता का फैशन सर्वत्र फैल गया है। आज इसी की दुंदुभी बज रही है। प्रमुख संग्रह ये हैं —

अप्रयोगवादी काव्य-संग्रह

(१) वरासि

इसमें बालकृष्ण 'नवीन' की कवित्वपूर्ण रचनाएं संग्रहित हैं। संग्रह में कवित्व कम, विद्वत्ता अधिक है। प्रगतिवादी आलोचकों ने मार्क्स एवं ऐंजिल पर जोर शोर से [illegible] है। मार्क्सवादी दर्शन को जड़वादी प्रमाणित कर [illegible] की गई है। [illegible] स्थान स्थान पर मुखरित हुआ है। संग्रह सामान्य कोटि का है।

(२) बुद्ध और नाचघर

'बच्चन' कृत इस संग्रह में पुरानी रचनाएं हैं। लेकिन संग्रह में ऐसी कोई नवीनता नहीं है, जो उल्लेखनीय हो।

(३) प्रतिमा

सुमित्रानन्दन 'पंत' के इस कविता संग्रह में आधुनिक और पुरातन का सतुलन किया गया है। 'पंत' ने संगृहीत कविताओं को तीन श्रेणियों में वर्गीकृत किया है। प्रथम कोटि में प्रकृति सम्बन्धी कविताएं आती हैं जिनमें भावप्रवणता, उत्कृष्ट शिल्प कौशल के साथ साथ प्रादेशिक प्रेम-कथा का हृदयग्राही चित्रमय अङ्कन किया है लेकिन जहां कवि प्रतीकों के नग्नता पर दर्शन-वसन टांगने लगता है, वहीं प्रखरता है। 'कूर्मांचल के प्रति' में कविता ने दार्शनिक प्रवचनों को क्षमता के साथ सम्भाल लिया है।

भाषा अतिशय प्रायिक है जिससे कविता उसके दुर्वह भार को सम्भाल नहीं पाती। काव्यभाषा से कविता निर्वीर्य हो जाती है। दार्शनिक और उपदेशात्मक स्वर कवि की कल्पना की हत्या करते हैं।

दूसरी कोटि की कविताओं के बारे में कवि ने कहा है कि सृजन चेतना के नवीन रूपकों तथा प्रतीकों में युग जीवन के अनेक स्तरों को स्पर्श करती हुई काव्याभिव्यक्ति की प्रेरणा मूर्त हुई है। आवरण अभिनव अवश्य है कविता छायावादी भावोद्वेग में विचरण करती रही है। अनेक स्थलों पर सचरण है। जहां सचरण नहीं है वहां उर्ध्वोमुखता ही संचरण का स्थान ले लेती है। तीसरी कोटि की कविताओं में सृजन-चेतना के नवीन रूपकों का समावेश काव्यात्मक प्रेषणीयता के लिये किया है। कौए बतखें मेंढक, और स्वर्णमृग ऐसी ही रचनाएं हैं।

(४) वाणी

विविध विषयों पर लिखी हुई पंत की कविताओं का संग्रह है। जहां 'पंत' ने अभिसिक्त अनुभूति और अभिव्यक्ति व आविर्भाव पर लिखा है वहां

वर्तमान के झरोखे से भविष्य में झांका है। आत्म निवेदन में पंत ने इसे स्पष्ट किया है।[1]

भारतमाता में प्रगतिवादी स्वर उभरा है —

भारत माता
ग्रामवासिनी
— —
तीस कोटि सुत, अर्ध नग्न तन,
अन्न वस्त्र पीड़ित, अनपढ़ जन,
झाड़ फूस खर के घर आँगन,
प्रणत शीश
तरुतल निवासिनी।[2]

(५) चक्रवाल

दिनकर की अब तक की रचनाओं का संग्रह है। भाषा सरल और ओजपूर्ण है।

(६) कला और बूढ़ा चाँद

अरविन्द दर्शन के संदर्भ में रची गई पंत की नव्य कृति है। इसमें विचार जगत नये मोड़ को सामने लेकर आया है। कविता के चरणों में बंधी छन्दों की पायलें उतार कर अलग रख दी गई हैं। इसलिये छन्दों से मुक्त कविता का नैसर्गिक सौन्दर्य व्यक्त हुआ है। इस संग्रह की कविताएं परवर्ती काव्य की दार्शनिकता या भविष्यानुवादी कल्पना के पंखों पर बिठा कर मन के उन्मुक्त गगन में विचरण करती हैं। भावी युग संचरण के सम्पूर्ण चित्र कल्पनामय हैं —

---

१ सुमित्रानन्दन 'पन्त', वाणी, पृ० २६।

२ सुमित्रानन्दन 'पन्त', 'वाणी', पृ० १८७।

प्राणो के पुत्र हम
स्वप्नो के रथ पर आएगे,
रस की सन्तानें,
अनन्त यौवन के गीत गाएगे।[1]

कहीं-कहीं आध्यात्मिक पीठिका पर यौन बिम्बो, प्रतीको, यौन कुण्ठाओं को अभिव्यक्त किया गया है —

धरती के जघनो के बीच
फैली
घाटियो के अग
कुम्हलाने लगे हैं[2]
— —
अमृत सरोवर में
रतिसागर में डूब
मैं पूर्ण हो गया।[3]

लेकिन अन्य प्रकार के बिम्ब तथा प्रतीक पत के विराट तथा व्यापक क्षितिज को लिये सफलता पूर्वक व्यक्त हुए हैं। पत ने बाधक की ओर उन्मुख विचारधारा को नये परिवेश में प्रस्तुत किया है।

(७) अनागता की आखें

वीरेन्द्रकुमार जैन ने इस काव्य सग्रह मे शब्दों और बिम्बो का व्यापक चित्र खींचा है। कवि अरविन्द दर्शन से प्रभावित है। कविताओ की भावभूमि रूमानी पृष्ठ पर आत्मदर्शन और विश्वदर्शन दोनो में लिखी गई है। भाषा सस्कृतनिष्ट व क्लिष्ट है शैली अस्पष्टी और निराली है।

---

१ सुमित्रानन्दन पन्त, 'कला और बूढ़ा चाद', पृ० ३०।
२ " " पृष्ठ २६।
३ " " 'कला और बूढ़ा चांद', पृ० ३८।

(८) इतिहास के आँसू

रामधारी सिंह 'दिनकर' की दस ऐतिहासिक कविताओं का संग्रह है। 'मगध महिमा' नई है, शेष पुरानी हैं। ओजमयी भाषा और आवेशपूर्ण उद्गार अवश्य हैं।

(९) धूप और धुआँ

'दिनकर' के इस संग्रह में स्वराज्य से फटने वाली आशा की धूप और उसके विरुद्ध जमे हुए असन्तोष का धुआँ है। सामयिकता का इसमें स्पर्श है। कवि भारतीयता की रक्षा के साथ देश में साम्यवाद की अवतारणा चाहता है।

अन्य संग्रहों में माखनलाल चतुर्वेदी की 'मा' वेणु लो गूँजे धरा' आदि हैं।

८ तथाकथित प्रयोगवादी काव्य संग्रह

१. नील कुसुम

'दिनकर' की सन ४६ से ५४ तक की कविताओं का संग्रह 'नील कुसुम' नाम से निकला है। आमुख में दिनकर ने इसे प्रयोगवादी संज्ञा देने की प्रार्थना की है। परन्तु भाव, भावुकता, स्वर की दृष्टि से इसमें कोई नवीनता नहीं है न ही प्रयोगवाद की तरह चिन्तन और बुद्धि की प्रधानता है। कल्पना, भावुकता ही अधिक है। शिल्प भी वैसा ही है। समझ में नहीं आता 'दिनकर' को प्रयोगवादी खेमे में खड़े होने की क्या सूझी है? शायद हवा के साथ बांस की तरह लचीला होना 'दिनकर' के व्यक्तित्व का अभिन्न अङ्ग हो गया है।

९ प्रयोगवादी संग्रह या 'नई कविता' के संग्रह

१, अरी ओ करुणा प्रभामय

अज्ञेय द्वारा अनूदित, मौलिक कविताओं का संग्रह है। लघु कविताओं में

प्रति कवि की आस्था है क्योंकि इसमें भाव की सहति और तीव्रता का गुण समाविष्ट हो जाता है।

✓ सूप – सूप भर
धूप – कनक
यह सूने नभ में गई बिखर
चौधाया
बीन रहा है
उसे अकेला एक कुरर।[1]

प्रतीकों, बिम्बों का निर्वाह अच्छा हुआ है —

पति सेवा रत साँझ
उचकता देख पराया चाँद
लला कर ओट हो गई।[2]

'हरा भरा है देश' तथा 'बागर और खादर' जैसी व्यंग्यपूर्ण कविताओं में कवि मानस का प्रसार हो गया है। नये कवि के सम्बोधन में अहम् और सकी र्णता का विस्फोट है।

२. इन्द्रधनु रौंदे हुये ये

'अज्ञेय' का बौद्धिक, भावात्मक, रहस्यात्मक कविताओं से युक्त नवीन कविता संग्रह है। जिसमें बौद्धिकता का प्राधान्य है, परिवेष्टित व्यंग तीखे हैं।

साँप
तुम सभ्य तो हुए नही
नगरो में बसना,
भी तुम्हें नही आया।
एक बात पूछूं – (उत्तर दोगे ?)

---

१ अज्ञेय', 'अरी ओ करुणाप्रभामय, पृ० २६।
२ " " पृ० ६७।

तब कैसे सीखा डसना
विष कहां पाया ?[1]

कविताएं लघु हैं। प्रतीकों का बाहुल्य है।
भोर छप्पर की छत पर बैठी एक भैंस पागुर कर रही थी।[2]

रेक र रेक,
गधे
रक रे रेक।[3]

३ बावरा अहेरी

अज्ञेय की सन् १९५० से १९५३ की कविताएं संग्रहीत हैं। अनेक कविताएं नवीन छन्द और पद योजना की दृष्टि से काफी सफल हैं। प्रकृति का पर्यवेक्षण अत्यन्त सूक्ष्म और पैना मिलता है। कविताओं का स्रष्टा अनुभूति के क्षण को तथा काव्यानुभूति के प्रवाह को परखने और आंकने में सक्षम है। नये कविता मे नाना प्रकार के स्पर्श ध्वनि, वर्णचित्रों, बिम्बों, शैली शिल्प, भाषा सौष्ठव की दृष्टि से 'अज्ञेय' सर्वोपरि है। प्रथम किरण, बावरा अहेरी बसन्त की बन्नी, ये मेघ साहसिक सैलानी, शरद के सांझ के पंछी, वर्षान्त, आदि मे प्रकृति चित्रण सुन्दर हुआ है। प्रतीकों का भी सुन्दर निर्वाह हुआ है। 'बावरा अहेरी' में बावरा अहेरी सूर्य का प्रतीक है –

भोर का बावरा अहेरी
पहले बिछाता है आलोक की
लाल लाल कनियां
पर जब खीचता है जाल को
बांध लेता सभी को साथ।[4]

---

१ अज्ञेय', इन्द्रधनु रौंदे हुये ये, पृ० २९।
२ अज्ञेय', इन्द्रधनु रौंदे हुये ये', पृ० ३१।
३ " " पृ० २९।
४ अज्ञेय', 'बावरा अहेरी', पृ० १६।

कविताओं का कलात्मक सौन्दर्य और उनकी भावगरिमा असंदिग्ध है। संग्रह में हल्की-फुलकी कविताएं भी अवश्य हैं जो 'अज्ञेय' की अहेरी प्रवृत्ति का सूचक हैं। जैसे 'कागदे की छोरिया'। कहीं-कहीं शीर्षक और विषय में ही असंगति है।

४ सात गीत वर्ष

धर्मवीर 'भारती' का नया कविता संग्रह है। परवर्ती काव्य संग्रहों के माध्यम से 'भारती' रोमांटिक कवि घोषित हो चुके हैं। लेकिन इस संग्रह में कवि रोमानियत से ऊपर उठकर व्यक्ति-मानस की गहन समस्याओं में उलझा है। वैयक्तिक कुण्ठाओं तथा मधुचर्याओं से लिप्त 'भारती' अब काव्य के यथार्थ धरातल पर कुछ झांकने लगा है। 'शका', 'जिज्ञासा', पराजित पीढ़ी का गीत, 'टूटा पहिया' जैसी कविताओं में 'अन्धा युग' की तरह युग को अनास्था, संशय तथा विकृति से युक्त घोषित किया है।

५ गीत फरोश

भवानीप्रसाद मिश्र की १९३३ से १९४७ के बीच लिखी कविताओं का इस दशक में प्रकाशित कविता संग्रह है। मिश्र 'दूसरे सप्तक' के भी कवि हैं। इनकी कविताओं में भाव, कथोपकथनात्मक शैली की पृष्ठभूमि में पर्याप्त मात्रा में दिखलाई पड़ते हैं। 'सतपुड़ा के जंगल में प्रकृति का यथार्थ वर्णन मिलता है। सन्नाटा में मानवीकरण किया गया है जहां भाषा की कलात्मकता भी दृष्टि गोचर होती है –

वह राजा था हां कोई मेल नहीं था,
ऐसे जवाब से उसका मेल नहीं था,
रानी ऐसे बोली थी, जैसे उसके
इस बड़े किले में कोई जेल नहीं था।[२]

---

१ उपरोक्त तीन संग्रहों में 'नया कवि', आत्मस्वीकार, 'नये कवि से' आदि कविताएं द्रष्टव्य हैं।

२ भवानीप्रसाद मिश्र, 'गीत फरोश' पृ० १६।

गीत फरोश कविता मे बाह्य दृष्टि से व्यग और समाज के प्रति क्षोभ प्रगट होता है –

जी हा हुजूर, मैं गीत बेचता हू,
मैं तरह तरह के गीत बेचता हूँ,
मैं किसिम – किसिम के गीत बेचता हूँ।
— — —
जी, पहले कुछ दिन शर्म लगी मुझको,
पर बाद बाद में अक्ल जगी मुझको
जी, लोगो ने बेच दये ईमान,
जी, आप न हो सुनकर ज्यादा हैरा ।

अधिकाश कविताए गद्यवत् हैं।

६ अनुचण

प्रभाकर माचवे ('तारसप्तक' का कवि) का कविता गीत, षटपदियों, प्रयोगवादी कविताओं, सॉनेट रुबाइयों आदि का संग्रह है। संग्रह में द्रुतविलंबित भी है, माल्हा भी है। 'कहो प्रेम क्या है' में गुइदको आरलैंडो की एक इटेलियन सॉनेट की छाप है।

७ धूप के धान

गिरिजाकुमार माथुर की ४५ नवीन कविताओं का संग्रह है। कुछ रूमानी यत लिए हुए यथार्थवादी कविताए हैं। कुछ रूमानी गीत हैं। बाकी प्रयोगवादी रचनाए हैं। — शिल्प मे उर्दू और अग्रेजी के शब्द प्रयुक्त हुए हैं। गीत अच्छे हैं। प्रयोगवादी कविताओं में कही शुष्क बौद्धिकता है तो कहीं नवीन प्रतीकों का बाज़ार। छन्दबद्ध कविताए अधिक लम्बी हैं। अनुभूति की व्यापकता होते हुए भी चुस्ता का अभाव है।

---

१ भवानीप्रसाद मिश्र 'गीत फरोश', पृ० १८० ।

८ ठण्डा लोहा तथा अन्य कविताएं

धर्मवीर 'भारती' के इस संग्रह में नई कल्पनाएं, नई उपमाएं, नये भाव नई शब्दावली, नये छन्द प्रयुक्त हुए हैं। भाषा में उर्दू का पुट बहुतायत से हुआ है। प्रेयसी के द्वारा प्रेमी के भाल का चुम्बन भी कराया गया है जिसकी उपमा भागवत पर रखी हुई बांसुरी से की गई है।

९ बन पाखी सुनो

नरेश मेहता की २७ कविताओं का संग्रह है। कवि ने स्वीकार किया है कि मेरे कवि से विशेष आशा नहीं रही है। फिर भी कुछ कविताएं सुन्दर हैं। लेकिन अधिकांश कविताएं हास्यास्पद हैं। कहीं पर 'झुरमुटा पर मृगनयन-सी तालियां' उड़ाई गई हैं तो कहीं आकाश को एल्युमीनम की तरह लटका हुआ बताया गया है। तो कहीं साफ़ की रोशनियां पीले टिंबर की तरह प्रतीत होती हैं। कहने का तात्पर्य यह है कि कवि ने विकृत उपमानों का बहुतायत से प्रयोग किया है। कई स्थानों पर कवि ने वैज्ञानिक बुद्धि से कलाबाजियां दिखलाई हैं। सड़क को क्लर्क-लड़की के रिबन सा बताया गया है। कवि अस्पष्ट शब्दों का प्रयोग करने में नहीं चूकता तो कहीं अशुद्ध प्रयोग करता है जैसे 'आलोको' (आलोक दो), विनयो सर्वस्वा (सवस्व निछावर करो), उन्याये (उदय हुए), भागो (भग करो), आदि।

१० दिगंत

त्रिलोचन के आरम्भ कथात्मक, प्रकृति परक तथा अन्य विषयों से ॥ ॥ सॉनेट इसमें संग्रहित हैं। कवि ने नये काव्य रूप अपनाकर नये प्रयोग किये हैं।

११ सतरंगे पखों वाली

'नागार्जुन' ने इस काव्य संग्रह में शैली और शिल्प के क्षेत्र में नई उपलब्धियां प्रदान की हैं। कहीं कहीं व्यंग्य बहुत सशक्त हो गये हैं। अकृत्रिम अनुभूति इस कविता संग्रह की विशेषता है।

१२ कुछ कविताएं

शमशेरबहादुरसिंह की ६४ प्रयोगवादी कविताओं का अभिनव संग्रह है। राग कविता में त्रिलोचन (अपने खेवे) की रचनाओं को सरलता का आकाश बतलाया है। साथ ही नींद की इच्छाएं (बहुवचन क्यों ?) तथा सुन के ऐसी ही सी एक बात, आत्मकथ्य प्रतीत होती हैं ? जिसमें हिन्दी साहित्यिकों में गुट बन्दी के एक घृणित रूप की प्रतिक्रिया दिखलाई गई है। रेडियो पर एक यूरोपीय संगीत में भाषा को उर्दू का पूरा जामा पहना कर कमिंग्स की नकल की गई है –

जो कुछ है
जो कुछ है
खो।
खो।
खो।
ओ शीरीं। ओ लैला। ओ हीर।
– जा।
– जा।
जा। – सो।[1]

कहीं कहीं पर नये उपमानों को प्रयुक्त किया गया है। बादलों से पूर्णिमा का चाँद निकला है। आसमान गल रहा है। पीले गुलाबों का एक दरिया उमड़ रहा है जो बादलों के झिलमिलाते स्वप्न जैसे परों को चूम रहा है।[2]

सुबह का बिम्ब नये रूप में प्रस्तुत किया है –

जो कि सिकुड़ा हुआ बैठा था, वह पत्थर
सजग सा होकर पसरने लगा
आप से आप।[3]

---

१ शमशेरबहादुरसिंह 'कुछ कविताएं', पृ० २०।
२ शमशेरबहादुरसिंह, कुछ कविताएं', पृ० २०।
३ शमशेरबहादुरसिंह, 'कुछ कविताएं', पृ० ३६।

१३ धरती और स्वर्ग

स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् लिखी गई कविताओं के इस संग्रह में डॉ देवराज ने कलात्मकता पर अधिक ध्यान नहीं दिया है। देवराज ने नय अर्थ को सवारने मे भूल कर दी है, वहीं कलात्मकता लुप्त हो जाती है। कला का जो कुछ रूप परिलक्षित होता है उसमें आधुनिकता के साथ मध्यकालीन मनोवृत्ति का समन्वय मिलता है। कहा-कहीं संस्कृत शैली के समास गर्भित पद भी मिलते हैं, जिनसे भाषा मे बोझिलता आ गई है।

१४ नाव के पाव

डॉ० जगदीश गुप्त के इस कविता संग्रह मे दो खण्ड हैं (१) नाव के पांव, (२) घूटती लहरें। इसकी अधिकाश कविताए गीतात्मकता लिये हुए हैं। इस संग्रह पर छायावादी तथा छायावादोत्तर गीतकारो का प्रभाव है। कहीं कहीं भावात्मक सवेदनाए बहुत गहन हो गई हैं। अनुभूति की नवीनता, चित्रण की मनोरमता भी है। लेकिन फिर भी कविताए हल्की हैं। कवि अपनी अभिव्यक्ति को स्पष्ट नही कर पाया है जिससे रचनाए प्रभावहीन हो गई हैं —

माना हमारे स्नेह मे कोई कमी होगी नही
माना हमारे दीप की कम रोशनी होगी नही
लेकिन किसी भी रोशनी को बाँध लेना पाप है
अपने हृदय का स्नेह दुनिया को न देना पाप है।[१]

१५ शब्द दंश

जगदीश गुप्त का अभिनव कविता संग्रह है। इस कविता संग्रह से लगता है कि यह नया कवि प्रयोगवाद के सकुचित दायरे से अब ऊब गया है और अब मानव चरित्र की गरिमा को कुछ व्यक्त करना चाहता है।

---

१ जगदीश गुप्त, 'नाव के पांव'।

तूलिका दो
फलक लाओ
चितेरा
हूँ
रग रेखा से मुझे है प्रेम
विवश मेरी दृष्टि पडती है वही—
नयी रेखाए जहा पर दीखती हैं।[१]

१६ चक्रव्यूह

कु वर नारायण ने वैयक्तिक आयामो की स्थापना मे अपना समय लगाया है। चिन्तन, बौद्धिकता को काव्य का धरातल बनाया है। इन दोनो से मुक्ति पाकर ही यह नया कवि आकर्षक बिम्बो तथा सहज अनुभूति के आधार पर ही कुछ स्थान प्राप्त कर सकता था।

१७ कविताए

कीर्ति चौधरी के इस सग्रह मे वैयक्तिक सवेदना ही अधिक मात्रा म है। वैसे इस सग्रह की अधिकाश रचनाओ म अभिव्यक्ति की कृत्रिमता ही मिलती है।

१८ अकेले कठ की पुकार

अजितकुमार की वैयक्तिक सवेदनाओ से युक्त कविताओ का सग्रह है। अभी कवि का मानसिक क्षितिज व्यापक नही हो पाया है। कुछ भावात्मक कविताए अच्छी हैं।

अन्य प्रयोगवादी सग्रहो में रघुवीर सहाय कृत 'सीढ़ियों की धूप म' डॉ० धर्मवीर कृत 'ठण्डा लोहा', सर्वेश्वर दयाल कृत 'काठ की घंटियां', गिरिजा कुमार माथुर कृत, 'चादनी-चूनर' कु० रमासिंह कृत, 'समुद्र के फन' आदि हैं।

---

२ जगदीश गुप्त 'नाव के पाँव', पृ० ५० ।

१०. लोकप्रिय कवि संग्रह

इधर लोकप्रिय कवि के नाम से भगवतीचरण वर्मा, रामधारीसिंह 'दिनकर', हरिवंशराय 'बच्चन', रामेश्वर शुक्ल 'अञ्चल', गिरिजाकुमार माथुर आदि के कृतित्व और व्यक्तित्व को लेकर कुछ संग्रह प्रकाशित हुए हैं। इन संग्रहों की विशेषता यह है कि इनमें कवि की समस्त कृतियों की प्रतिनिधि कविताओं का युग विभाजन के अनुसार संकलन किया है। साथ में लम्बी भूमिका सम्पादकों की ओर से लिखी गई है। लेकिन 'लोकप्रिय' शब्द भ्रामक है। संग्रह करते समय 'अच्छे कवि' और लोकप्रिय कवि' के अन्तर को नहीं देखा गया है। कृतियों के चयन की श्रेष्ठता का कोई निश्चित मापदण्ड नहीं रखा गया है।

११ हास्य काव्य संग्रह

हिन्दी में हास्य और व्यंग्य की श्रेष्ठ रचनाओं का चिन्तनीय अभाव रहा है।

१ रंग और व्यंग्य

बरसानेलाल चतुर्वेदी का सद्य प्रकाशित, कवि सम्मेलनों में सुनाई हुई कविताओं का संग्रह है। हास्य-व्यंग्य की यह सफल कृति है। मुद्रित होने पर भी हास्योत्पादकता कायम है, यही इसकी सफलता है।

२ चले आ रहे हैं

गोपालप्रसाद व्यास इस हास्य व्यंग्य की प्रमुख रचना है। व्यंग्य बहुत पैना है।

७ नयी कविता

अर्द्धवार्षिक प्रकाशन है। अबतक ६ अङ्क निकल चुके हैं। इसके प्रकाशित होते ही हिन्दी काव्य में हलचल मच गई। काव्य का एक रूप 'नयी कविता' के नाम से सामने आया। सम्पादकों ने यह स्पष्ट नहीं किया था कि 'नयी कविता' क्या है। उनका आशय तथा संकेत इस ओर था कि जो नई दिशा में उन्मुख हो, गतिशील हो, परम्परा से न हो। वस्तुतः 'नयी कविता' प्रयोगवाद का ही विकसित रूप है।

इन दिनों पत्र पत्रिकाओं की भरमार रही है। गीतकारों में माखनलाल चतुर्वेदी, 'बच्चन' (लोकधुनों पर लिखे गीत) रामावतार त्यागी, सुमित्रा कुमारी सिन्हा, 'नीरज', रमानाथ अवस्थी, बलबीरसिंह 'रंग', नरेन्द्र शर्मा शिवमंगलसिंह 'सुमन', शम्भूनाथसिंह, ने अच्छे गीत लिखे हैं। प्रगतिवादियों में रांगेयराघव, नागार्जुन, 'सुमन', 'अचल' और रामविलास शर्मा ने भी अच्छी, कविताएं लिखी हैं। प्रयोगवादियों में तीनों सप्तकों के कवियों ने तथा 'नयी कविता' में प्रकाशित कवियों ने बहुत कुछ स्फुट रूप में लिखा है। अब प्रयोगवाद या नयी कविता का युग है। किन्तु प्रयोगवाद का पथस्थान भी एक निश्चित तथा दृढ़ परम्परा के अन्तर्गत हो रहा है।

३ | पिछला दशक : प्रेरक प्रवृत्तियाँ

पिछला दशक विषय और शैली की दृष्टि से अधिक विस्तृत रहा है। छायावादोत्तर रूमानी कृतियां, मार्क्स-दर्शन से प्रभावित कविताएं, प्रगति प्रयोग धाराओं की कविताएं, नयी कविता, अपनी अपनी विशिष्टताओं से युक्त होकर अनेक उद्भावनाओं के साथ व्यक्त हुई हैं। इस समग्र कविता की प्रेरक प्रवृत्तियों का सुविधा के लिए दो वर्गों में विभक्त किया जा सकता है —

(१) गीति काव्य तथा प्रबन्ध काव्यों की प्रेरक प्रवृत्तियाँ

(२) नयी कविता की प्रेरक प्रवृत्तियाँ

(१) गीति काव्य तथा प्रबन्ध काव्यों की प्रेरक प्रवृत्तियां

दशक के दोनों वर्गों की विशेषता यह रही है कि इन्होंने वादविवाद के संकुचित दायरे से निर्लिप्त रहने का प्रयास किया है। गीतकारों का वर्ण्यक्षेत्र प्रकृति और प्रणय रहा है लेकिन प्रबन्ध काव्यकारों ने विगत के पट पर, आगत को कुछ देकर, नये चित्रों को सबल तूलिका से रेखांकित किया है। गीतकारों ने वैयक्तिक भावभूमि पर हर्ष विषाद, सुख दुःख, सामूहिक हर्ष, उल्लास, आशा निराशा को नैसर्गिक रूप से व्यक्त किया है जब कि प्रबन्धकार समष्टिगत चेतना को लेकर आगे बढ़े हैं। गीतकारों पर छायावाद का अधिक प्रभाव है। यद्यपि इस सम्बन्ध में अनेक विषमताएं होते हुए भी सामान्य प्रेरक प्रवृत्तियों का ही उल्लेख किया जा रहा है।

१. मानवतावादी दृष्टिकोण

अनास्था के इस युग में जब कि नैतिकता का ह्रास और मानव मूल्यों का पतन हो रहा है, सच्चा कवि मानवता को आच्छन्न अन्धकार में देखता है। यान्त्रिक जीवन की परोक्षता से उसका कोई सम्बन्ध नहीं है। त्याग धर्म की साधना उसकी गति नहीं है। वह इस कलुषित मानवता से दुखी है। मानवता की स्थापना करना उसका अभीष्ट है।

यान्त्रिक जीवन की परोक्षता मेरा साध्य नहीं है,
त्याग धर्म की यह साधना मेरा लक्ष्य नहीं है।
— —
मानव की हो नयी स्थापना यही गान है मेरा।[1]

संसार ही उसका घर है। सभी व्यक्ति उसके परिजन हैं, कोई भी पराया नहीं है। वह देश काल की सीमाओं से परे है। मंदिर मस्जिद का उसके सामने कोई व्यवधान नहीं है। उसका आराध्य प्रत्येक आदमी, देवालय, हर द्वार है।[2]

अन्धकार निराशा का प्रतीक है। अपना घर उजाला कर यदि मनुष्य जिया तो क्या जिया। करोड़ों शोषितों की आवाज तुमसे कुछ माँग करती है। यदि जीवित रह कर मानव का सम्मान नहीं बढ़ाया तो वह जीवित रहना व्यर्थ है। जनसमूह में जागृति का गान पैदा नहीं किया, तो ऐसे मरण से भी क्या उपलब्धि हुई। अदृश्य प्रियतम की अर्चना की अपेक्षा नवयुग का सहचर बनना कहीं श्रेयस्कर है।[3]

कवि जीर्ण शीर्ण विश्व पर्णों के स्थान पर नूतन विश्व चाहता है जहाँ जनहित के लिये अनन्त वैभव हो—

---

१ रांगेयराघव, 'निर्दय तुम न जगाओ', ताज की छाया में, पृष्ठ १३०

२ नीरज, 'प्राणगीत', पृष्ठ ४।

३ 'अंचल', लोकप्रिय कवि संग्रह, पृष्ठ १२४।

मर्द्धशती रही बीत
भावी म लय अतीत,
दैन्य ताप, रक्त ताप
हरे, हरे !
हसता जीवन वसत
कुसुमित जग के दिगत,
जनहित वैभव अनत
भरें, भरें !
जीर्ण शीर्ण विश्वपर्ण
मरे, मरे ।[1]

इन स्वरा मे मानवता का भ्रादर्शवादी स्वर है जो युग निर्माण का प्रमुख भ्राधार है । इन स्वरा मे शोषिता के प्रति सहानुभूति है । नश्वर बधना के प्रति उपेक्षा का भाव है ।

२ सामाजिक चेतना

गीतकार सामाजिकता के प्रति सक्रिय, चेतना शील भाव प्रवण रहा है । गीतकार ने ससार के बारे में सोचा है, विचारा है । एक ग्रोर जहा वह वैय क्तिक प्रणय से ग्रावर्षित है, दूसरी ग्रोर उसने सामाजिकता के प्रति तीव्र ग्रनु भूति की है —

भ्रम नही यह टूटती जजीर है, श्रौर ही भूगोल की तस्वीर है,
रेशमी ग्र्याम की ग्रर्थी लिये मुस्कराती जा रही है जिन्दगी ।[2]

कवि ने सामाजिक विषमताग्रा से भी सघर्ष किया है ।

कि जब तूफान ग्राया है, हिलोरों ने बुलाया है,
तुम्हारी नाव क्या तट से बधी रह जायगी ।[3]

१ सुमित्रानन्दन पत, 'रजत शिखर 'उत्तरशती', पृष्ठ ६० ।
२ वीरेन्द्र मिश्र, 'गीतम , पृष्ठ ८३ ।
३ " " पृष्ठ ८४ ।

प्रबन्ध काव्यों में भी सामाजिक चेतना प्रबुद्ध रही है। अन्याय का प्रतिकार करना प्रत्येक मानव का धर्म है। बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' ने उर्मिला के माध्यम से इसे व्यजित किया है —

कह दो आज पिता दशरथ से
कि यह अधर्म नहीं होगा
— —
राज नहीं कैकेयी का यह,
दशरथ का न स्वराज्य यहाँ
जन – गण – मन रंजना कर्त्ता ही
होता है अधिराज यहाँ।[1]

३. दार्शनिकता

गीतकारों ने दार्शनिक तत्वों के साथ सामाजिक तत्वों का सामंजस्य स्थापित किया है। जिससे रचनाओं में सरसता बनी रही है। सांख्य, गांधी, जैन, अरविन्द दर्शन से प्रभावित अनेक रचनाएं की गई हैं।

सांख्य दर्शन में प्रकृति और पुरुष का अटूट सम्बन्ध माना गया है। प्रकृति झुटपुटी साँझ है जो तरुकुंजों के पास उतरती है। पुरुष प्रभात है हरा भरा वनकुंज है। प्रकृति का गान ही पुरुष का जीवन है। पुरुष की फैलाई हुई बाहों पर प्रकृति झूल जाती है। प्रकृति और पुरुष जीवन की अभिव्यक्ति हैं, एक दूसरे के पूरक हैं। सनातन से चले आये जीवन के बीज दोनों में समाहार किये हैं —

सुभग तुम झिलमिल – झिलमिल प्रात
प्रात का मन्द – मधुर कलहास
गहन में थकी झुटपुटी साँझ
उतरती तरु कुंजों के पास
— —

१ बालकृष्ण शर्मा, 'नवीन' 'उर्मिला' सर्ग ३ पृष्ठ १४९।

पुरुष तुम फैला देते बाहु
प्रकृति में जाती उन पर झूल ।[1]

कुछ गीतकार उमरखय्यामी दर्शन से प्रभावित हैं। प्रबन्ध काव्यों में 'पार्वती' महाकाव्य में शैव-दर्शन की प्रचुरता है तो 'वर्द्धमान' में जैन-दर्शन की।

नियतिवाद

उमरखय्यामी विचारधारा का प्रभाव होने से नियति पर नीरज की आस्था है। शम्भूनाथसिंह पर भी इस प्रभाव को देखा जा सकता है —

वक्र ही जब हो गई है, आज मेरी भाग्य रेखा
चित्र मे किसके भरू मैं, हाय ! अपनी रूप लेखा।[2]

नियतिवाद का समावेश हिन्दी काव्य में पहले से ही हो चुका था। इस वाद मे नियति ही इस सृष्टि के समस्त कार्यों की संचालिका तथा नियन्त्रिका शक्ति मानी गई है। प्रबन्ध काव्यो मे भी इसका प्रभाव देखा जा सकता है।

५. वैयक्तिकता

गीतकारो ने वैयक्तिक अनुभूतियों और संवेदनाओं को ही अपने गीतो मे व्यक्त किया है। प्रणय में वैयक्तिकता का समावेश इनकी प्रमुख प्रवृत्ति रही है। इस वैयक्तिकता के दो पक्ष दिखलाई पड़ते हैं। एक वह है जो रूपासक्ति द्वारा उत्पन्न मोह से प्रसूत, अतृप्ति, वेदना निराशा के रूप मे मुखर हुआ है। उसमे सौन्दर्य के प्रति आकुलता दिखलाई पड़ती है। दूसरे पक्ष मे पतनोन्मुख प्रवृत्तियाँ सजग रही हैं। 'नीरज' के गीतो में आकुलता के ही दर्शन होते हैं —

एक बार यदि अपने मदिर मदिर अधरो से
छू लो मेरे तृषित अधर मदिर रागमयी तुम
सच कहता हूँ हस - हस कर मैं जगभर का विष पी जाऊगा।[3]

---

१ गोपालसिंह नेपाली साप्ताहिक हिंदुस्तान २४ फरवरी १९६०।
२ शम्भूनाथसिंह रूप रश्मि पृष्ठ २१।
३ नीरज 'प्राणगीत', पृष्ठ ५८।

६ यथार्थ चित्रण

गीतकार का भावलोक कल्पना से ही अनुप्रेरित है परन्तु कहीं कहीं उसने यथार्थवादी दृष्टि से आस-पास की वस्तुओं का पर्यावलोकन किया है। मध्य वर्गीय परिवार का विभिन्न कोटि और मध्यवर्गीय शहर के विभिन्न रूपों का निरूपण किया गया है —

उत्तर — नीम की छाया में
दो बीमार रिक्शे
एक मरियल इक्का
एक खुजहा कुत्ता।
दक्षिण — मोरी के पास लगा हुआ
चाट का एक खोम्चा,
एक पान की
एक हलवाई की दुकान
पगडंडी पर हाटें बिछाए हुए
मोची और हज्जाम।[1]

७ छायावादी प्रवृत्तियां

पंत 'प्रतिमा' और 'कला और बूढ़ा चाँद' में छायावादी और आधुनिक दृष्टिकोण के समन्वित रूप को लेकर चले हैं। कवि प्रकृति की खोज में है। उसके हृदय में कुतूहल है —

सांझ के धुंधलके में
धीमी – धीमी
टिनटिनाती घंटियों की ध्वनि
किन अनजान चरागाहों से
आ रही है।[2]

१ नीरेन्द्र साप्ताहिक हिन्दुस्तान २ अक्टूबर १९६० ।
२ पन्त 'प्रतिमा', पृ० २६ ।

८. आस्था और विश्वास

कतिपय गीतकारो की जीवन के प्रति आस्था, विश्वास, प्रेम से पुष्ट और पोषित है। बाधा और उलझनो के क्षणो मे भी आशा का दीप जलाये सफलता के अभियान में पूरा विश्वास लिये हुए हैं। मानव सुख-दुख के दोला मे तो झूलता ही रहता है जैसे प्रकृति का परिवर्तन रात्रि की कालिमा, दिवस के उजियारे मे दिखाई पडता है।

शरीर यदि मिट्टी का है तो चिन्ता की क्या बात है। प्रस्तर मूर्ति बन कर, मधूरे पूजन को पूर्ण कर इतिहास लिखा जा सकता है —

जी रहे हैं मेरे विश्वास।
प्राण मन का घेरे विश्वास।
दिवस का राता में अवसान,
रात का प्रात अनुसन्धान,
बदलता रंगो को आकाश,
भिन्न ऋतु परिया करती हास
कभी ले आसू, कभी सुहास,
जी रहे हैं मेरे विश्वास।[1]

दीप जलते-जलते स्वय शलभ बन गया है। मुसाफिर भी चलते चलते मंजिल बन गया है। यदि इस समय प्रियतमा ही क्या पूरा ससार रूठ जाये तो गीतकार को क्या चिन्ता है। जगत की हर लहर मझधार बन जाये तो गीतकार विचलित नही हो सकता है।[2] उसके स्वर मे आस्था और विश्वास है।

प्रबन्ध काव्यो के नायको मे भी आस्था और विश्वास के स्वर कूजित हैं। 'एकलव्य' की आस्था द्रष्टव्य है —

---

१ सुमित्राकुमारी सिन्हा बोलों के देवता, पृ० ५।

२ नीरज, 'बादल बरस गयो, पृ० १११।

मेरा व्रत अपनी दिशा में गतिशील है,
गुरु की सहज शक्ति उसके समीप है।
तम से घिरा हो नभ, किन्तु शून्य मार्ग में,
एक – एक तारा उसे एक – एक दीप है।[१]

२ नयी कविता की प्रेरक प्रवृत्तियां

प्रयोगवाद अथवा नयी कविता, नये आयामों तथा नये क्षितिजों के निर्माण में संलग्न रही है। सामान्य तौर पर कुछ विकृतियों से अभिभूत नयी कविता ने लाभ का अन्य प्रकार की कविताओं का आच्छन्न कर दिया है। नन्ददुलारे वाजपेयी का नयी कविता के बारे में कथन है—'यदि पूर्ववर्ती कविता अपने परिष्कार, अपनी स्वच्छन्दता अपने काव्य कौशल के लिये ख्यात थी, तो यह 'नयी कविता अपने अशान्त सौन्दर्य, अपनी अन्तर्मुखता, अपनी विजड़ित मनोगति तथा अपनी स्पष्ट या उलझी हुई अनुभूतियों का इजहार करती हुई युग संवेदना का प्रतिनिधित्व कर रही है।"[२] इसकी कतिपय प्रेरक प्रवृत्तियां इस प्रकार हैं —

१ *नैराश्य और वेदना*

नयी कविता के प्रमुख आधार स्तम्भ है निराशा और अवसाद। गीतकारों मे यह नैराश्य प्रणय की असफलता के बाद दिखलाई पड़ता है, जब कि नयी कविता के रक्त में ही ये कीटाणु प्रवेश कर जाते हैं।

विगत युद्ध के कारण मानवमूल्य विघटित हुए। सामाजिक, सांस्कृतिक आर्थिक संघर्ष तथा वैयक्तिक स्वतन्त्रता की मांग और शून्य हृदयों की चीखों और पुकारों ने नये कवि को निराशा और अवसाद के कुहरे से लपेट लिया।

---

१ रामकुमार वर्मा एकलव्य 'धारणा' पृ० १३४।

२ नन्ददुलारे वाजपेयी 'साप्ताहिक हिन्दुस्तान', १६ जून १९६०।

विकलता के ब धन में बधा कवि छटपटा रहा है । निराशा ज य अनुभूतिया हा उसके पास व्यक्त करने को शेष रही हैं । आस्था विहीन समाज किस ओर प्रवृत्त होता जायगा, यह कहा नही जा सकता है। आज के कवि की आखें दिन भर उदास रहती हैं। उसकी मुटठी मे भिचो हुई कविता की कापी के पन्ने मुड जाते हैं। उदासीनता की छाया, अवसाद की रेखा उसके मन पर छाई रहती है

फैले हुए जगल के झाडो की टोनो पर,
दिन भर की दुखी मेरी आखा के कोनो पर
सन्ध्या की किरणो की छाया सी पडती है।
बैठा हूँ शान्त, दल चिडियो के उडते हैं,
मुटठी मे भिचे हे पन्ने कविता की कापो के,
बेचारे मुडते हैं।[1]

नये कवि का दुख मिला है । वह जीवित रहते हुए भी अपने का मृतक समान मानता है —

सुख मिला
उसे हम कह न सके।
सस्पर्श बृहत् का उतरा सुरसरिता
हम बह न सके।
यो बीत गया सब हम मरे नही, पर हाय ! कदाचित्
जीवित भी हम न रह सके।[2]

टीस, निराशा, कसक, वेदना अन्तर्द्वन्द्व अवसाद, उदासी, दुख, विकलता, असहायता, विवशता की कालिमा से आच्छादित कवि मानस अपने को नदी तल की रेत के समान तुच्छ मानता है, जो किसी भी क्षण बह जाने की अवस्था में है, कहीं वह सृष्टि को ही पीडा का कल्पवृक्ष मानता है।

दुख और वदना वर्तमान के असन्तोष के कारण अवतरित होते हैं।

१ भवानीप्रसाद मिश्र, लहर काव्यांक पृ० ३४।

२ अज्ञेय इन्द्र धनु रौंदे हुये ये' पृ० ७६।

प्रतृप्त पाराशाप्रो और प्रभावो मे वेदना मुखरित होती है। वेदना ने ही कभी नैराश्य और कभी वैराग्य का रूप धारण किया है। दुःख, वेदना, पीडा का वरण करना लाभप्रद है क्योंकि उसके बिना जीवन मे पूर्णता नही आने पाती है —

वहन करो
ओ मन। वहन करो पीडा।
यह अंकुर है उस विशाल वेदना की,
तुम मे थी जन्मजात
आत्मज है,
स्नेह करो
आंचल से ढक कर रक्षण दो !!
वहन करो, वहन करो पीडा
सृष्टि प्रिया पीडा है कल्पवृक्ष,
दान समझ
शीश झुका स्वीकारो
मधुकरि स्वीकार !!
वहन करो, वहन करो पीडा !![1]

जब दीपक म नेह ही समाप्त हो गया, बाती जल गई, तब आर्तनाद करने से क्या लाभ ? क्योंकि वेदनाभिभूत कण्ठ स्वर वेदना के घनीभूत तिमिर को भेद नही पायेगा। किन्तु ऐसे समय धैर्य का पलायन होना भी हितकर नहीं है, क्योंकि वेदना के दीपक म शक्ति की लौ प्रज्ज्वलित कर उत्पन्न हुई आलोक रश्मिया निविड अन्धकार को भेद सकेंगी —

चुक गया जब नेह बाती जर गई
मत करो चीत्कार
पगले !
शैल की चट्टान – सा ही

१ नरेश मेहता 'बन पाखी सुनो', पृ० ९।

है डटा यह अंधकार अपार
इसको भेद पाएगा नहीं यह कण्ठ स्वर
पहुँच पाएगी नहीं उस पार
यह तेरी पुकार
व्यर्थ है ललकार
अनुनय व्यर्थ है ।
पर न हिम्मत हार,
प्रज्ज्वलित है प्राण में अब भी व्यथा का दीप
ढाल उसमें शक्ति अपनी
लौ उठा ।
लौह-छैनी की तरह आलोक की किरणें
काट डालेंगी तिमिर को
ज्योति की मापा नहीं बंधती कभी व्यवधान से
मुक्ति का बस है यही पथ एक ।[1]

दीपक सजग है क्रियाशील है । दूसरी ओर तिमिर से आच्छादित कवि सशंकित है । कवि का जीवन नदी तल की रेत है । लेकिन जीवन स्पन्दनशील है । रेत की तरह जड़ नहीं है —

मैं हूँ नदी तल की रेत
अर्पित हूँ
लेकिन किसी भी क्षण पावों तले से
बह जाऊँगा ।[2]

नई उम्र में वार्धक्य का आना घोर नैराश्य का सूचक है । मानसिक क्लेशों की घनीभूत कालिमा असमय में जर्जरवृद्धपन ला देती है, जिससे तन, मन की समस्त चेतना अवरुद्ध हो जाती है —

---

१ भारतभूषण अग्रवाल 'ओ अप्रस्तुत मन', पृ० ५१-५२ ।
२ धर्मवीर भारती, सात गीत वर्ष पृ० १२३ ।

तुम लिखती हो—
इस नई उम्र म जाने कैसा
असमय जर्जर वृद्धापन
इस तन मन पर बूढे मुर्दा अजगर सा बैठा जाता है।[1]

यतिवादिता, ग्रात्म तल्लीनता एव सामाजिक विषमताओं से एकाकी सघर्ष करने के कारण घुटन सी व्याप्त हो जाती है। उस समय कवि को लगता है कि मेरा सारा जीवन नष्ट हो गया है, साधना भ्रष्ट हो गई है। मैंने अपने स्वप्नो का दम घोटा है —

ऐसा लगता ग्राज कि मेरा सारा जीवन नष्ट,
ऐसा लगता ग्राज कि मेरी सभी साधना भ्रष्ट,
मैने हरदम घोटा अपने सपनो का दम।[2]

इन कवियो को शक्ति और क्षमता के झूठे गर्व म एकाकी होने क कारण गहरी पराजय हाथ लगी है, जिसमे निराशा का अधियारा युग उनके हृदय म गहराई तक उतर गया है, जिससे कवि यथार्थ के प्रति भीरु और वस्तु जगत क प्रति उदासीन हो गया है —

हम सब के मन मे गहरा उतर गया है युग, अधियारा है
अश्वत्थामा है, सजय है,
है दासवृत्ति उन दोनों वृद्ध प्रहरियो की
अन्धा सशय है, लज्जाजनक पराजय है।[3]

नये कवि क हृदय में पीडा और दर्द है —

अलग हू, पर विरह की धमनी, तडपती लिये
स्पदित स्नेह, ओ हृदय के आलोक
मेरी वेदना के कोर।[4]

---

१ धर्मवीर भारती 'ठण्डा लोहा', पृ० ४१।
२ धर्मवीर भारती 'ठण्डा लोहा' पृ० ६३।
३ धर्मवीर भारती अन्धा युग पृ० १३०।
४ अज्ञेय, बावरा अहेरी', पृ० ३८।

कवि की आखा में दु ख का सागर लहरा रहा है। अश्रु से युक्त आखा में एक के ऊपर एक लहरें उठ रही हैं —

या मुझको देख मत
' नीर भरी आंखो म एक लहर टूटती,
दर्द भरे सागर की लहर लहर टूटती।'[1]

ये निराशा, वेदना, घुटन, कसक, मानव मूल्या के विघटन और युग की विभाषिका के स्वर नये कवि के जीवन की विकट परिस्थितिया से आये हैं।

२. आस्था और विश्वास

दशक मे जहा एक ओर विषाद, निराशा, कुण्ठा, वेदना व्यक्त हुई है दूसरी ओर कतिपय नये कविया का जीवन के प्रति आस्था और विश्वास प्रेम से पुष्ट तथा पोषित है, बाधा और उलझना क क्षणा मे भी आशा का दीप जलाये सफलता के अभियान मे पूरा विश्वास लिये हुए है।

एक नयी कविता का कवयित्री को अभावजन्य वेदनाए अधिक पीडित कर रही हैं इसलिये वह स्वर्ण विहान की प्रतीक्षा म रत है —

आखिर तो
बडे गाभिन गधयुक्त गुच्छो सा
आयेगा भविष्य कभी।
करू गी प्रतीक्षा अभी।[3]

यही से दबा-दबा सा स्वर उभरता है। लगता है निराशाजन्य भावनाओ, युद्ध की विभीषिकाओ, वेदना जन्य अनुभूतिया से आक्रान्त कवि यथार्थ के चित्रण के साथ स्वग की ललक पाने को उत्कठित हैं —

---

२ जगदीश गुप्त 'नाव के पाव' पृ० ७८।

३ कीर्ति चौधरी, 'कविताए' पृ० ८६।

राग जाए दिशाओं में बिखर,
पथ हो जाय उज्ज्वल,
और उस पल
इस धरा पर स्वर्ग का गन्धर्व आए उतर
बस इतनी प्रतीक्षा मुझे भी है, तुम्हें भी है।[१]

नये कवियों का विश्वास है कि उन्होंने जो अपने भुजबल से मार्ग प्रशस्त किया है, उसमें उन्होंने न जाने कितने संघर्षों, कटुता, विषमता, रिक्तता, घुटन आदि का सामना किया है —

और क्योंकि हमने भुजबल से
अपना मार्ग प्रशस्त बनाया
दुखों से कर युद्ध
परिस्थितियों से लड़कर
और जूझ कर भारी से भारी अघड़ से
अपना ऊँचा सिर न झुका कर
केवल मिथ्या आदर्शों से नहीं
नहीं कोरी रंगीन कल्पनाओं से
किन्तु जिन्दगी की मिठास का रस लेने को
हमने कटुता से खुलकर संघर्ष किया है।[२]

नये कवियों के स्वरों में वर्तमान के प्रति असंतोष आगत के प्रति शंका होने से निराशा का जो प्रादुर्भाव हुआ है उसका निराकरण तथा पर्यवसान नयी कविता के प्रवर्तकों द्वारा आस्था और विश्वास भरे शब्दों में किया गया है —

कहा तो सहज, पीछे लौट देखेंगे नहीं—
पर नकारा के सहारे कब चला जीवन ?
स्मरण को पाथेय बना दो,

---

१ अजित कुमार, 'अकेले कण्ठ की पुकार', पृ० १२।
२ गिरजाकुमार माथुर, 'धूप के धान', पृ० २६।

कभी तो अनुभूति उमडेगी
प्लावन या सान्द्र भी घन बन।[1]

ऐसे आस्था और विश्वास के उभरे स्वरों को देखकर कहा जा सकता है कि निराशा और अवसाद की छाया सर्वत्र नहीं है, तथा कवि उससे मुक्त होकर स्वर्णिम भविष्य की कल्पना कर रहा है।

३. दुरूहता

नयी कविता अनिवार्य रूप से ही नहीं, सिद्धान्तिक रूप से भी दुरूह है। डॉ० नगेन्द्र ने इस दुरूहता के कुछ कारण बताये हैं —

(१) साधारणीकरण का त्याग।

(२) उपचेतन मन के अनुभव खण्डों के यथावत् चित्रण का आग्रह।

(३) भाव तत्व और काव्यानुभूति के बीच रागात्मक के बजाय बुद्धिगत सम्बन्ध।

(४) काव्य के उपकरणों एवं भाषा के एकान्त वैयक्तिक और अनर्गल प्रयोग।

(५) नूतनता का सर्वग्राही मोह।[2]

इनके अलावा और भी कारण हैं —

(१) फ्रायड से प्रभावित होकर नये कवियों ने फ्री एसासियेशन या मुक्त चेतना प्रवाह में आस्था रख कर काव्य सर्जन किया है।

(२) फ्रान्स के प्रतीकवादियों से प्रभावित होकर संकेतमयी भाषा और रागात्मक पौर्वापर्य का प्रयोग किया है यथा—

---

१ अज्ञेय, 'बावरा अहेरी', पृ० ५४।

२ डॉ नगेन्द्र, डॉ नगेन्द्र के श्रेष्ठ निबन्ध, पृ० १०८, सम्पादक भारतभूषण अग्रवाल।

देखो
रूप—
नामहीन
एक ज्योति
अस्मिताश्यता की
ज्वाला
अपराजिता, अनावृता।[1]

(३) शब्दों में नये अर्थ भरने, उन्हें नयी ताजगी देने तथा भाषा को नये मुहावरों से सज्जित करने की विविध प्रक्रियाएँ, वे इलियट के काव्य से लाए हैं।

४ भोगवाद

भोगवाद में भोग का सुखवाद निहित है। अतृप्त वासनाओं, यौन विकृतियों की तुष्टि ही सुखकार होती है। अतृप्ति दुखवाद की द्योतक है। सुखवाद में मांसल शारीरिक, ऐन्द्रिक सुख को प्राप्त किया जाता है —

फैल रही है परिधि स्तनों की
हसरतें अभी जवान हैं।
आओ दोस्तो और साथियो
आओ मेरे झण्डे के नीचे
उत्सव करें
नाचें, गाएँ,
रक्त की लय पर।[2]

भोगवाद में सुख होता है कवि को। तभी नया कवि कविता में चुम्बन और आलिंगन को नहीं चूकता। अतृप्त वासनाओं को व्यक्त कर ही वह सुख पाता है —

१ अज्ञेय, 'बावरा अहेरी', देहवल्ली पृ० ३७।

२ डा० ता० सिंह 'समाना नर सुनें', पृ० ५८–५९।

जिस दिन ये तुमने फूल बिखेरे माथे पर
अपने तुलसीदल पावन होठो से,
मै महज तुम्हारे गर्भ वक्ष मे शीश छुपा,
चिड़ियो के सहमे बच्चे-सा
हो गया मूक।[1]

५. अदेस चित्रण

डॉ० नगेन्द्र के अनुसार "छायावा" की अतीन्द्रियता और वायवी सौन्दर्य चेतना के विरुद्ध एक वस्तुगत मूर्त और ऐन्द्रिय चेतना का विकास हुआ और सौन्दर्य की परिधि मे केवल मसृण और मधुर के अतिरिक्त परुष, अनगढ और अदेस का समावेश किया गया। वास्तव में नये कवि ने अतिशय कामलता और मार्दव से ऊब कर अनगढ और अदेस को कुछ अधिक ही आग्रह के साथ ग्रहण किया।"[2]

अज्ञेय का मूत्र-सिंचित मृतिका के वृत्त मे तीन टागो पर खड़ा धैर्यहीन गन्हा, (पृ० २४०) अदेस का अच्छा उदाहरण है। डॉ० रामविलास और केदार की कविताए अदेम से युक्त हैं। नागार्जुन की यह कविता भी देखें —

सरग था ऊपर
नीचे पाताल था
अपच के मारे बुरा हाल था
दिल दिमाग भुस का, खद्दर का खाल था।[3]

डॉ० नगेन्द्र के अनुसार "आज के जीवन मे अनगढ और अदेस हमारे अधिक निकट हैं। इसलिये उसकी चेतना हमारे लिये अधिक वास्तविक और स्वाभाविक है।"[4]

---

१ धर्मवीर भारती, 'दूसरा सप्तक', पृ० १६८।
२ डॉ० नगेन्द्र, 'डा० नगेन्द्र के श्रेष्ठ निबन्ध' पृ० १०४।
३ नागार्जुन की हस मे प्रकाशित कविता।
४ डॉ० नगेन्द्र, 'डॉ० नगेन्द्र के श्रेष्ठ निबन्ध', पृ० १०४।

एक नये कवि ने अश्लेस प्रयोग के बारे मे कहा है " विरूपता अश्लीलता नहीं है। असु दर भाद्दापन नहीं है, परिवेश खोखला नहीं है — इन सबका सौन्दर्य पक्ष में महत्व है। ये सब सौन्दय को महत्वपूर्ण बनाते हैं।" [1]

यह सत्य है कि सौन्दर्य बोध का एक पक्ष कोमलता और मार्दव है तं दूसरी ओर अनगढ़ और अदेस भी है। लेकिन सौन्दर्य को कुरूप बनाना तं श्रेयस्कर नहीं है। इससे सौन्दर्य बोध विकृत होता है।

आज का मनुष्य अदेस के कारण गर्भ से धक्का देकर निकाला हुआ ऋषि पुत्र है।[2] तो दूसरी ओर अदेस का दूसरा विकृत रूप सामने आता है —

> त्वचा तनती गई। गर्भस्थ शिशु
> बेलून की तरह फलता चला गया।[3]

कदाचित् आज के जीवन की यही माग है, कवि उसी की पूर्ति कर रहा है।

६. वैयक्तिकता

वैयक्तिकता से अनास्था निराशा नियति, पीडा, घुटन को स्थान मिला है। प्रयोगवाद मे वैयक्तिकता न विकल्प या स्वेच्छाचार का रूप धारण कर लिया। वैयक्तिक कुण्ठा ■ याहत स्वातन्त्र्य उन्मुक्त उच्छृङ्खलता और बौद्धिकता के प्रकोप ने मानवीय सवेदनाओं तथा अनुभूतियों को अन्तर्मुखी बना दिया है। आज का प्रयोगवादी भाषा के वैयक्तिक प्रयोग अभिनव उपमान, छन्दों के नये प्रयोगों मे इतना उलझ गया है कि रचनाएं भी घोर वैयक्तिक और समाज निरपेक्ष हो गई हैं। मुमुक्षु वैयक्तिक अभिव्यक्ति और सामाजिक निरपेक्षता ने कविता को विकल्पहीन कुहेलिका से दिग्भ्रमित कर दिया है —

> मेरे मन की अधियारी कोठरी मे
> अतृप्त आकाक्षा की वेश्या बुरी तरह खास रही है

---

१ लक्ष्मीकान्त वर्मा 'नयी कविता के प्रतिमान', पृष्ठ ७६।
२ राजेन्द्रकिशोर, नयी कविता पृष्ठ ८६।
३ राजेन्द्रकिशोर निकष, अङ्क ३-४, पृष्ठ १७३।

मैं गद्य की एक रस भन -- भन से घबराता हू
जरा गीत गाकर देखू --
पास घर आये
तो दिन भर का थका जिया मचल मचल जाये ।[1]

छायावादी गीति काव्य भी वयक्तिकता को लिये हुए था लेकिन सगीत के आवेष्ठ में वह सामाजिक सम्बन्ध के रूप मे परिणित हो गया था । वे अनुभूतिया सार्वकालिक थी लेकिन प्रयोगवादी कविताए प्राय सगीतशू य निरी भदेसता को लिये हुए हैं । सामाजिक तत्व का उनमें अभाव है । नया कवि बैठा बैठा मक्खिया मारा करता है क्योकि उसके पास कोई काम नही है । निरुद्देश्य बैठे बैठे रेल के किनारे, टीले पर बैठ कर घण्टो तितलिया उडाया करता है । ट्रेन गुजर जाती है, वह बैठा इजिन की सीटी दुहराता रहता है ।[2]

इसी वैयक्तिकता के कारण प्रयोगवादी काव्य अत्यन्त दुरूह हो गया है। अन्तर्जगत की पहेलियो में उलझा कवि स्वय ही वर्ण्य वस्तु को समझ नहीं पा रहा है।

७. नूतनता का सर्वग्राही मोह

दशक की प्रयोगवादी रचनाओ मे जो गहन असम्बद्धता असतुलन वचित्र्य मिलता है, उसके मूल मे नूतनता का सर्वग्राही मोह ही है । इस प्रवृत्ति ने वैयक्तिक पर्याय दुरूहता के नकारात्मक अभिव्यक्तियो को प्रश्रय दिया है । प्रत्येक पक्ति में वह प्रयोगगत तथा व्यजनागत नवीन चमत्कार का अभ्युदय करना चाहता है । फलस्वरूप कल्पित, बेमेल, इयत्ताहीन कथ्य का ही सर्जन कर पाता है । नया कवि चाहता है कि वह जीवन के किसी भी पहलू, किसी पक्ष का दिग्दर्शन, किसी भी तथ्य का उद्घाटन करे । मनोगत द्वन्द्वो और भावो को समझने के लिये उसके पास समय नहीं है ।

१ अनन्तकुमार 'पाषाण', नयी कविता, अङ्क २ बम्बई का वनक, पृष्ठ ६३ ।
२ शम्भूनाथ सिंह, कल्पना ६२ ।

नूतनता के नाम पर इन कवियों ने मनमानी भी की है —

खोखियाते हैं, किकियाते हैं, घुनाते हैं
चुल्लू में उल्लू हो जाते हैं
मिनमिनाते हैं कुड़कुड़ाते हैं
सो जाते हैं बैठे रहते हैं बुत्ता दे जाते हैं

❀ ❀

सभी लुजलुजे हैं, थुलथुल हैं, लिब लिब हैं,
पिल पिल हैं
सबमें पोल है, सबमें झोल है, सभी लुजलुजे हैं ।[1]

यदि चित्रोपम व्यंग्यात्मकता का समावेश न होता तो रोचकता समाप्त हो जाती । इस नवीनता की प्रवृत्ति ने विचित्रता और अनोखेपन का अजायबघर सा खोल दिया है —

गोबर बगला मोटर हाँके
दुनिया को फाके के फाके ।
(जा मुह धो कर आवे बावे ।)
जीवन की व्यस्तस्त – पहेली
पढ़े फारसी भोजवा तेली
बेच रही गुरु को गुड़ चेली ।[2]

यद्यपि कविता में व्यंग्य है फिर भी अनोखी अभिव्यक्ति है । वैचित्र्य का प्रादुर्भाव नूतनता के सर्वग्राही मोह से उत्पन्न हुआ है । कभी-कभी तो सन्देह होता है कि तथाकथित नये कवि अपनी रचनाओं को स्वयं समझ पाते हैं या नहीं ?

---

१ रघुवीर सहाय, 'सीढ़ियों की धूप में' सभी लुज लुजे हैं ।

२ प्रभाकर माचवे, 'न्यू डिटरमिनिज्म, कविताएं १९५८, [redacted] ३० ।

अलसाये।
आये।
गये।
आईं—
गईं—
वे।
भी॥
मैं—
ने—
ही—
देखा पेड़?—
याद का।[1]

इस कवि ने नूतनता के आग्रह के कारण कविता को पहेली बना दिया है। कवि की दुरूहता, अस्पष्टता, क्लिष्टता की अति कहा जा सकता है। कौन अलसाये आये? कहां गये? कौन आई? कौन गई? इसका पता तो इस कवि की दिमागी पिटारी में ही भरा है। इस नूतनता के सर्वग्राही मोह के कारण आज का कवि परिचित को छोड़ कर अपरिचित की ओर दौड़ रहा है।

८ यथार्थ चित्रण

नयी कविता अतियथार्थवाद से प्रभावित है। यथार्थ ही आगे चल कर नग्नवाद के रूप में परिणित हो गया है। नया कवि दैनिक वास्तविकताओं का ही चित्रण करता है। प्लेटफार्म, चाय, होलडाल, वेटिंगरूम, होटल, लिपस्टिक, मडगाड, फेंचलेदर, चूड़ी का टुकड़ा बाटा की चप्पल, स्टोव, कार आदि को ही वर्ण्य वस्तु बना रहा है।

दैनिक वास्तविकता के जाल में कवि कितना उलझ रहा है कि सूप की फटर फटर में, अम्मा-पापा की पुकार में एक ही आवाज ध्वनित हो रही है।

१ राजेन्द्रकिशोर (प्रोमप्रभाकर के 'प्रयोगवाद की नव परीक्षा' नामक लेख से उद्धृत), वीणा, अप्रल १९५८।

"कविता से विमुख हो और थैला उठा कर तरकारी लाओ। ऑफिस का समय हो गया है, इसलिये स्नान कर, भोजन की तैयारी करो।" आज का कवि इस दैनिक कार्यकलाप को बन्धन और नीरस मानता है। वह इस दमन चक्र, व्यवधान, शुष्क जीवन, से मुक्त होना चाहता है। मन की भावना की अभिव्यक्ति शब्दों से मुखरित हो जाती है। करे भी क्या? वह विवश है। यन्त्रवत् जीवन का यह अभिन्न अङ्ग है विषाद की कालिमा उसे घेरे रहती है —

मुझसे अच्छी तुम हो
सूप उठा तुमने सब चावल फटक डाले,
मुझसे अच्छा यह है—
डब्बा फाड जिसने सब बिस्कुट गटक डाले,
सूप की फटर फटर
अम्मा – पापा की रट
मुझ से कहती है—
जीवन ले, कविता से हट,
थैला उठाओ, जाओ—
तरकारी लाओ
आफिस का समय हो गया है
नहाओ, खाओ।[1]

क्लर्क का जीवन चेतना शून्य है। जीवित रहते हुए भी वह मृत है। पत्नी भी उस जीवन का अभिन्न अङ्ग है। उसे रसोई, बच्चों की देखभाल का कार्य करना पड़ता है। आये साल पेट में नया जीव पनता रहता है। क्लर्क के पास वस्त्रों का अभाव है। उसका कोट फटा है जिसे उसकी पत्नी ने सिया है। यह है मध्यवर्गीय परिवार की निम्न श्रेणी का चित्रण जिसमें अभावग्रस्त क्लर्क का जीवन पल रहा है। वह कहने भर को जिन्दा है —

दिन मर गया, मैं भी मर गया हूँ।
हींग और हल्दी से वासित मेरी बीवी मगर अभी जिन्दा है

१ सर्वेश्वरदयाल सक्सेना, 'काठ की घंटियाँ', पृष्ठ १२८।

और उसके पेट मे कुछ और नयी जिन्दगी है,
मेरा कोट फटा है उसने ही सिया है।[1]

आज के मानव को मस्ती क्या छूटती है कि रसातल का दरवाजा खोल जाती है। आये दिन फाकामस्ती करनी पडती है। तांगे वाला की विद्रूप गालियों की बौछारो में, प्याज की पकौडी और मदिरा की प्याली में वह जीवन को पी रहा है। हो सकता है जीवन ही उसे पी रहा हो –

सामने होली खडी है
एक बोतल एक प्याली
प्याज की पकौडी
इक्के तांगे वालो की गाली
मस्ती
फाकामस्ती

* *

कमीज के बटन
बटन होल के बाहर जो
दांत निकाले से पडे हैं
उन्हे समेट लो
आस्तीन के कालर
कोट की सीमा से बाहर – मत जाने दो।[2]

इस तरह यथार्थ चित्रण में सामाजिक व्यंग विद्रूपताओं को प्रमुख स्थान प्राप्त हुआ है, यद्यपि चित्रणो मे प्रेषणीयता का किंचित् अभाव है।

यथार्थ में सामाजिक व्यंग्यो की भी प्रधानता रही है। गिरिजाकुमार माथुर, प्रभाकर माचवे अज्ञेय, सर्वेश्वरदयाल सक्सेना भारतभूषण अग्रवाल, मदन वात्स्यान के व्यंग्य सशक्त हैं। एक उदाहरण लीजिए—

---

१ अनन्तकुमार 'पाषाण' नयी कविता सं० जगदीश गुप्त, पृष्ठ ६३।
२ श्रीकान्त वर्मा, नयी कविता, अङ्क १, स० डॉ० जगदीश गुप्त।

अरे ओ अफसर
ब्रह्मा का लिखा मिट सकता है
कल का अछूत आज मन्त्री हो सकता है।
पर तुम्हारी लाइन का भार लिये मैं
कहां जाऊँ, कहां भागूँ ?
काश्मीर से कन्याकुमारी तक के
किस दफ्तर मे जा छिपूं ?
तुम अफसर हो
"राखि को सके राम कर द्रोही"

* *

तुम सरकारी अफसर हो,
तुम्हारा काटा पानी नही मांगता
कानून की दरार में से तुमने गोली चलाई,
और मुझे चुपचाप सुला दिया
अपने फाइलों के जंगल मे ले जाकर
तुमने कत्ल कर दिया'।[१]

भारतभूषण अग्रवाल, प्रभाकर माचवे ने तुक्नक भाव से व्यग्यो का पिटारा खोल दिया है। प्रभाकर माचवे की 'पालना' नामक कविता की कुछ पंक्तियां देखिए—

पहले उसने कुछ पाले पिल्ले
बडे हुए, भाग गये।
पाली कुछ बिल्लियां, वे
दोस्त कुछ मांग गये।
पाली लाल मछलियां वे मर गयी।
पाली एक मैना, जो उड गई।
एक तोते की जोडी जो पाली,
उठा ले गई दोस्त पडोसन बिडाली।

---

१ मदन वात्स्यायन, 'तीसरा सप्तक' पृष्ठ १६२–१६३।

पालने की यह आदत कम न हुई
सुना है कि आजकल पाले हैं कुछ आदमी
पालतू ।
फालतू ॥
होगा क्या उनका ? पड़ोसी के बड़े बम
मार देंगे उनका – फिर भी नहीं होंगे कम ।[1]

इस प्रकार नयी कविता मे यथार्थ के साथ व्यंग्यपूर्ण शैली को पूर्ण रूप से अपनाया गया है । अज्ञेय के 'बावरा अहेरी' में संकलित 'साँप' शीर्षक कविता में सामाजिक व्यंग्य बहुत ही गहरा उतरा है । कुल मिलाकर पिछला दशक विभिन्न प्रवृत्तियों की दृष्टि से समृद्ध रहा है । नयी कविता के कर्णधार दिग्भ्रमित रहे हैं । छायावादी युग से दशक के मध्यभाग तक ऐसा कोई भी प्रतिभाशाली कवि नहीं हुआ जो विश्व साहित्य मे स्थान बना सके ।

---

१ प्रभाकर माचवे, 'नयी कविता', अङ्क २, पालना, पृष्ठ ७८ । तारसप्तक

४ | अभिव्यक्ति के उपादान

काव्य मे अभिव्यक्ति के उपादान समय समय पर परिवर्तित होते रहते हैं। द्विवेदी युग की इतिवृत्तात्मक कविता मे भाषा, छद प्रतीक आदि पूर्ववर्ती काव्य से प्रभावित थे। छायावाद मे सब कुछ परिवर्तित हो गया। अभिनव प्रतीक, नये बिम्ब, भाषा की कोमल कान्त पदावली प्रयुक्त होने लगी। पिछले दशक के अभिव्यक्ति के उपादानो को चार भागो म विभक्त किया जा सकता है —

१ बिम्ब विधान
२ प्रतीक विधान
३ छद विधान
४ भाषा और शब्द विधान

१ बिम्ब विधान

बिम्ब विधान का तात्पर्य सौदर्यानुभ भावित्रा प्रवृत्ति से है। इसम कल्पना प्रतिमाओ, स्मृति जन्य पूर्व अनुभूतियो, प्रस्तुत परिवेश के सवेदना और कभी कभी अस्तित्व न रखने वाली घटनाओ की प्रमुखता होती है।

बिम्ब दो प्रकार के होते हैं —

१ स्मृति जन्य, २ स्वरचित।

स्मृति जन्य म पूर्वगामी अनुभूति का पुनरुत्पादन मात्र होता है। स्वरचित म कवि ज्ञानेन्द्रियो द्वारा दृष्टि, श्रवण गध, रस, स्पर्श आदि के सजीव, रोचक, सक्षम तथा नूतन बिम्ब प्रस्तुत करता है।

बिम्बो का वर्गीकरण विषयानुसार भी होता है —

१ प्रकृति बिम्ब
२ पुरातन बिम्ब (पौराणिक बिम्ब)
३ कलात्मक बिम्ब
४ तकनीकी बिम्ब
५ कार्यकलाप सम्बन्धी बिम्ब

१ प्रकृति बिम्ब

कवि ने प्रेरणा, उद्वेलन मानव का मालोडन विलोडन प्रकृति से ही प्राप्त किया है। प्रकृति वर्णन भी काव्य का चिरन्तन सत्य रहा है। नया कवि भी प्रकृति से विमुख नही हुआ। हवा सुन्दर वल्लरी का वेश धारण कर आई है। वह प्रिया है। कवि नीम के वृक्ष के रूप मे उसका प्रियतम है। दूसरी बार जब जब हवा आयी तब हंसिनी का वेश था। वह आकर प्रियतम रूपी झील के कूल पर तैरती रही —

हवा आयी
खूबसूरत वल्लरी के वेश मे
और मेरी देह से लिपटी रही,
वह प्रिया है, पेड मैं हूँ नीम का
प्रमुदित हुआ।

हवा आयी
यौवनातुर हसनी के वेश म
और मुझमें तैरती चलती रही,
वह प्रिया है, तीर मैं हूँ झील का
पुलकित हुआ।[१]

---

१ केदारनाथ अग्रवाल, कृति, 'हवा', पृ० ३३ (जनवरी १९६०)।

भोर गंवार नारी है जिसके नदी पर सिंदूर बह कर फैल गया है। पानी बार-बार पार करने पर उसकी सखियाँ खिलखिला उठीं। प्रियतम (सूर्य) ने पीछे से आकर उसके माथे पर चाँदी की बिन्दी चिपका दी। लज्जा से आरक्त मुख हथेलियों में छिपा कर भोर भाग गई —

नदिया के जल में,
गिरि तरु के शिखरों से ढर ढर कर
सब सेंदुर फैल गया
प्रथम बार–
इस गंवारि नारि के शृङ्गार पर
कोटर – कोटर में छिप भागती
सखियां खिल खिला उठीं,
पीछे से आ प्रिय ने
चुपके से हाथ बढ़ा
माथे पर चाँदी की बिंदियाँ चिपका दी
लज्जा से लाल मुख
हथेलियों में छिपा
भोर झट भाग
ओट हो गई
माथे से छूट
गिरी बेंदी
बस पड़ी रही।[1]

सर्वेश्वरदयाल सक्सेना की बिम्ब रचना शक्ति उर्वर है। भोर और गंवार नारी के माध्यम से अनुभावों, संचारी आदि का चित्रण सफल हुआ है। केदारनाथ अग्रवाल की 'हवा' में वल्लरी से परिवेष्टित प्रियतम नीम वृक्ष का जो प्रमोद की अनुभूति होती है, वैसे ही हवा के आगमन पर कवि मानस की अनुभूति हुई।

---

१. सर्वेश्वर दयाल सक्सेना भोर, नयी कविता, अंक २, पृ० ४५।

बिम्ब का निर्माण, कवि की सर्जनाशक्ति, कल्पना अनुभूति, अभिव्यक्ति की क्षमता तथा व्यक्तित्व पर निर्भर होता है। परम्परा की रूढियों को तोडने में नया कवि प्रयत्नशी है। चाद, मुख का उपमान है। लेकिन नया कवि उसे कटी हुई पतग के माध्यम से बिम्बित करता है —

चाद कटे पतग-सा
दूर उस झुरमुट के
पीछे गिरता जाता–
किलकारी भर भर ग
दौड-दौड कर अम्बर मे
किरण डोर लूट रहे।[1]

प्रात का चाद सूर्य के भय से कटकर झुरमुट के पास गिर जाता है। उसे कटा जान कर खग रूपी शिशु किलकारी भर कर किरण रूपी डोर को लूटते रहते हैं। दोनो म भावो का तादात्म्य है, एक रूपता है। लेकिन बिम्ब विधान मे चमत्कार और सौदर्य का अभाव है।

अनेक स्थलो पर प्रकृति विधानो में रसात्मकता परिलक्षित होती है। इसे रसमत्ता तो नही, मानसिक परिरमण कहा जा सकता है —

पूर्णमासी रात भर
पीती रही सुधा
अक के शशि मे लिपट कर
धोती रही श्यामता वदन
सुधि बुधि बिसार।[2]

'शशि' ने पूर्णमासी रात को सुधा पिलाया। अचेतन अवस्था मे शशि की गोदी म सिमट कर स्पर्श सुख स श्यामल मुख को उज्ज्वल बनाती रही।

---

१ कुंवर नारायणसिंह 'तीसरा सप्तक', जाडों की सुबह, पृ० २४६।
२ शकुंत माथुर, 'दूसरा सप्तक', पृ० ४४।

इस प्रकार का नया कवि भोर, निर्झर, जंगल, ज्योत्स्ना, रवि, हरसिंगार, भ्रमर गुंज, प्रकृति का अनोखा रूप, कुंज विभा, धूप, पावस लहर सावन, पसीना धूल आदि पर अपनी निगाह डालने लगा है। नये-नये बिम्बों की दुहाई दी जाती है। लेकिन ये अनुभूतियाँ स्वयं जिज्ञासु की संतुष्टि नहीं होती हैं।

धान के खेतों की तरह मन की राह गीली हो गई है उसमें लौट कर आये प्रियतम के पैरों की छाप उभर गई है। प्राणों का दर्द नैनों में उभर आया है जिससे पानी अन्तर में निथर गया है —

धानों के खेतों सी गीली
मन में जो यह राह गई है,
उस पर से लौट आये प्रीतम के
पैरों की छाप नई है।
प्राणों का दर्द अखियन में उठ आया,
पानी की छाया में अन्तर जो निथराया।[1]

प्रकृति चित्रण में ध्वनि विधान का प्रमुख स्थान होता है। नाद सौन्दर्य की व्यंजना से लय और गति की छटा प्रदर्शित होता है —

चल रहे हासिए
खनकना चूड़ियां पाजेब
खेतों में कृषक के नव वधु की
* *
हहहडाते ताड़ के पत्ते पवन की ओट से
बीन की झंकार, नीरा पान कर
मजदूर ढोलक झाझ पर है
गा रहे बेताल मारू – राग।[2]

---

१ ठाकुरप्रसादसिंह, आजकल (कविताङ्क), मई, १९५३, पृ० २८।

२ भारतीप्रसादसिंह कविताएं १९५७, पृ० २१ २२।

हासिमा के चलन मे और पाजेब तथा चूडियो के खनकने मे लय साम्य है, लेकिन नाद-सौन्दर्य भिन्न भिन्न है ।

कहीं-कहीं बिम्ब विधान सवेदना की सम्प्रेषणीयता में वृद्धि करने में पूर्ण सफल हुए है । इनमे सूक्ष्म से विराट की ओर, मूर्त से अमूर्त की ओर जाने की प्रवृत्ति दिखाई देती है —

बू द टपकी एक नभ से
किसी ने झुक कर झरोखे से
कि जैसे हस दिया हो
हस रही सी आख ने जैसे
किसी को कस दिया हो ।[1]

नभ से बू द का टपकना झरोखे से झुक कर हसना बराबर है । दृग में आसू आते है । जिस तरह हसी सुनकर झरोखे की ओर दृष्टि उठ जाती है उसी प्रकार बू द के टपकने से आकाश की ओर दृष्टि उठ जाती है । यहा अनुभूति की गहनता है, साथ ही सूक्ष्म दृष्टि का पकडना भी । किसी का मृदुहास बन्धन में आबद्ध कर लेता है उसी प्रकार आकाश अपनी गरिमा से मानव को उस असीम के बन्धन मे बाध देता है ।

लेकिन कहीं कहीं इनमें ऐसी विकृति आई है कि कवि का कथ्य असगत ही नहीं होता अपितु बिम्ब विधान खण्डित हो जाता है —

मस्तक इतना खाली -खाली
लगता जैसे
हो कोई सडा नारियल ।[2]

सडा हुआ नारियल दुर्गन्ध का बोध करता है । इससे मस्तिष्क की शून्यता से कोई सम्बन्ध नहीं होता । ऐसी ही कविताओं को देख कर दिनकर ने कहा

१ भवानीप्रसाद मिश्र, 'दूसरा सप्तक', पृ० १६ ।
२ धर्मवीर भारती, 'दूसरा सप्तक' पृ० १८७ ।

है– बाताहन तो बडे जोर पर है और नमता भी ऐसा ही है कि लडके अपने पुरखा के कलात्मक असबाबो को तोड फाड कर ही दम लेंगे।[1]

यह विकृति सर्वत्र नहीं है। कवि के मानस में छिपे कोमल भाव सूक्ष्म सौन्दर्य की गहनता भी बिम्बो के माध्यम से प्रकट हुई है —

दूर तक फैली हुई मासूम धरती की
सुहागिन गोद मे सोये हुए नवजात शिशु के नेत्र सी
इस शात नीली झील के तट पर, चल रहा हू मैं।[2]

२ पौराणिक बिम्ब

पौराणिक बिम्बो में पुरातन जनश्रुतियो, कथानको को आधार बना कर बिम्ब विधान प्रस्तुत किया जाता है। इन बिम्बो मे राधा – कृष्ण के बिम्ब मुख्यतया प्रस्तुत किये गये हैं। पौराणिक बिम्बो में भी विकृति का समावेश हुआ है। कवि एक ओर चुम्बन बनाता है। दूसरी ओर भागवत के पृष्ठ पर रखी हुई बासुरी से उसका बिम्बीकरण करता है। रीतिकाल के परिप्रेक्ष्य में प्रस्तुत बिम्बो से इन बिम्बो की तुलना नहीं हो सकती क्योंकि सौन्दर्य बोध, भाव बोध तथा मूल्यो मे महान अंतर आ गया है —

रख दिये तुमने नजर मे बादलो को साध कर,
आज माथे पर सरल सगीत से निर्मित अधर,
आरती के दीपको की झिलमिलाती छाह मे
बासुरी रखी हुई ज्यो भागवत के पृष्ठ पर।[3]

३ कलात्मक बिम्ब

कलात्मक बिम्बो मे किसी मूर्त या अमूर्त वस्तु के आधार पर भाव व्यञ्जना की जाती है अर्थ गर्भत्व भी उसमे निहित होता है। प्यार निस्सीम है। गगन

१ रामधारीसिंह दिनकर (काव्यधारा मे सग्रहित निबन्ध नई पीढ़ी से उद्धृत, पृ० ५५)।

२ धर्मवीर भारती, 'ठण्डा लोहा', पृ० ७८।

३ धर्मवीर भारती, 'दूसरा सप्तक' पृ० १९१।

सा अनन्त है । ताजमहल के बिम्ब द्वारा इसको व्यक्त करते हुए कवि ने प्रेम की परिधि को निस्सीम बना दिया है —

सामने रखा है ताजमहल
प्लास्टिक का खूबसूरत।
मीनारें जिसकी लघुता में अब भी
ताकती हैं आसमान
निर्देश करती हैं,
प्यार बन्दी नहीं है परिधि का
निस्सीम उसे रहने दो
गगन सा, अनन्त सा।[1]

४. तकनीकी बिम्ब

तकनीकी बिम्बों में तकनीकी शब्दावली को प्रयुक्त किया जाता है उसी के माध्यम से भावों की व्यञ्जना की जाती है । यह साधारणीकरण विरोधी प्रवृत्ति का ही स्थूल रूप है । सम्भवतया इस प्रकार के बिम्बों में अज्ञेय का यह कथन प्रेरक रहा है कि 'साधारणीकरण का पुरानी प्रणालियां रूढ़ हो गई हैं। अतएव वह भाषा को क्रमशः संकुचित होती हुई केंचुल फाड़ कर उसमें नया, अधिक व्यापक और सारगर्भित अर्थ भरना चाहता है।[2] इसलिये वैज्ञानिक तथा तकनीकी बिम्बों के लिये वसी शब्दावली प्रयुक्त करता है । इसमें शब्दों का विचित्र तथा अनर्गल प्रयोग हो जाता है। अप्रस्तुत विधान भी असाधारण रूप धारण कर लेता है।

इन बिम्बों में मूर्त से अमूर्त का ही विधान होता है । दुरूहता, भावों की संकुलता, विचित्र प्रयोग इन बिम्बों की विशेषताएं हैं । रेखागणित के चिह्नों द्वारा भी मनोभावों का आत्मनिरीक्षण करने का प्रयास किया गया है —

---

१ अनुरंजनप्रसादसिंह, कविता (अगस्त १९५७), पृ० २८।

२ अज्ञेय, 'तार सप्तक', भूमिका।

मैं नहीं हूं
यह त्रिभुज यह चतुर्भुज, यह वृत्त—
त्रिविध अथवा विविध
रेखा पराजित में एक भी आकार
सुंदर, स्पष्ट—
किन्तु सीमा – रुद्ध
स्वयमाबद्ध।[1]

५. कार्यकलाप सम्बन्धी बिम्ब

दैनिक कार्यकलाप सम्बन्धी बिम्ब इसके अन्तर्गत आते हैं। पौराणिक प्रकृति, तकनीकी कलात्मक बिम्बों को छोड़कर अन्य सभी प्रकार के बिम्बों का समाहार इसके अन्तर्गत होता है। इनमें दो अर्थ वाले बिम्ब अधिक पुष्ट हैं —

✓ पति सेवा रत साँझ
उचकता देख पराया चाँद
लजा कर ओट हो गई।[2]

पतिव्रता नारी पर पुरुष को झांकते देखकर ओट में हो जाती है। साँझ भी पर पुरुष चाँद को देखकर ओट में हो गई।

धूप जरा खुली कि चारों तरफ हलचल मच गई। कोठे पर चढ़ कर मजूर मृदंगी बजाने लगे। ढोलक के स्वर के साथ मुन्नी ने आवाज लगाई 'मां दूध पिला। बहुएं कपड़ा का सुखाती हुई ऊंचे आसमान की ओर झांक लेती थी। नीचे बुढ़िया घर के दुखड़ा को गा रही थी। बनारिया काला चूड़ियों के टुकड़े बीन रही थी। पर पता नहीं पड़ोस के किशोर की आँखें क्यों डबडबाई ?

धूप खुली जरा – सी
हल चल मची

---

१ प्रयागनारायण त्रिपाठी कविताएं १९५८, पृ० ३४।

२ अज्ञेय, 'अरी ओ करुणा प्रभामय', पृ० ६६।

चोठे मजूर चढे
मु गरी बजी ।
दूर कहीं ढोलक के स्वर से
स्वर मिला–
रोई मुन्नी ओ मा ।
दूध – आ पिला ।
* *
देखकर जाने क्यों–
पडोस के किशोर की
आग डबडबाई ।
ठडी नम हुआ कौन सी सुधिया लाई ?[१]

कहीं-कहीं वर्ण्य विषयों से सम्बंधित बिम्बों की लडी सी लगा दी जाती है । अनेक उपमानों को इन बिम्ब मालाओं के लिये प्रयुक्त किया जाता है ।

लेकिन इन बिम्बों के आधार पर बीभत्स, कुरूप चित्र भी खींचे गये हैं अनेक बिम्ब खण्डित हैं । काव्यगत सौन्दर्य की अभिव्यक्ति में खटकने वाले भी हैं । असगति सर्वत्र मिलती है । फिर भी उनमें मौलिकता है नवीनता है ।

२. प्रतीक विधान

काव्य में प्रतीकों का प्रयोग काव्य रचना की अन्त प्रेरणा से सम्बंधित होता है । इस विधान में कवि की वैयक्तिक अनुभूतियों और सामाजिकता के जटिल सन्दर्भ परस्पर अन्त प्रक्रिया करते हैं ।

प्रतीक भावों की गहनतम अभिव्यक्ति के साधन हैं, जिनके माध्यम से अमूर्त, अदृश्य, अश्रव्य, अप्रस्तुत विषय का प्रतिविधान मूर्त, दृश्य, श्रव्य प्रस्तुत द्वारा किया जाता है । प्रतीक, मानव परिवेष्टन में दृष्टिगत वस्तु का मानव प्रतिमा के साथ तादात्म्य कर देता है । कल्पना के पुट द्वारा उसका आदर्शमय

१ अजितकुमार धर्मयुग (१९६०), 'घर मे बरसात' ।

स्वरूप प्रस्तुत कर कला का सृजन करता है । ऐसे अप्रत्यक्ष और अतीन्द्रिय विषयों की सर्जना लक्षणा शक्ति के आधार पर साकार हो उठती हैं । वर्ण्य वस्तु गौण, ग्राह्य अथ प्रमुख हो जाता है । इस प्रकार के विश्लेषण दो प्रकार के होते हैं ।

१ आत्मा एव परमात्मा सम्बन्धी,
२ अचेतन या अवचेतन सम्बन्धी ।

इन विश्लेषणों मे प्रेषणीयता, बोधगम्यता लाने के लिये अलकारिक भाषा को प्रयुक्त किया जाता है ।

प्रतीकीकरण मानव का सहज स्वभाव है । इसके द्वारा किसी मध्यस्थ प्रकार के माध्यम को प्रतिनिधि बनाया जा सकता है दूसरे इससे शक्ति भी घनीभूत हो जाती है । प्रतीको को दो भागो मे वर्गीकृत किया जाता है [१] —

१ सन्दर्भीय

इसमे वाणी और लिपि म यक्त शब्द, राष्ट्रीय पताकाए, तारा के परिवहन म प्रयुक्त होन वाली सहिता तथा रसायनिक तत्वो के चिह्न आते हैं ।

२ सन्घनित

धार्मिक कृत्यो मे स्वप्न तथा अय मनोवैज्ञानिक विवशताओ जन्य प्रक्रियाओ मे मिलते हैं ।

कुछ ऐस प्रतीक होते हैं जो सावभौम माने गये हैं जैसे लाल रग अनुराग का श्वेत रग पवित्रता का, पीत रग शान्ति का सिह वीरता का, शृगाल काय रता का लामडी चतुरता की । कबीलो जातियो, समाजो और राष्ट्रो के अपने अपने प्रतीक होते हैं ।

भारतीय काव्य म प्रतीक विधान ऋग्वेद से ही प्रारम्भ हो जाता है । उपनिषत्काल से रीतिकाल तक प्रतीकों की शृङ्खला चली आई है । आधुनिक काल में छायावाद रहस्यवाद क पश्चात् प्रतीको का बाहुल्य चला आ रहा है ।

---

१ हिन्दी साहित्य कोश सम्पादक धीरेन्द्र वर्मा आदि, पृ० ४७२ ।

सामान्यतया प्रतीक एकमुखी होते हैं। चित्रात्मकता इनमें हो भी सकती है नहीं भी। दूसरी ओर बिम्ब इसके विपरीत होते हैं उनमे क्षितिज व्यापक और चित्रमय होता है।

वर्ण्यवस्तु के आधार पर दशक के प्रतीकों का विभाजन हो सकता है —

१ प्रकृति के प्रतीक
२ पौराणिक प्रतीक
३ तकनीकी प्रतीक
४ यौन प्रतीक
५ जीवनचर्या प्रतीक

१ प्रकृति के प्रतीक

प्रकृति कवि का आलम्बन भी है, उद्दीपन भी। युगान्तर से प्रकृति ने कवि के मनोभावों को प्रभावित कर विभिन्न स्रोतों में बहाया। 'अज्ञेय' ने ही प्रतीकों को नयी कविता मे प्रयुक्त किया। इन प्रतीकों पर फ्रेंच के प्रतीकवादियों का प्रभाव था। 'अज्ञेय का 'बावरा अहेरी' सूर्य का प्रतीक है। प्रतीकों के विधान में अज्ञेय सिद्धहस्त हैं —

भोर का बावरा अहेरी
पहले बिछाता है आलोक की
लाल लाल कनिया
पर जब खीचता है जाल को
बाध लेता है सभी को साथ
छोटी – छोटी चिड़िया
मझोले परेवे
बड़े – बड़े पखी
डैनो – वाले डील वाले
डौल के बेडौल
उड़ते जहाज।[१]

---

१ अज्ञेय, बावरा अहेरी', बावरा अहेरी, पृ० १६।

नये कवि ने प्रकृति मे वीभत्स के भी दर्शन किये हैं। उस पृथ्वी के गंजी सतह पर चादनी रात चितकबरा मालूम पड़ता है। चितकबरी वस्तुएं म कुत्ता बिल्ली, सांप आदि भी होते हैं। चितकबरी रात मन का प्रतीक है। कगारों में धसा हुआ मनहूस अंधियारा मन का ... है। इस कुरूपता का प्रदर्शित करने के लिये कवि को ये हो प्रतीक मिले हैं।

चादनी मित रात चितकबरी
उसे भूखण्ड की गजी सतह पर
खोह से खडहर, कगारों मे धसा अधियारा मनहूस पक्षिया[1]

प्रकृति के मुख्य उपादान प्रतीक कथा के चित्रण मे कितने सहायक हुए हैं यह रवीसिंह की प्रतीक कथा से स्पष्ट है —

बादल के किसी एक टुकडे ने
छोटे से आगन को छाया दी
चढे हुए सूरज की गर्मी सब
अपने ही ऊपर ली,
किरने वे क्या थी, बस
तपे हुए लोहे की गरम सलाखे थी,
छू — छूकर जिन्हें हुई पुरनम
उस बादल की आखे थी।[2]

बादल त्यागशील व्यक्ति का प्रतीक है, आगन उसके द्वारा कृपाकांक्षी का। जगत् की आपदाएं ही तपे हुए लोहे की गर्म सलाखें हैं जिनके आघातों से त्यागशील व्यक्ति भी द्रवित हो गया है।

२. पौराणिक प्रतीक

पूर्ववर्ती काव्य युग में पौराणिक प्रतीकों का अभाव मिलता है। इन

---

१ कुंवरनारायण, चक्रव्यूह।
२ कु० रवीसिंह कविताएं १९५८, एक प्रतीक कथा पृ० ५६।

प्रतीकों में पौराणिक आख्यानों, गाथाओं चरित्रों, के साथ युग की पूर्ण परिवेश की जटिल संवेदनाओं से सम्रथित किया जाता है। इन प्रतीकों में कवि की संवेदनशक्ति की मार होती है।

नयी कविता में पौराणिक प्रतीक में कवि व्यक्तित्व की अन्त प्रेरणा दो रूपों में अभिव्यक्त हुई है —

१ वर्तमान मूल्य संकट की स्वीकृति के लिये।
२ इस वस्तुस्थिति के सम्भावना पक्ष को समेतित करने के लिय।

इन पौराणिक प्रतीकों में व्यग्य विपर्यय और खलबली मचा देने वाली सजता निर्भीक स्वर में व्यक्त होती है —

अब किसी बियाबान वन में जटायू ?
नही। वायुयान में बिठा कर ले जायेगा ।
अव्वल तो जटायू नही कोई
और हो भी तो
मशीन से कब तक लड पायगा ।
राम युद्ध ठानेगे ?
वानरों की सेना ले ?
जाकि आजकल अपने नगर में मुडेरो पर ।
रोटी ले भागने की फिक्र में बैठी है।
राम स्वय आहत है।[1]

भौतिक सुख और शान्ति के सम्बन्ध को प्रतीक के माध्यम से पौराणिकता का पुट दिया गया है। मनुष्य का हृदय सुख रूपी कंचन मृग के स्वर्ण चर्म पाने के प्रलोभन में शिकारी की तरह पीछे पडता है। स्वर्ण मृग का कार्य हो छलना, छलाना है। इसी से शान्ति रूपी पत्नी का अपहरण हो जाता है जिससे विषम विकलता बढ जाती है —

---

१ दुष्यन्तकुमार, नयी कविता, अक ४५ के पृ० ५१ ५२ से उद्धृत।

सुख का यह कंचन मृग
छलता है छलाता है ।
मन का यह धनुर्धर यह—
हाथ ले कुटिल कमान,
तनी डोर पर
धरे नुकीले बान
पीछे-पीछे उसके ही चलता है, चलता है
चमकीला स्वर्ण-चर्म पाने को मचलता है ।[1]

मन ने जब पीछा किया
उस मृग छौने का,
होने का क्षण था वह
कुछ अनहोने का
तभी – तभी
शांति सहचरी हरी गई,
तभी से समाई
यह विषम विडम्बना है
सुख का यह कंचन-मृग
छलता है, छलाता है ।[2]

विषम विडम्बना में वृद्धि मानव मूल्यों के विघटन से हुई है । इसलिये यह (नया कवि) कभी 'निहत्था अभिमन्यु' हो जाता है, तो कभी 'गर्भ से बाहर देकर निकाले गये अभिमन्यु' जैसा प्रतीत होता है तो कभी 'घिरा हुआ एकलव्य' प्रतीत होता है । लेकिन प्रत्येक आघात नये कवि को कटिबद्ध कर देता है ।

मेरे ही लिए यह व्यूह घेरा
मुझे हर आघात सहना
गर्भ निश्चित में नया अभिमन्यु, पैदल युद्ध ।[3]

---

१ कु० रमासिंह, 'समुद्र के फेन', पृ० ११ ।
२ कु० रमासिंह, 'समुद्र के फेन', पृ० ११ ।
३ कुँवर नारायणसिंह, चक्रव्यूह पृ० १०३ ।

पौराणिक प्रतीकों में सम्पूर्ण जटिल सामाजिक परिवेश की दुखान्त संवेदनाओं का समाहार होता है। सामाजिक विसंगति से उत्पन्न खीझ, निराशा, कुण्ठा, दैन्य, व्यथा, आदि आत्म-व्यंग्य के रूप में अभिव्यक्त हुए हैं जो संवेदना की गहराई को छूते हैं तथा अर्थबोध और भावबोध के नये आयामों को स्थापित करते हैं —

कल रात मैंने एक स्वप्न देखा
मैंने देखा कि मेनका अस्पताल में नर्स हो गई है
और विश्वामित्र ट्यूशन पढ़ा रहे हैं
—उर्वशी ने डांस-स्कूल खोल दिया है
नारद गिटार सिखा रहे हैं
गणेश बिस्कुट खा रहे हैं
और
बृहस्पति अंग्रजी से अनुवाद कर रहे हैं।[1]

इस प्रकार मानवीय मनःस्था अर्न्तद्वन्द्वों, विकृतियों, कुण्ठाओं से युक्त अनेक पौराणिक पात्र प्रतीक रूप में सामने आये हैं। नया कवि प्रतीक के आयाम बढ़ाने में लगा हुआ है। लेकिन वह पौराणिक पात्रों तथा कथाओं को व्यंग्य विपर्यय तक अपने को सीमित रख कर भावबोध, सौन्दर्यबोध और अर्थबोध के आयाम वह स्थापित नहीं कर सकेगा।

३ तकनीकी या वैज्ञानिक प्रतीक

विज्ञान का समाहार दिन प्रतिदिन वृद्धि करता जा रहा है। मानव जीवन उससे असम्पृक्त है। शम्भुनाथसिंह का कुञ्जी रहित ताला प्रशान्ति और चिरनिद्रा का सूचक है। बाध, अवरोध है, यन्त्र चालक प्रेरणा और प्रेरक शक्ति का द्योतक है —

मेशों की अंधेरी गुफाओं में
मेरे प्राण बन्दी हैं,

---

१ भारतभूषण अग्रवाल, 'ओ अप्रस्तुत मन'।

(मेरे प्राण बसते उंगलियों में)
कुंजी रहित ताले सी नींद यह
नहीं खुलती
नहीं खुलती ।

— —

कथा की धारा पर
बाँध बन गया है
जिसका फाटक बन्द है
(क्योंकि यन्त्र चालक जलाशय
में डूब गया)
धारा का द्वार यह
नहीं खुलता,
नहीं खुलता ।[1]

भारतभूषण अग्रवाल का विलायती स्पंज मध्यवर्गीय बुद्धिजीवी का प्रतीक है —

मैं निरा विलायती स्पंज हूं
मेरे प्राण रिक्त और छिद्रमय
उनमें कहां है रस,
उनमें कहां है स्रोत ?
मैं तो मात्र बाहर के जीवन को सोखकर
फिर उगल देता हूँ
सो भी तब जब कोई आके निचोड़े मुझे ।[2]

४ यौन प्रतीक

कवि जब अन्तर्मुखी होकर आत्मविश्लेषण में लग जाता है तो यौन भाव

---

१ शम्भूनाथसिंह कविताएं १९५८, बन्दी प्राण, पृ० ८४ ।

२ भारतभूषण अग्रवाल, 'ओ अप्रस्तुत मन' पृ० ५९ ।

नाए मुखरित हो जाती हैं। अज्ञेय तथा उनके अनुयायियों ने प्रकृति तथा जीवन-चर्या सम्बंधित कथ्यों में यौन प्रतीकों का समावेश निस्संकोच होकर किया है। वस्तुतः विगलित कुण्ठाएं ही अधिक व्यक्त हुई हैं। एक आलोचक का इस बारे में कथन है– 'प्रतीक योजना' के क्षेत्र में प्रयोगवादी कवियों ने अद्भुत प्रतीकों का प्रयोग किया है जो अत्यधिक अस्पष्ट तथा दुरूह हैं। 'अज्ञेय' की रचनाएं इस विषय में सबसे बढ़ी चढ़ी हैं। उन्होंने तो विकृत यौन प्रतीकों का आधार लेकर अपनी कुण्ठाओं को उभारा है जो सर्वथा हेय है।[1]

विगलित कुण्ठाओं को व्यक्त करने के कारण ये प्रतीक लोकहित के लिये समीचीन नहीं हैं। फिर भी अज्ञेय इन यौन प्रतीकों का समर्थन करते हुए कहते हैं 'आज के मानव का मन यौन परिकल्पनाओं से लदा हुआ है और वे कल्पनाएं दमित एवं कुण्ठित हैं। उनकी सौन्दर्य चेतना भी इससे आक्रान्त है। उसके उपमान सब यौन प्रतीकार्थ रखते हैं। प्रतीक द्वारा कभी कभी वास्तविक अभिप्राय अनावृत हो जाता है।[2]

कुंवरनारायण के जीवन दर्शन में समस्त सुखों का केन्द्र यौन प्रतीकों में निहित है। आमाशय, गर्भाशय यौनाशय ही सुख और सौन्दर्य के प्रतीक हैं –

आमाशय
गर्भाशय
यौनाश
उसको जिन्दगी का यही आशय
यही जितना भोग्य
उतना सुखी है वह।[3]

इन विविध प्रकार के प्रतीकों में से कुछ का धरातल वैयक्तिक है जिससे शुष्कता, बौद्धिकता क्लिष्टता, आ गई है। सन्देह है कि सृजन कर्ता भी उन्हें

---

१ शिवकुमार मिश्र हिन्दी निबंध, पृ० ७६।

२ अज्ञेय, तारसप्तक।

३ कुंवर नारायण, चक्रव्यूह पृ० ३४।

समभ पाता हो। कुछ ही सर्वमान्य धरातल पर श्रेष्ठ बन पाये हैं। उनमें से अधिकांश में अनुभूति की तीव्रता, प्रेषणीयता का अभाव है।

छन्द विधान

दशक के काव्य ने परम्परागत छन्द की कारा को तोड़ दिया। मुक्त-छन्द के प्रवर्तक निराला के मुक्त छन्द का समर्थन प्रसाद और पन्त ने किया। प्रगतिवाद और प्रयोगवाद में उसे अपनाया गया। लेकिन उसका विपरीत अर्थ ग्रहण किया गया। उसे विरोधमूलक मानकर स्वच्छन्द छन्द भी कहा गया। डा० जगदीश गुप्त के अनुसार 'चरणों की अनियमित असमान स्वच्छन्द गति और भावानुकूल यतिविधान, मुक्त छन्द की प्रमुख विशेषताएं हैं।'[१] जबकि निराला का कथन है—'मुक्त-छन्द वह है जो छन्द की भूमि में रह कर भी मुक्त है—मुक्त-छन्द का समर्थक उसका प्रवाह ही है।'[२]

मुक्त छन्द की प्रमुख विशेषताएं ये हैं —

१ प्रवाह का तारतम्य
२ मुक्त छन्द-विधान
३ असमान स्वच्छन्द गति
४ भावानुकूल गति
५ चरणों की अनियमितता
६ तुक की गौणता
७ लघु-गुरु रहित नियम के प्रयोग

लय का कविता में विशिष्ट स्थान है जो एकीकरण शक्ति से बिखरे तत्वों को संश्लिष्ट बनाती है। दशक की कविता में लय युक्त मुक्त-छन्द भी है तथा लयहीन मुक्त-छन्द भी हैं।

---

१ हिन्दी साहित्य कोश, सम्पादक धीरेन्द्र वर्मा आदि, पृ० ५६८।
२ " "

लय युक्त मुक्त-छन्द मे समान लय वाले छद भी मिलते हैं दूसरी ओर विविधता वाले भी। अजितकुमार की २१ २१ मात्राओ से युक्त समान लय वाली एक कविता है —

फिर तुमने बाहें फैला, आकाश तक
उड जाने की अभिलाषा मन में भरी,
फिर मैंने सोचा-शायद मैं पख हूँ
जो आ जाता काम, न यदि तुम त्यागती।[1]

लय की विविधता वाले छन्दो में कई रूप दृष्टिगत होते है। कहीं-कहीं एक पक्ति को छोडकर शेष मे मात्रा विधान समान रहता है। इससे गति भग का दोष पैदा होता है। दूसरे रूप में हर एक पक्ति मे एक छन्द होता है जिसकी आवृत्ति उसी कविता मे कई बार हो सकती है। तीसरे रूप में लयभंग अनेक स्थानो पर परिलक्षित होता है।

लयहीन मुक्त छन्दो में कही तुक होती है। कहीं, नही। छोटी-बडी पक्तियो मे वाक्य विन्यास गद्यवत् होता है। धमवीर भारती की 'कनुप्रिया और 'अन्धायुग' की कविताए इसी प्रकार की है। वास्तव मे आज क कवि इलियट के इस कथन को मान कर चलते हैं।

'कविता गद्य को अस्तव्यस्त करके उद्भूत करती है।'

वास्तव मे तुक स नाद सौन्दय मे वृद्धि होती है। नयी कविता में तुक का विरोध हुआ है, पर कहीं-कहीं तुक का मोह दृष्टिगत होता है। लेकिन यह आश्चय है कि नये कविता क समयक छन्द के विरोधी हैं और लय के पक्षपाती जो कि विचित्र अन्तर्विरोध का सूचक है फिर भी गद्यवत् वाक्य विन्यास को देखकर इस कथन मे सत्य का अश कम दिखलाई पडता है। गद्याभिभूत कविता द्रष्टव्य है —

"हाथ हिलाया आया या। जाओ। जाओ घर — लेकिन पाया तुम्हें

१ अजितकुमार अकेले कठ की पुकार, पृ० २६।

स्तम्भवत् । सूरज को देखा । पथ देखा । पाव उठाये । दो डग चला । गोर्ध धी छाया । मुडकर देखा तुम्ह लिया जीवन का लेखा ।'[1]

इसमे काव्य की अपेक्षा गद्य अधिक हैं । नलिन विलोचन की कविताए भी इस प्रकार हैं —

धूल बहुत उठती है
शाम के अलावा भी,
गायो के बिना भी ।
तीन – दो बराबर छे
आंखे मेरे पास गोकि
दो जोड एक बराबर तीन
आखो या फिर हजार आखो
की चर्चा पुराणो मे है ।[2]

इन कविताओ को ज्यो की त्यो गद्य में लिखा जा सकता है । गद्यात्मकता सहृदय पाठको का अरुचिकर प्रतीत होती है ।

तुम अमीर थी इसलिये हमारा ब्याह न हो सकी । पर मान लो, तुम गरीब होती — तो भी क्या फर्क पडता । क्योकि तब मैं अमीर होता ।''[3]

कवियो ने लोकगीतो की धुनो को अपनाया है । यह अभिनव प्रयास है । बच्चन का प्रयास इस ओर सराहनीय है । लोकधुनो के पुनरुत्थान की दृष्टि से इसकी प्रशसा की जायगी लेकिन केवल प्रयोग मात्र तक यह रुचिकर है उसे काव्य की सज्ञा देकर गति म अवरोध उत्पन्न करना हानिकारक होगा —

कहते हैं
कहते हैं दुनिया छोटी हुई
पिया नेडे रहे तो मैं मानू ।

---

१ त्रिलोचन, 'ज्ञानोदय', फरवरी १९५५ ।
२ नलिनी विलोचन शर्मा, 'युलप' कल्पतरु, अक्टूबर १९५५ ।
३ भारतभूषण अग्रवाल, 'ओ अप्रस्तुत मन', पृष्ठ १०२ ।

जितनी दूर पिया की नगरी
पहले थी, अब भी है पगली ।[१]

इस प्रवृत्ति का 'अज्ञेय' की 'कागडे की छोरिया' में देखा जा सकता है –

कागडे की छोरिया
कुछ भोरिया, सब गोरिया
लालाजी, जेवर बनवा दो
खाली करो तिजोरिया
कागडे की छोरिया ।[२]

कहीं-कहीं कवि लाव धुन उठाता है —

रात-रात भर भर भौरा पिहके, बैरिन नींद न आये
बड़े भोर सारस केकारे नदिया तीर बुलाये
बिखरे – बिखरे सपने – चुन – चुन
सूनी रैन सजाऊँ
भोरे – भोरे नदी – तीर
बालू के महल बनाऊँ
कौन उड़ा ले जाय सपनवा, कौन महलिया ढाये ?[३]

नयी कविता उर्दू और फारसी के छन्दों से बहुत प्रभावित हुई है। रुबाइयों और गजलों के साँचे में कविताएं लिखी गई –

सबेरे साँझ चाय पीता है
डालडा खा खुशी से जीता है,

---

१ बच्चन, साप्ताहिक हिन्दुस्तान, ६ नवम्बर १९६० ।

२ अज्ञेय 'कागडे की छोरिया' नयी कविता (अंक एक) स० जगदीश गुप्त, पृष्ठ २३ ।

३ डा० रामदरश मिश्र, रात रात भर भौंरा पिहके, (धर्मयुग, ६ नवम्बर १९६०)

कौन जाने शरीर में क्या है,
दिल है खाली, दिमाग रोता है।[1]

प्रयोगवादी कविताओं में सॉनेट और उर्दू के अनेक छन्दों का प्रयोग हुआ है। आजकल इन विदेशी छन्दों का बाहुल्य है। त्रिलोचन ने नागार्जुन के प्रति पांच सॉनेट लिखे हैं —

नागार्जुन— काया दुबली, आकार मझोला
आंखें धंसी हुई घन भौंहें चौड़ा माथा,
तीखी दृष्टि, बड़ा सर—उसमें ऐसा क्या था
जिससे यह जन असामान्य है। पूरा चोला
कुछ विचित्र है पतले हाथ पैर । वह बोला
जब कविता बोला तब लगा — सत्य सुना था।[2]

सॉनेट में १४ पंक्तियां और हर एक पंक्ति में २४ २४ मात्राएं होती हैं। कुछ प्रयोगवादी कवियों ने सॉनेट और उर्दू छन्द समर्थित कविताएं रची हैं। कविता पढ़कर उसकी उपादेयता स्पष्ट हो जाती है। कला की लोकशक्ति कवि नागार्जुन को एक ग्रामीण साथी के जूते उठाकर सहज स्वभाव, चुपचाप, उनके उचित स्थान पर रखते देखकर यों सम्बोधन करती है —

होंगे वे नभ में कहीं, होंगे वो फूल
राग — रस जिनसे अछूते हैं मेरे ?
प्राण प्राणों में अकूते हैं मेरे
सींचता है तू जहां नव — रस — मूल।[3]

इसके अतिरिक्त चतुष्पदियां लिखी गईं। परन्तु मुक्त छन्द का प्रयोग

---

१ डा० देवराज नई कविता, अङ्क एक, स० डॉ० जगदीश गुप्त।
२ त्रिलोचन नागार्जुन के प्रति सॉनेट १ (कृति, सितम्बर १९५८ प्रथम वर्ष, अंक १२, पृष्ठ ३६–३७।
३ नमशेरबहादुरसिंह चमकता विश्वास, (कृति, सितम्बर १९५९), पृ० ३६।

निराला की मा यता तक ठीक है। उसमे उच्छृङ्खलता और गद्यात्मकता का प्रयोग अवाञ्छनीय है।

भाषा तथा शब्द विधान

दशक की भाषा अनेक परिधानयुक्त खडी बोली ही है। भाषा सम्बन्धी कुछ विशेषताएं इस प्रकार हैं—

१ शब्द समूह मे आंग्ल शब्दो की प्रचुरता है। जैसे — मफिया, पिकनिक सिगरेट, आमचेयर वाइफ, गाउन, एटम, काफी हाउस, लिपस्टिक आल राइट, ट्रेजिडी, आदि सहस्रो शब्द देखे जा सकते हैं कुछ का हिन्दी सस्करण भी कर दिया गया है। इनमें से कुछ प्रचलित शब्द जनता द्वारा ग्राह्य हैं जैसे स्टेशन, होटल, कालेज, क्लर्क, आदि। अप्रचलित शब्दों को प्रयुक्त कर भाषा की समृद्धि करना असम्भव है। इससे भाव प्रवाह में गतिरोध आता है।

२ नये विशेषणो तथा क्रियापदो को अपनाया गया है — लहरिल (उडान) सभ्रमायी (लहरा), मोरपखिया चादनी निर्जना (डगर), गैसोनी (अधकार) वैरिन हुआ, बहुकी बहकी धूप चितकबरी रात, नवोढा नभी, दूधिया घास आदि। क्रियापदो दोनो रूप अकर्मक, सकर्मक अपनाये गये हैं। अकर्मक— बिलमा, उकसनी बिरल दा ठिठक गया, पथुराती बिलसता बिलमगया, उममना आदि। सकर्मक— हुलसायेगा असीस् गा, पिन्हा दा, सत्कारों, उजालो आदि।

३ सस्कृत शब्दों के अपभ्रश रूप तथा ग्राम्य दोष भी यत्र तत्र दिखलाई पडते हैं — परवत, हरम, पारवती, कलयुग, सुर, परदे अकास, बयाह, भाठ हाठ दाठ, रीत, सबरे, मदशाल हरकारा, नीको, दोपहरा चिडियें, पिया, असाढ़, भभूत, परवा, चोबार, ढिग, भागो, पाथर, आदि।

४ दशक की कविता ने उर्दू और अग्रेजी शब्दो के मोह में सस्कृत से प्रेरणा लेना बन्द कर दिया है जबकि छायावादी कविता ने सस्कृत से ही प्रेरणा ली थी। नया कविता मे तो अधिकाशरूप से अग्रेजी और उर्दू के शब्द आये हैं। उर्दू की छटा अतिशय मात्रा म मिलती है। दीपक मी

अंग्रेजी और उर्दू भाषा के हैं। सर्वेश्वरदयाल सक्सेना की 'पीस और पैगोडा' कविता इसी प्रकार की है —

"एक लाश खड़ी करके दूसरी लाश उसके सर पर लिटा दी गई है
ताकि उसकी छाह तले
ठण्डक से ऐंठे हुए
दो बेहोश जहरीले सापों के फन
एक ही कमल पखुरी पर
सुलाये जा सके क्या कमाल है मेरे दोस्त।"[1]

'खुदपरस्ती' शीर्षक में लिखी कविता इसी प्रकार की है —

किया गया तलब
कहा गया चलो क्लब
सवाल — जवाब से तुम्हें मतलब ?
खुम्बिसाने — से सब
गये कुछ दब
टपकने लगे नैनों के टब।[2]

उपर्युक्त उदाहरणों में अधिकांश शब्द उर्दू के हैं। सम्भवतया उर्दू न जानने वाले के लिये उर्दू और फारसी का शब्दकोश अपने पास रखना पड़े।

लेकिन उर्दू शब्दों का बाहुल्य हिन्दी के लिये समीचीन नहीं है। हिन्दी के लिये संस्कृत ही प्रेरणा का स्रोत रही है क्योंकि वह भारतीय संस्कृति, सभ्यता धार्मिक भावना आध्यात्मिक शक्ति से ओत प्रोत है।

लिंग सम्बन्धी दोष भी काफी पाये जाते हैं। कहीं पुलिंग स्त्रीलिंग बन गया है।[3] तो कहीं 'भाग' भी स्त्रीलिंग की कोटि में रख दिया है।[4] बाज और भोंपू भी स्त्रीलिंग मान गये —

---

१ सर्वेश्वरदयाल, सक्सेना 'नयी कविता अंक २, पृष्ठ ४२।
२ राजेन्द्र माथुर, 'नयी कविता अंक २', पृष्ठ १०६।
३ राधाकृष्णसहाय 'नयी कविता' (अंक १) पृ० ४८ सं० जगदीश गुप्त।
४ नरेश मेहता बन पाखी सुनो, पृ० १७।

क्षितिज की गजी चाद
रिक्सो की वर्णसकर भौंपू ।[१]

५ कविता मे जनभापा तथा बोल चाल की भापा को पास लाने का प्रयास किया है । पर उससे भापा मे विकृति और दुरूहता पैदा हुई है —

प्रभु मोर काठ के
बल देवो, घोप देवो, न्याय देवो !!
जानो हमी कवि नही
जानो हमी ऋषि नहीं
हमी सगीतहारा, पथहारा—
कोटि जन सर्प पिस गये पू जीरथे ।[२]

इन कवियो का विचार है कि हिन्दी मे सगीतात्मकता की क्षमता का अभाव है । हिन्दी का व्याकरण तो उन्हें सगीत विरोधी प्रतीत होता है इसलिये वे जनपदीय बालियो और मध्य प्रातीय भापाओ, विशेष कर बगालीपन लाने के लिये अपनी भाषा को विकृत कर रहे हैं —

दखिनद्वार उघाडो बसन्त आयो !!
हमा के पनझड़ नग्न कियो,
पुराना पात झडि गियो,
सेरो बाटे जीर्ण जोवन,
बुहारी लिये जावे पवन ।
नूतन खातिर मार्ग देवो,
जो हमार मोह पुरातन ।
गोपुरे शख डाके सुनो साखि ।
ऋतु श्रीमत आयो ॥[३]

१ नलिनी विलोचन शर्मा 'नकेन के प्रपद्य', पृ० १४ ।
२ नरेश मेहता, 'वन पाखी सुनो', पृ० ३० ।
३ नरेश मेहता, काव्यधारा स० शिवदानसिंह चौहान, गोपालकृष्ण कौल पृ० १२७ ।

६ अभिव्यक्ति के लिये नयी कविता म टेढे मेढे आड़े तिरछे चिह्नो को प्रयुक्त किया है । अज्ञेय द्वारा 'तार सप्तक' की भूमिका मे प्रयोगवादियो का सकेत दिया गया है कि अपने भावो की अभिव्यक्ति को टेढी मेढी आडी तिरछी लकीरो को अपनाया चाहिये । फिर भेड चालो क्यो चूके । उर्दू अग्रेजी शब्दो मे समन्वित कविता मे दृश्यकाव्य जैसा तत्व, ममीकरण जैसी आकृति देखी जा सकती है –

'प्रेम की ट्रेजेडी"
—> —>
(हाय !)
<— —>
(नही चैन,
जागते ही कट गयी रैन–)
(प्रेम यानी इश्क यानी लव !)
" ।
" ॥ '
∧+∧
* *
(अरमाना के गाल पर चाटा
भरबेरी का काटा)
<—१—>
(मुहब्बत म घाटा ॥) [1]

इसम अत्यधिक वैयक्तिकता है जिसस दुरूहता आ गई है । जन सामान्य की बुद्धि से यह परे है ।

भाषा मे मनमाने प्रयोग किये गये है । भले ही उनका प्रयाग, पर, पदान

---

१ सयद सफीउद्दीन जनभारती' वर्ष ८, अक १ सवत् २०१७
स० डॉ० बलदेव मिश्र पृ० १३ ।

म ही हाता हो। इनको लोक ग्राह्य नहीं बनाया जा सकता। प्राचीन श-ण को नये अर्थ मे व्यवहृत करने मे लोकमान्यता का होना अनिवार्य है।

समष्टि मे अभिव्यक्ति के उपादानों में दशक के कवियो ने सतकता नही अपनाई है। वह स्वच्छन्द रहा है। जिससे कविता वैयक्तिक, दुरुह, दुर्बोध, क्लिष्ट हो गई है। इन अभावो को दूर करके कविता सज सकती है। थोड़ा उपमानो पर विचार किया जाय।

उपमान विधान

✓ नयी कविता नवीनता की कुण्ठा से ग्रस्त है जो चमत्कार पैदा करन के लिये सवग्राही, सर्वमान्य, परम्परागत उपमानो को छोडकर नये उपमानो की ओर क्षिप्रता से दौड रही है। कमल, मयङ्क ज्योत्सना चातक, चकार हरिण, खजन मीन सिंह तथा कदली के स्थान पर कुत्ता बिल्ली, गधा, घोडा केंचुआ, कछुआ, चाय, सिगरेट, शराब आदि उपमानो को खोज रही है। मूत्रसिंचित मृत्तिका वृत्त मे खडा धैर्यहीन नन्हा अज्ञेय का प्रिय उपमान रहा है। उसे मुल्ल की बाग के साथ पिल्ले की रिरियाहट सुनाई पड रही है। यथा–

✓ दूर किसी मीनार क्रोड से मुल्ला का
एक रूप पर अनेक भावोद्दीपक
गभीर आऽह्वाऽन
"असल्ला तु व्वैरुम्मिनिन्नाह
निकल गली मे
पिल्ले की करुण रिरियाहट। (अज्ञेय, तार सप्तक)

किसी ने आशा को लालटेन की ओंडी परिधि मे बाट दिया है।[1] किसी को नूपुर ध्वनि और चप्पल को आवाज में साम्य दिखलाई पडता है।[2]

ये उपमान दशक से पूर्व के है। दशक मे भी नये उपमानो के नाम पर विविध उपादानो और उपकरणो का ग्रहण किया है –

१ गजानन माधव मुक्तिबोध तार सप्तक पृ० १६।

२ भारतभूषण अग्रवाल, तार सप्तक, पृष्ठ ५०।

नव दूल्हे सा सूरज, नव वधू पीछे पीछे यह
शुक्रतारा जा रहा है।

—

इंजन के हैडलाइट सा, शोरगुल के बीच
सूरज निकल गया।
गार्ड की रोशनी सा पीछे पीछे गुमसुम मन्द
शुक्रतारा जा रहा है ॥२॥
हमारी बस्ती में, दिये में, बल्ब में (पेट्रोमेक्स सा चाँद),
चारों ओर जल उठे तारे।
दूरी में बैलगाड़ी की लालटेन सा यह
शुक्रतारा जा रहा है।[1]

शुक्रतारे के उपमानों की झड़ी लगा दी गई है। शाम मानो एक कुबड़ी बुढ़िया है, जिसका कूबड़ ऊपर उठना हुआ विराट आकाश का स्पर्श करता है। अथवा वह चाँद वन में भटकी हुई भयभीत डोंगी बच्ची है जो धानों के बीच कहीं खो गई है।[2]

मस्तिष्क में भावों की उलझन फेंके हुए गुलमुहरों वालों की तरह है, जीवन पथ प्रशस्त नहीं है उसमें साँप और सीढ़ी का उलझा हुआ निरन्तर खेल चल रहा है —

फेंके हुए गुलमुहर वालों के
सेमली दिमाग में
साँप और सीढ़ी के खेल सी
चारों तरफ
उलझी, चितों
राहें ही राहें हैं।

---

१ मदन वात्स्यायन 'तीसरा सप्तक', पृष्ठ २२६।

२ शम्भुनाथसिंह 'धर्मयुग', २२ मई १९६०।

काजल के थके हुए भाग
हैं चिराग में।[1]

उपमान केवल स्थूल वस्तु तत्व के लिये ही नहीं होते हैं अपितु उपमेय में लिये अपक्षित मानसिक सम्बन्ध तत्व पर भी आधारित होते हैं। इनके प्रयोग में ऐसी स्वच्छन्दता कदाचित ठीक नहीं है। स्थूलता और इतिवृत्तात्मकता से कविता इतनी अन्तर्मुखी और वैयक्तिक हो गई है कि पद विन्यास शब्द सज्जा, शिल्प वैविध्य के नाम पर उपमानों को बरबस थोपा जा रहा है।

वैसे उपमानों के क्षेत्र में जो नये प्रयोग हुए हैं उनमें कुछ अनूठे हैं, कुछ प्रभावोत्पादक हैं, जिनसे सौन्दर्य की मार्मिक अभिव्यक्ति होती है। लेकिन अधिकांश अनुपयुक्त, बेतुके, बेडौल और संदिग्ध हैं। उपमानों के प्रयोगों का क्षेत्र व्यापक है। पौराणिक कथाओं को आधार बना कर कुछ उपमानों की रचना हुई है —

घना बर्फ पर
इस उबड़-खाबड़ घाटी में
पाण्डवराज युधिष्ठिर के काले कुत्ते से
पीछे-पीछे पूंछ दबाए
आखिर कब तक संग निभायेगी तू मेरा।
ओ मेरी परछाई मेरा साथ छोड़ दे।[2]

कुछ वैज्ञानिक तथा कलात्मक उपमानों की व्यञ्जना की गई है। सभी उपमानों में नवीनता है मौलिकता है लेकिन नयी कविता अब मैनरिज्म' से ग्रस्त होती जा रही है।

---

१ गिरजाकुमार माथुर, कृति', अंक जनवरी १९६०, युगबोध, पृष्ठ ३४।
२ धर्मवीर भारती, ठण्डा लोहा, पृष्ठ ८२।

५ पिछले दशक के मुख्य विषय

१ प्रेम

प्रेमानुभूति और सौन्दर्यानुभूति मानव मन की विशिष्ट प्रवृत्तिया हैं। युगान्तर से कवियो ने सौन्दर्य को अभिव्यक्ति के लिये वेदना का आश्रय लिया है क्योंकि वेदना करुण से द्रवित मानव से मनुष्य हो रागात्मक सम्बन्ध स्थापित कर देती है। रागात्मक प्रवृत्ति को विकसित करने के लिये मुख्यतया दो पक्ष क्रियाशील रहे हैं –

१ लोक कल्याण,
२ आत्म कल्याण।

जिस काव्य मे इन दोनो प्रवृत्तियो का तादात्म्य हो गया है उसी ने जनता के हृदय की अनन्त गहराइयो मे अपना स्थान बना लिया है। चिन्तक और हृदय का असामंजस्य रागात्मक भूमि नही बना पाता है। साथ ही जब क्रिया और चिंतन का सम्यक् स्वावलम्बन और परावलम्बन होता है तब श्रद्धा और आस्था उत्पन्न होती है जिससे साधारणीकरण होता है। रागात्मक सम्बन्ध भी अवस्था भेद पर निर्भर होते हैं यद्यपि रतिभाव प्रत्येक मानव मे होता है।

अर्वाचीन काल मे प्रेम सम्बन्धी दृष्टिकोण में भी परिवर्तन आ गया। प्रेम के सम्बन्ध मे दो विचारधाराए स्पष्ट दिखाई देती हैं –

१ एक विचारधारा के अनुयायी प्रेम को पलायनवाद मानते है।
२ दूसरी विचारधारा के अनुयायी प्रेम को मानव का शाश्वत सत्य मानते हैं।

समाज में स्त्री पुरुष का प्रेम ही प्रेम कहलाता है। दोनो के मध्य प्रेम की उत्कटता यौवन मे होती है। अत प्रेम यौवन की अभिव्यक्ति है। प्रेम कभी भी

व्यक्तिपरकता में समाप्त नहीं होता क्योंकि इसका परिणाम ही सृष्टि का विकास है। लेकिन जब विकास के स्थान पर रहस्यात्मक तन्मयता में सांसारिक जीवन की इति समझी जाती है तब प्रेम, भक्ति के ही प्रकारान्तर रूप में बदल जाता है।

डॉ० रांगेय राघव का इस बारे में मत है कि 'उसे शुद्ध प्रेम के अन्तर्गत नहीं रखा जा सकता है। किन्तु उसे छोड़ा भी नहीं जा सकता है, क्योंकि शुद्ध प्रेम अपने सामाजिक स्वरूप में अभिव्यक्ति पाता है और वह उसके ही साधन का रूप बन जाता है।'[1]

साहित्य में प्रेम के अनेक रूप रहे हैं। वैदिक साहित्य में पाश्चात्य प्रेम भावना के सदृश प्रेम की उत्कल्पना मिलती है जिसमें शारीरिक मिलन को ही प्रमुखता दी गई है। परवर्ती वैदिक साहित्य और महाभारत में ऐसे ही अनेक साक्ष्य मिलते हैं। हिडिम्बा राक्षसी कुन्ती से स्पष्ट कहती है कि मैं तुम्हारे पुत्र से गर्भ धारण करना चाहती हूं।[2] आज लज्जा, शील, मर्यादा और संकोच के कारण कोई युवा लड़की इस प्रकार नहीं कह सकती है। रामायण में प्रेम कुछ संयत हो गया है यद्यपि यौन वर्णन मुखर मिलते हैं। पुरुष में भले ही वासना का उद्वेग प्रबल हो सकता है लेकिन नारी वासना संयत ही है। परवर्ती संस्कृत काव्य में पुरुष वासना ही अधिक प्रबल हो उठी परन्तु नारी मातृत्व को सम्मान प्रदान किया गया। हिन्दी के वीरगाथा काव्य में नारी यौवन का भोग्य वस्तु माना गया है। भक्ति काव्य में नारी के मातृत्व का सम्मान मिलता है परन्तु सूफी काव्य में पुरुष वासना और नारी वासना का संतुलित कर दिया गया है। पुनर्जागरण युग में नारी का सम्मान मिला है। साकेत की उर्मिला, और प्रियप्रवास की राधा भारतीय नारी के उदात्त पात्र हैं।

पंत और महादेवी वर्मा ने प्रेम को फिर स्वतन्त्र करने का प्रयास किया। उसके मूल में वासनाओं का दमन था। नयी कविता ने उस दमन को उदात्त रूप

---

१ डा० रांगेय राघव, 'आधुनिक हिन्दी कविता में प्रेम और शृङ्गार', पृ० १६।

२ व्यास, महाभारत, वनपर्व।

देने की उन चेष्टाओं का अस्वीकार करने का प्रयत्न किया जो कि समाज में शरीर और मन का सामञ्जस्य स्थापित करने में असमर्थ थी।

काव्य में सौन्दर्य

सत्यम्, शिवम् सुन्दरम् से युक्त काव्य ही उच्च कोटि का माना जाता है। इनमें भी सौन्दर्य का विशिष्ट माना जाता है। जिसके माध्यम से काव्यगत आनन्द का उद्रेक और रसानुभूति होती है। काव्य का सृजन और मनन, सौन्दर्य द्वारा प्रेरित होता है। पावस में कल-कल करते निर्झर, मयूरों के नृत्य, मेघों के गर्जन, शरद की शुभ्र ज्योत्सना, फूले कास, ऋतुराज में मुकुलित पुष्पों को देख कर सरस हृदय प्रफुल्लित हो उठता है। यही स्थूल सौन्दर्य जब काव्य में वर्णित होता है तो उसकी मनोमुग्ध करने वाली प्रवृत्ति सहस्रगुना बढ़ जाती है। वस्तुतः मन को मुग्ध करने वाली, आत्मानन्द प्रदान करने वाली शक्ति ही काव्य का प्राण है।

सौन्दर्य की काव्यगत अभिव्यक्ति चार प्रकार से रही है —

१ रूप सौन्दर्य
२ शब्द सौन्दर्य
३ नाद सौन्दर्य
४ कल्पना सौन्दर्य।

सौन्दर्यानुभूति केवल मानव तक ही सीमित नहीं है उसे पशु-पक्षी के गहन अन्तस्तल में भी देखा जा सकता है। तन्त्रीवाद्य से हिरण सम्मोहित होकर खिंचा चला आता है और क्रूर वधिक द्वारा निर्दयता से मार दिया जाता है। उस समय नाद सौन्दर्य से सम्मोहित हिरण को काल का भान तक नहीं होता। यही बात चक्षुश्रवा के बारे में है। नेत्रों द्वारा उसे नादसौन्दर्य की अनुभूति होती है। इस प्रकार सौन्दर्य आदिमयुग से मानव की मूलभूत प्रवृत्ति रही है। परन्तु सौन्दर्य का प्रथम सोपान है रूप आकर्षण। रूप चाहे नर का हो या नारी का, अथवा प्रकृति का सभी में मोहक जादू है जिसकी अनुभूति सान्निध्य से प्राप्त होती है। यह प्रक्रिया दो रूपों में होती है। प्रथम रूपाकर्षण की बाह्य और स्थूल प्रक्रिया द्वारा द्वितीय गुणाकर्षण की बाह्य और स्थूल प्रक्रिया द्वारा।

दोनों प्रक्रियाए भाव सौन्दर्य मे सन्निहित हो जाती हैं। रूप सौन्दर्य के भी दो पक्ष होते हैं, एक रूपानुभूति, दूसरी रूपाभिव्यक्ति। उभय पक्ष समन्वित रूपमे काव्य म दृष्टिगत होते हैं।

काव्यकार स्रष्टा भी है, द्रष्टा भी। द्रष्टा के रूप मे विश्व के सौन्दर्यशाल उपकरणों की गवेषणा करके उन्हें सजा प्रभाव करता है। काव्यकार की सूक्ष्म और स्थूल, अनुभूतिया हो भावो द्वारा पुष्ट होकर बुद्धि द्वारा परिमार्जित होकर, कल्पना द्वारा परिवर्धित होकर काव्यकार के अभिव्यञ्जना कौशल का रूपाकार ग्रहण करती है। इसे रूप पक्ष भी कहा जाता है। काव्य के चारो तत्व भाव, बुद्धि, कल्पना और शैली द्वारा काव्य सौन्दर्य अभिव्यक्त होकर मानसो को उद्वेलित करता है। यही काव्य सौन्दर्य सत्यम् शिवम् सुन्दरम् का सस्पर्श प्राप्त करके भाव, बुद्धि, कल्पना से युक्त होकर शैली के चमत्कार से जीवन को सरस और उपयोगी बनाता है।

सौन्दर्य का कोई भी मापदण्ड नही है। देश, काल, परम्परा और परिस्थितियो के अनुसार मापदण्ड बदलते रहते हैं। अत सौन्दय की भावना अनेकागी एव अनेक मुखी होती है। कही पर नत्रो का नीलारग सौन्दर्य का प्रतीक है तो कही पर श्यामरग। शरीराकृति तथा अगोपागो के अतिरिक्त वस्त्राभूषण भी सौन्दर्य के साधन होते हैं। परन्तु इसस सौन्दर्य वर्णन म कोई अन्तर नहीं आता है। विश्व साहित्य म सौन्दर्य वर्णन किसी न किसी रूप मे अवश्य मिलता है।

जिस समय कवि अपनी सम्पूर्ण मनोवृत्तियों, चित्तवृत्तियो और अपने सकल्प विकल्पो से सगठित होकर काव्यकृति म अवतरित होता है उससे नये काव्य म रस का भावन चिन्तन सवन, और दर्शन कर स्वय कर्ता भी विमुग्ध हो जाता है। पाठको, प्रेक्षको तथा श्रोताओं पर तदानुकूल प्रभाव को साधारणीकरण या रसावस्था कहते हैं।

इस दशक का कवि सौन्दर्य की आतरिक गहराइयो तक उतर गया है। उसने रूप सौन्दर्य के उभयपक्ष रूपानुभूति, रूपाभिव्यक्ति के मर्म को पहचाना है। इसम काव्य सत्य है, शिव है, सुन्दर भी। भाव बुद्धि और कल्पना ने उसमे

किसलिये होठ मेरे होठ मे गरमाये थे
किसलिये श्वास मेरी श्वास से उलझाई थी ?[१]

पुरुष की विह्वलता शताब्दियों से उसके हाथ अपने को भुला देने वाली मदिरा पीती चली आ रही है। नारी के इन्द्रजाल का सम्मोहन बहुत प्रबल है।

नारी फूलों का फूल है। फूलों से भी बढ़ कर उसका सौन्दर्य है जिसके वक्ष में मुंह छिपा कर पुरुष ध्यान की गहराइयों में डूब जाता है।[२]

दशक के कवि ने प्रेयसी और पत्नी का भेद स्पष्ट कर दिया है। यही पुरुष की वासना का द्वैत है। पत्नी और प्रेयसी का द्वन्द्व व्यक्ति और समाज के मध्य की खाई है। यदि इस द्वन्द्व का अस्तित्व न होता तो कविता जनमानस में अधिक गहराई से उतरती। 'परकीया' न होकर भी 'नायिका' अभी तक मर्यादा की 'पूज्य भावना' को प्राप्त न कर सकी है।

काव्य मे नारी वासना भी मुखरित हुई है क्योंकि नारी की मूलभूमि सृष्टि और सृष्टि का आधार वासना है। नारी, वासना को अपने से पृथक नही कर सकी है न कर सकती है, क्योंकि उसके नीरस होने का अर्थ है सृष्टि के नियम का समाप्त होना। नारी पालन करती है। पुरुष की निर्ममता उस समय अपना सिर उठाती है, जबकि उसका अपने चारो ओर से सामञ्जस्य नही बैठता। नारी सामञ्जस्य अनिवार्य रूप से विद्यमान है।

सुमित्राकुमारी सिन्हा प्रेमतत्व के महत्व को स्वीकार ही नही करती हैं, बल्कि उसकी सुखद अनुभूति भी प्राप्त करती हैं। प्यार मे अनुप्राणित होकर फूल की तरह खिलना चाहती है। गीत की तरह उठना चाहती है, वायु के समान चलना चाहती हैं। इन सबमे जीवन सौन्दर्य की मार्मिक अभिव्यक्ति है। लेकिन प्रतिकार में कवयित्री प्यार के दो चार क्षण प्राप्त करना चाहती है।

---

१ नीरज, नीरज की पाती, लहर का कविताक, पृष्ठ ३८।

२ पंत, 'कला और बूढा चाँद' सान्निध्य, पृष्ठ ६७।

तुम्हारे प्यार के दो चार क्षण पाकर !

— —

अधर में बन गई क्षण में,
मसृत सा बन गया जीवन,
उठी ज्यों गीत उठता है—
तुम्हारी बाँसुरी से मुग्ध लहराकर ।[1]

नारी में कवि की आत्मा का स्वर है जो अन्तर में एक रस है वह अचेतन में स्पंदन है, वह असंतुलित में सन्तुलन का ही प्रकारान्तर है ।

कभी-कभी वेदनाओं का सामञ्जस्य एक कसक लिये होता है, लेकिन तभी, जबकि वह कवि के हृदय की अतल गहराई से निकलता है । उस समय वेदना की प्रबलता में कवि प्रिया के रंग रूप का स्मरण करता है —

मेरी रागिनी मुझे भूल जा

— —

तेरे लाल होठ गुलाल-से
जो प्रकाश में सुरा घालते,
तेरे कण्ठ बीन की झाँझ-से
जिन्हें सुन सितारे भी बोलते ।
तेरे स्वर शमीम से कहना क्या,
जो पंखुरियाँ रूप की खोलते ।[2]

सुमित्राकुमारी सिन्हा जैसा मनुहार और तड़पन का स्वर कतिपय नई कवियत्रियों ने भी लाने का प्रयास किया । वह आगे चलेगा या नहीं यह कहा नहीं जा सकता है । नारी वासना का प्रस्फुरन कितने ही वेग से हो लेकिन मर्यादा का संयम बहुत ही प्रबल है । गीता के बहाने अपनी वेदना का व्यक्त करना कोई नई बात नहीं है । नयन मूक नहीं होते उनमें अर्थ निहित होता है अतः शब्दों से भी श्रेष्ठ तो माध्यम है —

१ सुमित्राकुमारी सिन्हा, 'बोलों के देवता', पृष्ठ १६ ।
२ रामेश्वर शुक्ल अचल, 'विराम चिह्न', पृष्ठ ५१ ।

मेरी अंतिम घड़ियों में भी निठुर,
न क्षण भर तुम रो पाए।
अधरों तक आते-आते ही
मेरी वाणी रुक जाती थी,
दृष्टि कहे कुछ इससे पहले
पलक नयन पर झुक जाती थी।[1]

वस्तुत नारी भावना मूलत प्रेम के आधार पर ही जीवित है और उसने हृदय की कोमलता के जिस पक्ष को लिया है वह रूप अर्जन करने में समर्थ हुई है। कहीं-कहीं पलायन के स्वर उभरे हैं। सबसे प्रमुख बात यह है कि नयी शिक्षा ने नारी को स्वाधिकार के प्रति जागरित करके भी उसे विकृत कटुता और पुरुष विरोधी अहंकार नहीं दिया है।

रूप का उफान

भाव और सौन्दर्य, काव्य के मेरुदण्ड हैं। भावों की विविधता में सदैव सत्य की खोज होती रही है। इस क्षेत्र मे दशक के कवियों ने प्राचीन परम्पराओं का खण्डन करने का प्रयास किया है। नये कवि ने 'नया माध्यम' खोजा और भाव पक्ष को ही शक्ति से अधिक पकड़ने का प्रयास किया क्योंकि उसी में आगत और अनागत सत्ता का एकीकरण सर्वाधिक रूप से हुआ था। उसने प्राचीन मान्यताओं को मुड़कर स्नेह से देखा और देखा सहज जीवन को जिसके प्रति आसक्ति को निस्संकोच व्यक्त कर दिया। तदन्तर परख की है तथा उन्नत के प्रति श्रद्धा व्यक्त की है —

तुम दाह घृणा का लेकर मन में बैठे हो।
खिल चटक चांदनी रातें बीती जाती हैं।
चीनांशुक पट से झांक रही है प्रकृति वधू
कर्पूरी मुखड़ा फूलों की मुस्कान भरा ?

---

१ पुष्पा रश्मि, गीत नहीं रो पाए, साप्ताहिक हिंदुस्तान, २७-११ ६०।
२ सुमित्राकुमारी सिंहा, 'बोलों के देवता', पृ० २१।

पुरुष ने सदैव से ही म० मरी मान्यता का निर्माण करने का प्रयास किया है। पुरुष की पूर्णता मनोरन के विकास में है । इस विकास में नारी उनका पूरक रही है।

जब अतस की मनुग्गार अपनी वाह्यानज्ञा के परिवृत्ता को तोडकर निकलती है तब स्पष्ट हा जाता है कि नारी अपने मूर अपराधी मे नही रहना चाहती है। बल्कि पुरुष के उस एकांगी दर्शन का चुनौती देकर उसे जीवन की सार्थकता की ओर खीचती है।

दशक का कवि यौवन क सारे रूप की उफान को पक्तिया मे समट कर ले आता है जहा उसकी विह्वलता अपनी चरमसीमा को पहुँच जाती है । नारी के चरणो की वह वदना करता हैं, यद्यपि उसकी प्रिया उसकी गोद म पाव रखे हुए है। दीन हृदय का उद्रेक उससे झलकता है —

ये शरद के चाद से उजले धुले – से पाव मेरी गोद म।
ये लहर पर नाचते ताजे कमल की छाव मेरी गोद म।
दो बडे मासूम बादल देवताओ से लगाते दाव मेरी गोद में।

— — —

सोनजूही की पखुरियो पर पले ये दो मदन के बान मेरी गोद में।
हो गये बेहोश दो नाजुक तूफान मृदुल मेरी गोद मे।[1]

कुल मिलाकर दशक के काव्य म आशावादी स्वर है जो आगत को कुछ दे ही सकेगा मधुमक्खियो की तरह मधुसचय जो उसने कर रखा है।

पिछला दशक : प्रकृति वर्णन

प्रकृति आदिकाल से ही मानवीय सहचर रही है । उसके क्रोड में न जाने कितने कवियो न प्रेरणा पाई रमणीय दृश्यो को देखकर भावोद्रेक से अभिभूत

१ धर्मवीर भारती, दूसरा तार सप्तक, सम्पादक अज्ञेय, 'तुम्हारे पाव मेरी गोद में', पृ० १८८।

हुए हैं। क्रौंचवध को देखकर आदि कवि ने मूक पशु को अश्रु सिंचित कर दिया था। आषाढ के प्रथम मेघों से कालिदास इतने अभिभूत हुए कि अनुभूतियां 'मेघदूत' के रूप में साकार हो उठी। संस्कृत वाङ्मय तथा हिन्दी वाङमय में प्रकृति वर्णन का प्रमुख स्थान रहा है। शारीरिक, मानसिक, और आध्यात्मिक दृष्टि से भी प्रकृति के साथ सम्बन्ध स्थापन, जड़ और संवेदनशील सत्ता के रूप में, हुआ है, साथ ही सत रूपी प्रकृति, चित् रूपी जीव, और आनन्द रूपी परमतत्व से निर्मित सच्चिदानन्द परमेश्वर के अभिन्न अङ्ग होने के कारण मानव और प्रकृति में घनिष्ठ सम्बन्ध रहा है। प्रकृति की नाना रूपात्मक, गतिमान, विविध ध्वनिमान, परिवर्तनशील सृष्टि ने मानव हृदय में कौतूहल वृत्ति को जागृत किया तथा मानव ने अपने कार्यकलापों की छाया में प्रकृति को देखा जिसका चित्रण कई प्रकार से हुआ है —

१ आलम्बनरूप,
२ उद्दीपनरूप,
३ मानवीकरण के रूप में,
४ प्रतीकात्मक रूप में,
५ अलंकार प्रदर्शन के रूप में,
६ बिम्ब प्रतिबिम्ब के रूप में।

विगत दशक के कवियों को प्रकृति चित्रण छायावाद से विरासत में मिला है। पंत और 'प्रसाद' ने कोमल भावों की अभिव्यक्तता के लिये प्रकृति को नाना रूपों में सजाया है। प्रकृति में 'महान' की छाया अपनी रंगीनी देती रही, कहीं उसमें विलास के बीज पलते दिखाई दिये। ऐसी अवस्था में नये कवि ने प्रकृति के सम्पूर्ण शास्त्रीय वर्णनों को अपने में सन्निहित करके, मन की भाव मात्रा को अनेक रूप दिये।

दशक के कवि ने अपने को विराट प्रकृति के सान्निध्य से स्वप्नवती सर्जना को पल्लवित किया। साथ ही प्रतीकों के संयोजन में जितना वैचित्र्य नये कवि को प्रकृति के माध्यम ने दिया है, उतना किसी ने नहीं।

भोर से सांझ तक —

नया कवि भोर से सांझ तक प्रकृति का पर्यवलोकन करता है। कवि को

भोर का नभ नीला शंख के समान, राख से लीपे हुए चौके के समान, जैसे घुली हुई केसर के समान, लाल खड़िया से मली हुई स्लेट के समान लग रही है। नया कवि का इसमे नया अन्दाज है। वैसे उषा का सौन्दर्य इसमे नही छलकता है। केवल प्रयोगवादी बुद्धि झलकती है।

प्रात नभ था – बहुत नीला शंख जैसे,
भोर का नभ,
राख से लीपा हुआ चौका
(अभी गीला पडा है।)
बहुत काला सिल
जरा से लाल केसर से
कि जैसे धुल गई हो,
स्लेट पर या लाल खड़िया चाक
मल दी हो किसी ने।
नील जल मे या
किसी की गौर झिलमिल देह जैसे
हिल रही हो।
और –
जादू टूटता है इस उषा का अब
सूर्योदय हो रहा है।[1]

प्रिया के अज्ञात स्पर्श मे जो स्पन्दन है जो आनन्द है, सौन्दर्य है, उसकी अनुभूति शरद के एकान्त शुभ्र प्रभात मे भी नहीं होती है। नये युग को प्रभाव से 'पंत' के विचार भी बदल गये हैं।[2]

नया कवि इन सबसे कन्नी काटता है। उसके लिये भोर का धुंधलका अंगीठी के धुएं सा है। पूर्व दिशा का सूर्य रोटी का फुलका है। धुंधलका उससे निकलने वाली गर्म गैस है। भोर के तारे चित्त भरे छिनके हैं। सवेरा क्या

---

१ शमशेरबहादुर सिंह उषा रूपाम्बरा सम्पादक अज्ञेय, पृ० २६७।

२ 'पंत' कला और बूढ़ा चांद, अज्ञात स्पर्श, पृ० ४४।

चमका, कि दूध मे उबाल आ गया है । महावर पर पायल की झब्बा ने क्या कसर छोड़ी है। फिर कमरू के छिलके की तरह रात का छिलना कौन सा मोहक और स्वस्थ बिम्ब प्रस्तुत करता है। कसरू के साथ दिल भी छिल गया।

अंगीठी के धुए सा
भोर का धुधलका
उग रहा प्राची मे
रोटी का फुलका,
गम गैस छूट रही
चित्ते – भरे छिलके
छिटक – छिटक छिटके
भोर के तारे
शून्य मे हलके
दूध के उबाल सा
सवेरा चमका
महावर पर पायल का
झब्बा भी झमका
कमेरू के छिलके – सी
रात छिल बिछुड गयी।
भोर का तड़का
ज्योति का फुनका।[1]

दिवस कमल की एक पखुड़ी खुल गई। पूर्व मे पद्मराग जैसा सूर्य की किरणे दिखाई पड़ने लगी। ऐसा प्रतीत होता है मानो एक अमाघ आशीर्वाद है जो विश्व के कण-कण मे व्याप्त है । मुकुलित पुष्प हो हास्ययुक्त मुख है। भौंरो का समूह सुगध के छन्द पढ रहे हैं। लताए इस प्रकार झूम रही हैं जैसे पुत्र के गुण श्रवण करने से माता पुलकित होती है। कहीं-कहीं कवि नये-पुराने उपमानो से सज्जित कर, उत्प्रेक्षा की छटा का पुट करके वर्णन में चमत्कार पैदा करा देता है।[2]

---

१ लक्ष्मीकान्त वर्मा, 'भोर का धुधलका', रूपाम्बरा पृ० ३१० ।

२ रामकुमार वर्मा, 'एकलव्य' पञ्चम सर्ग, पृ० ६७ ।

रवि रश्मिया के संधान मात्र से ही अन्धकार विलीन हो गया। पूर्व दिशा के स्वर्णासन पर बादलो से घिरा हुआ बाल रवि उदय हो गया है। जिसके चारो ओर बादलो के पुञ्ज हैं।

प्रभात के फूटने पर रश्मिया के प्राणो का बहना, प्रयोगवादी कवि ही देखता है। निर्झर तो निशा म भी झरता रहता है। झरने मात्र म सौन्दर्य नही है। सौन्दर्य निहित है सूर्य की अरुण आभा मे दीप्त रजतधारा और जल कणो मे।

फटा प्रभात फटा विहान
बह चले रश्मि के प्राण, विहग के गान
मधुर निर्झर के स्वर
झर – झर झर – झर।
प्राची का यह अरुणाभ क्षितिज
मानो अम्बर की सरसी म
फला कोई रक्तिम गुलाब रक्तिम सरसिज।[1]

प्रभात की इस व्यापक गरिमा[नि] वर्ग क चित्रण म ता बहुत ही प्रसिद्ध बताया है ? किन्तु म या क वणनो मे प्रभात से भेद रहा है ? डा० रागेय राघव के अनुसार सन्ध्या मे हम य उजागर स्वर प्राय ही नहीं मिलते, बल्कि छायावादी परम्पराओ और अभि यक्तिया का अधिक प्रश्रय मिलता है।[2]

सन्ध्या की शीतल छाया जो दिन की जगमग क बाद आती है वैसे तो वह सदा से ही मनोहारी होती है परन्तु नय कविया ने अपना बहुत कुछ उस पर उडेल दिया है। प्राय सन्ध्या क सु दर चित्र मिलत हैं। उनम विभिन्न स्वर गुञ्जित होते दिखाई पडते हैं।

साझ स्वप्निल है साझ बोझिल है, साझ थकन है यकान की विस्मृति है।

---

१ भारतभूषण अग्रवाल, भारती (कविता सग्रह) सम्पादक— नगेन्द्र, राव, त, पृ० ७०४।

२ डा० रागेय राघव आधुनिक हिन्दी कविता मे प्रेम और शृङ्गार पृ० १३३।

धा म मे प्यार है, निराशा का अन्धकार है, साझ में वेदना है, आशा का दीपक है, साझ में नये कवि का मन है, साझ में उसकी तल्लीनता है, क्योंकि उसमे उसे अनेक प्रतीक मिलते है।

कही कवि की कल्पना पुरानी है, वैदिक युग की सी भ्रान्ति है। इसीस चित्रण रगीन, चित्रात्मक होते है उनमे अभिनवता के कारण मनोहरता आ जाती है —

> सोने की वह मेघ चील
> अपने चमकीले पखो म ले अन्धकार
> अब बैठ गई है दिन अटे पर।
> नदी-वधू का नथ का मोती चील ले गई।
> गगन-खीड से सूरज ग्वाला, हाक रहा है दिन की गायें
> नभ का नीलापन चुप है दिशि के कधो पर सिर धर।[१]

मेघ रूपी सोने की चील अपने चमकीले पखो में अन्धकार भर कर दिन रूपी उजले अटे पर बैठ गई है। टोटेम-युगीन गरुड कल्पना से मिलती जुलती कल्पना है। लेकिन उपमानो की गति से वे बिना आभिल हो गई है।

सम्पूर्ण दृश्य सन्ध्या के वातावरण की ओर इङ्गित करते हैं, इसलिये अलग अलग दृश्य भी बिलकुल पटी के चित्र से प्रतीत होते है और वे अपनी पूर्णता का आभास देने मे समर्थ होते हैं। क्योकि ये सारे कार्य लोक प्रचलित है, अत इस कल्पना समूह को समझने मे कोई कठिनाई प्रतीत नही होती। वर्णन में प्रकृति का स्वत्व और कवि की पर्यवेक्षण शक्ति झलकती है।

लेकिन सन्ध्या रूपहली बनी तो कसमसाने पाश मे आकाश को बाध उठी। तिमिर रूपी वृक्ष की काली शाखो पर वह पसर गई और हर एक नक्षत्र झ मकने लगी। वह सन्ध्या नही है, अनजानी फैल गई चादनी है। उसकी रश्मियां रात रूपी वृक्ष के प्रत्येक पात स उलझ गई है —

---

१ नरेश मेहता, 'समय देवता' दूसरा सप्तक, पृ० १३२।

वैज्ञानिक उपकरणों और प्रगति के अभियानों ने युगचेतना का रुख बदल दिया था। दूसरी ओर कवि हृदय प्रकृति से तादात्म्य करने का प्रयास कर रहा था। यह मनोगत द्वन्द्व था जिसकी अनुभूतियाँ पूर्ववर्ती कवियों को उतनी तीव्रता से नहीं करनी पड़ी थीं। यन्त्रवत् जीवन और भी जटिल हो गया, कभी-कभी कोमल भावों का कवि उन्हीं में उलझने लगा। ऐसी परिस्थिति में 'नगर' के कवि ने प्रकृति की सत्ता को सौन्दर्य का एक माध्यम मात्र माना।

शरद ऋतु में चाँदनी का बरसना और अंजुरी भर पीने में जो सौन्दर्य निहित है, वह अन्यत्र नहीं है। शेष में संगीतात्मकता है —

शरद चाँदनी
बरसी
अंजुरी भर कर पी लो
ऊँघ रहे हैं तारे
सिहरी सरसी
ओ प्रिय कुमुद ताकते
अनभिप
क्षण में तुम जी लो।[1]

अन्य ऋतुएँ तो पत्नोवासिनी हैं पर शरद सदैव नभ में सुशोभित होती है। अन्य पत्नी का पूर में निराश हुई है लेकिन शरद स्वर्ग गंगा के समान निर्मल है। शुभ्र आकाश के शुभ्र वक्षस्थल पर जो आभा और सुषमा परिलक्षित होती है वह अनुपम है।[2]

रश्मिपाल की रजत तरी
स्वर्गंगा मे घूमने लगी
यह चपल हसनी लहर लहर
पर फहर फहर भूमने लगी
डूबे जल-थल के ओरछोर
आलोक तिमिर डूबे दोनो
यह एक स्वप्न की धूपछाह
क्षितिज अम्बर को चूमने लगी ।[१]

ऋतुराज बसन्त क्या आया, मानो गन्ध की समूची राशि और पुष्पो की सुषमा को समेट लाया । अनोखे पाहुने का स्वागत करने के लिये किरणो ने कमर को धोत लिया है । वायु सन्देशवाहक का कार्य करने लगी ।

परिया के मजीर लगे फिर बोलने
किरण लगी जल मे केसर घोलने ।
मधुऋतु आयी, स्यात, गन्ध छाने लगी
फलो का सन्देश वायु लाने लगी ।[२]

फागुन एक तो वसे ही सुन्दर होता है फिर कवि का हृदय उसकी शोभा का द्विगुणित कर देता है । दयक का कवि जितना ही कोमल भावो की अभिव्यञ्जना करता है उतनी ही उसकी भाषा बन्धना को तोड कर लचकने लगती है ।

पिया चली फगनोटी कैसी गन्ध उमग भरी
डफ पर बजते नये बोल, ज्यो मचकी नयी फरी ।
चन्दा की रुपहली ज्योति है रस से भींग गयी,
कोयल की मद भरी तान है टीसे सींच गयी ।
दूर दूर की हवा ला रही हलचल के बीज,

---

१ केसरी, 'कदम्ब', शरद कौमुदी, पृ० ८० ।

२ रामधारीसिंह 'दिनकर', 'सीपी और शख', पृ० ५४ ।

इस दशक का कवि प्रकृति को मानव से पृथक नहीं देखता। साथ ही अपने को प्रकृति के मध्य माध्यम मानता है। बादल झुक सबके मस्तिष्क दीप्त हो उठे। बगुले और सारस उड़ने लगे और किसानों में हर्ष छा गया। कवि ने भी कृषक के साथ तादात्म्य कर लिया।

उधर उस नीम को कलगी पकड़ने को
झुके बादल।
— —
बरस जा रे, बरस जा ओ नयी दुनिया के
सुख सम्बल।[1]

दशक का कवि ओज की प्रभाव भरी छाया में भी प्रसाद से नहीं हटता। एक क्षण आता है जब वह आनन्द का स्वर उठाना चाहता है। उस समय उसमें एक बड़ी आश्चर्य माधुरी मिलती है। किन्तु उसका वाक्य विन्यास, हा पद विन्यास नहीं पूरा आनन्द ता रास्ता है। फिर भी उसमें हल्की ही चपलता मिलती है —

✓ पीके फूटे आज प्यार के पानी बरसा री
हरियाली छा गई हमारे, सावन सरसा [री]।
बादल आये आसमान में, धरती फूली री
अरी सुहागिन, भरी माग में भूली – भूली री
बिजली चमकी, भाग सखी री, दादुर बोले री,
अंध प्राण ही बही, उड़े पछी अनमोले री।[2]

स्फुरण में जो प्राण हैं, वह अनायास ही उठ आता है। उसके लिए प्रयत्न नहीं करना पड़ता। वह तो मानो कवि में पहले से ही उपस्थित रहता है।

दशक के कवि में युग कुण्ठा भी है, सजीव प्रकृति चित्रण की क्षमता भी। पर उसका गंतव्य स्पष्ट नहीं है। वह भटक रहा है।

---

१ हरिनारायण व्यास, उठे बादल झुके बादल, 'दूसरा सप्तक' पृ० ६७।
२ भवानीप्रसाद मिश्र, मंगल वर्षा, 'दूसरा सप्तक', पृ० १७।

६ | पाश्चात्य विचारधारा, काव्य और पिछला दशक

आधुनिक हिन्दी काव्याकाश में उदित विभिन्न सम्प्रदाय प्राय पाश्चात्य काव्य जगत से ही अनुस्यूत किये गये हैं। पाश्चात्य सिद्धान्तों से अनुप्राणित मैनों स नये कवि को जो कुछ प्राप्त हुआ उसने उसे स्पृहणीय मान लिया। पहले पाश्चात्य जगत के स्वच्छन्दतावाद ने हिन्दी कविता को प्रभावित किया। तत्पश्चात ज्योर्जियन कवियों का संग्रह सन् १९११-१२ में प्रकाशित हुआ, जिसमें रूपर्ट ब्रुक, डेविस, जार्न ड्रिंकवाटर, मलेकर, गिब्सन, मेसफील्ड, मनरो, टर्नर आदि प्रमुख कवि थे। यथार्थवादी प्रभाववाद (Realistic impressionism) का जन्म इन्हीं से हुआ। कुछ आलोचकों के मतानुसार यह कविता परम्परागत काव्यधारा से असम्पृक्त थी,[१] क्योंकि इसमें सामान्य कथोपकथन नामक शैली का व्यवहृत किया गया तथा दैनिक जीवन के साधारण उपकरणों को वर्ण्यवस्तु बनाया गया। इसी काव्यधारा ने बिम्बवादियों तथा प्रतीकवादियों को प्रभावित किया।

१ युद्ध की विभीषिका और काव्य

पाश्चात्य काव्य सिद्धान्तों की एक बृहत् सामाजिक, साहित्यिक सांस्कृतिक पृष्ठभूमि रही है। प्रथम तथा द्वितीय विश्वयुद्ध के कारण मानवमूल्यों में विघटन तीव्रता से हुआ जिसके कारण सभ्यता और संस्कृति का विघटन भी प्रारम्भ हो गया। 'हीरोशिमा' पर बम्ब पड़ना अणुयुग की संक्रान्ति का सूचक बना।

---

१ 'The general lowering of poetic pitch that marks our age from its predecessors'
Geofferey Bullough 'The trend of modern poetry' P 66

इस विध्वंसक शक्ति ने मानव चेतना को झकझोर दिया। एस० बी० राउय का तो मत है—"यद्यपि लोगों का मत है प्रथम विश्वयुद्ध के आस-पास मानव मूल्यों का विघटन प्रारम्भ हुआ, किन्तु मेरी धारणा है कि प्राचीन मान्यताएं प्रथम महायुद्ध के भी बीस तीस वर्ष पूर्व खण्डित होनी प्रारम्भ हो गई थी। प्रथम विश्वयुद्ध ने सम्भवतया उन पर अन्तिम प्रबल प्रहार किया।[1]

यही कारण है कि २० वीं शताब्दी को सामान्य जीवन में असन्तोष और बुभुक्षा का युग बताया गया।[2] जैसे-जैसे मानवमूल्यों में विघटन तीव्रता से होता रहा वैसे वैसे अनास्था, कुण्ठा, असन्तोष, वेदना के स्वर उभरते रहे। महायुद्ध के परिणाम स्वरूप उत्पन्न हुई विभीषिका ने भी इन स्वरों को बढ़ावा दिया। युद्ध से लौटे हुए आहत और विकलाङ्ग सैनिकों की भाँति कवियों की पुरानी जीवननिष्ठा सौन्दर्यबोध और अनुभूति भी मर्माहत हो गई और उसका स्थान अनास्था, अनिश्चितता, कुण्ठा, आकुलता, मानवद्रोही व्यक्तिवाद ने ले लिया—

परम्पराएं टूट रही हैं, ससार घोर अशान्ति में है,
रक्त की नदियां बह निकली, जिनमें मानव की निर्दोषता डूब गई है,
बुद्धिवादियों के पास आस्था नहीं, बुद्धिहीन अन्धी कट्टरता में फंसे हैं।[3]

विल्फ्रेड ओवेन, सिगफ्रिड सैसून, और रुपर्ट ब्रुक ने युद्ध की इस विभीषिका को निकट से देखा और लिखा—'इस संग्रह में कविताएं नहीं हैं। इसका विषय है युद्ध और युद्ध की विभीषिका। इस विभीषिका में सारी कविता छिपी है'—

---

१ आलोचना (काव्यालोचन अंक) के 'काव्य की आधुनिक प्रवृत्तियां' नामक लेख से उद्धृत, पृ० २७१।

२ Twentieth century was full of an unsatisfied hunger for the Common place
—Babette Beutick Poetry in our times P 23

३ ईटस ब्रिजस गोझान द्वारा अनूदित कविता, काव्यधारा आधुनिक अंग्रेजी कविता नामक लेख से उद्धृत।

काश ! तुम वहा मौजूद होते,
जब हम लोगो ने उसको तरुण देह को गाडी मे लादा पर।
काश ! तुम भी उसकी निष्प्राण पुतलियो को देखते,
तो फिर इतने जोश मे बच्चो को युद्ध की कहानिया न सुनाते।[1]

— — —

मूर्खो ! तुम युवको को मार्च करते देख कर जयकार करते हो,
फिर घर मे दुबक कर प्रार्थना करते हो
तुम उस नर्क को क्या जानो,
जहा यौवन और हसी जल कर भस्म हो जाती है।[2]

इस युग की अग्रेजी कविता ने मानवीय चेतना पर भय का आवरण डाल दिया। पुन मानसो को झकझोर डाला समस्त मर्यादाओ नैतिक धारणाओ धार्मिक आस्थाओ को तोड डाला। इजरा पाउण्ड ने इसी स्वर मे स्वर मिलाया —

भाड मे जाओ सब। हमारे दक्षिणी प्रदेश मे शान्ति की दुर्गन्ध आती है।
अबे मुअर के बच्चे पैपिपोलस इधर आ
केवल मुझे तलवारो की खट खट मे ही जीवन का आभास होता है।[3]

टी० एस० इलियट के साहित्यिक जगत् मे पदार्पण करते ही दी वस्टलैंड (ऊसर भूमि) सामने आया जो पाउण्ड से किसी मात्रा मे अतिप्रभावित था। ऊसर भूमि सतत्त्व लैण्ड है जिसके निवासी आस्थाहीन दुराचारी दुर्बलमन हैं। उनका व्यक्तित्व और उनकी इच्छा शक्ति कुण्ठित हैं। इस रचना में नैतिक पतन खोखलापन, निष्प्रयोजनता और आध्यात्मिक कुण्ठा का नग्न चित्र है लेकिन जिसकी चरम परिणति आस्थामय जीवन मे हुई है। कवि ने अन्त में प्रदर्शित किया है कि भौतिक समृद्धि और यौन स्वच्छन्दता के माध्यम से ऊसर भूमि का उद्धार नहीं हो सकता है। उसकी मुक्ति त्याग और प्रेम मे निहित है।

१ काव्यधारा, पृ० ५४–५५।

२ सिगफ्रिड ससून, काव्यधारा पृ० १८८।

३ काव्यधारा, पृ० १८७।

इलियट के भय, अनास्था विक्षिप्ति, व्यभिचार, भग्नाहत्या स्वार्थ लोलुपता को हिन्दी मे विशद रूप से ग्रहण किया गया है।

युद्धान्तर काल मे भारतीय काव्य, पाश्चात्य काव्य से उतना प्रभावित नही हुआ जितना युद्धोत्तरकाल में। विगलित कुण्ठाए, युद्धजनित विभीषिकाए वय वितकता आदि का समावेश पाश्चात्य देन ही है।

यातायात के साधनो से विदेशी साहित्य का हिन्दी काव्य से सीधा सम्बन्ध हुआ। पाश्चात्य काव्य को मशीन युग की कर्कशता ने आच्छादित कर दिया, जिससे सवेदनाए बहरी हो गई। बाह्यशान्ति मे अन्तस्थल का ज्वालामुखी निरन्तर धधकता रहा। नई पीढी उससे बहुत आक्रान्त हुई। यही कारण है कि अमेरिका के एक लेखक ने अपनी नई पीढ़ी को पराजित पीढी (The beaten Generation) कहा है। यही प्रवृत्ति इङ्गलैंड मे तीव्रता से मुखर हुई। वहा नई पीढी को एग्री यग मैन (क्रुद्ध युवक) कहा गया है। हिन्दी मे भी इस प्रवृत्ति को अपनाया गया —

एक दिन जब
मेरा माथा टूट जायगा
आंखे सूख जायेगी
छाती दरक जायेगी
हाथ फट जायेगे
पैर गल जायेगे
नदी – वेग से बह जायगा रक्त
धज्जियो से उड जायगा माम
एक दिन जब।[1]

नये पाश्चात्य काव्य सर्जको द्वारा उद्वेगजनक रचनाओं का सृजन हुआ। यद्यपि सामरसेट माम, प्रिचेट जैसे विद्वान इस साहित्य को प्रवाछनीय और निकृष्ट घोषित करते रहे, फिर भी वर्तमान के असन्तोष और अव्यवस्था को लेकर काव्य में स्वच्छन्द आचरण तथा उच्छृङ्खलता का भरपूर प्रयोग होता रहा।

---

१ अशोक वाजपेयी 'कल्पना' पृ० ६६।

निलज्ज यौन प्रवृत्तियां ही जीवन का सार्थकता बन गई । आत्म अनुसंधान का हृदय को गहन अनुभूतियो के साथ तादात्म्य न होने के कारण वासनाओ की ही अभिव्यक्ति होती रही ।

२ वैज्ञानिक अन्वेषण और काव्य

यूरोप का सभ्यता और संस्कृति का विघटन जिस तीव्रता से हो रहा था वैसा के अनुरूप काव्यसृजन हो रहा था । सन् १९२२ में प्रकाशित टी० एस० इलियट के 'वेस्ट लैंड' में उन विघटनशील मान्यताओं को मार्मिक रूप दिया गया लेकिन 'हालोमैन अथवा निःशेष मानव की कल्पना इस दृष्टिकोण से समीचीन है । इस सांस्कृतिक विघटन के विरोध में भी महत्वपूर्ण प्रतिभाएं नव जीवन प्रदान करने के लिये सक्रिय कदम उठा रही थी । विज्ञान के क्षेत्र में आइन्स्टीन दार्शनिकों में रसल और स्पेंग्लर इतिहास में टायनबी ने सांस्कृतिक विघटन के छाये हुए इन मेघो को विच्छिन्न करने के लिये घोर प्रयास किया ।

'इडेन की अंधियारा गली' से प्रभावित होकर हिंदी में 'अंधायुग' लिखा गया जो सांस्कृतिक विघटन की ओर स्पष्ट संकेत करता है —

> उस दिन जो अंधा युग अवतरित हुआ जग पर
> बीतता नही रह रह कर दोहराता है
> हर क्षण होती है प्रभु की मृत्यु कही न कही
> हर क्षण अंधियारा गहरा होता जाता है
> हम सब के मन में गहरा उतर गया है युग
> अंधियारा है, अश्वत्थामा है संजय है,
> है दासवृत्ति उन दोनो वृद्ध प्रहरियो की
> अंधा संशय हैं लज्जाजनक पराजय है ।[1]

लेकिन जहां एक ओर कुण्ठाओ विभीषिकाओ, विघटनो का काव्य में विस्फोट हो रहा है वहां दूसरी ओर कुछ सजग व्यक्तित्व भविष्य के आदर्श

---

१ धर्मवीर भारती, अंधा युग, पृ० १३० ।

की ओर इङ्गित कर रहे थे। स०क वी र्‍हा ८ा भी इसी मे निहित है कि वह द्रष्टा के रूप मे भविष्य की ओर सकेत करे। लुई मैक्नीस ने अपनी कविता म चार प्रश्न उद्धृत किये हैं, जिनका उत्तर इस प्रकार दिया है —

१ दरिद्रता वह अग्नि है जो जलती है किन्तु तप्त नही होती (ठडे लोहे की भाति)

२ जीवन वह समयसूचिका है जो स्थिर हो जाने के बाद भी समाप्त नही होता।

३ यौवन वह यान है जो पाषाणो पर चलने का निश्चय कर लेता है।

४ अजन्मी मानवता उन मछलियो की तरह है जो समुद्र से भी वृहत हो सकती है।

इस कविता म प्रश्नोत्तर के माध्यम से सास्कृतिक विघटन तथा नवनिर्माण क सकल्प का स्पष्ट किया है।

३ बौद्धिकता

वैज्ञानिक आविष्कारा न जीवन का इतना गतिमय बना दिया कि नया कवि पुरानी कविता की भावसवलित शैली और भावुकता का छोड कर बौद्धिकता की ओर उन्मुख हो गया है। कल्पनाशील काव्य विज्ञान की प्रगति और प्रयोगा स निरन्तर सघष करता रहा, फिर भी उसम बौद्धिकता इतनी प्रबल हो गई कि धर्म और ईश्वर पर अविश्वास किया जान लगा। इसा से अनास्था के स्वर इतने प्रबल हुए। ईश्वर विरोध में वैज्ञानिक विचारधारा हा काम करती रही जा लगभग पुनर्जागरण युग म ही नाकित र्‍षित कर रहा था। उन्नीसवा शताब्दी के प्रारम्भ उसन बौद्धिक प्रगति पर अधिकार कर लिया। मार्क्सवादी विचारधारा ने ईश्वर और धम क प्राचीन रूप का प्रबल विरोध किया, फिर वैज्ञानिक बुद्धिवाद न युगो म स्थापित ईश्वरीय मूर्ति का पूर्णतया खण्डित कर दिया।

४ अहंवाद

बौद्धिकता ने एक दूसरे रूप में भी साहित्य को आक्रान्त किया। उसमें मानव की तार्किक शक्ति प्रबल हुई। तार्किक शक्ति ने द्वन्द्व को जन्म दिया। तार्किक शक्ति से ईश्वरीय भय का लोप हुआ, परिणामस्वरूप नैतिक बन्धन शिथिल हो गये। इसने अहं के परिष्कार को आधारभूमि प्रदान की। मानव मूल्यों के विघटन से खण्डित व्यक्तित्व अहं का आश्रय पाकर अनेक रूपों में मुखर हुआ। व्यक्तिवाद स्वच्छन्दवाद उसके ही रूप थे। इन पाश्चात्य काव्य की ह्रासोन्मुख प्रवृत्तियों ने हिन्दी काव्य को भी प्रभावित किया। नयी कविता में अहंवाद प्रबल है।

इस अहंवाद की परिणति निष्क्रिय नियतिवादिता, द्वीपवत् स्थितिशीलता अस्तित्व-संकट की व्याकुलता तथा जन जीवन के संकुलत्व में अपना पार्थक्य बनाये रखने के मोह में होती है। यह सामूहिक धारणाओं के विपरीत ही नहीं बल्कि उनके व्यक्तित्व को पूर्व परिचित गौष्ठि का भी मर्दन करती है —

> यह दीप अकेला स्नेह भरा है गर्व भरा मदमाता पर
> इसको भी पंक्ति को दे दो
> यह जन है गाता गीत जिन्हें फिर और कौन गायगा ?
> पनडुब्बा ये मोती सच्चे फिर कौन कृती लायेगा ?
> यह समिधा ऐसी आग हठीला विरला सुलगायेगा।
> यह अद्वितीय यह मेरा यह मैं स्वयं विसर्जित
> कुत्सा अपमान, अवज्ञा के धुंधुआते कड़वे तम में
> यह सदा द्रवित चिर जागरूक अनुरक्त नेत्र
> उल्लम्ब बाहु, यह चिर अखण्ड अपनाया।
> जिज्ञासु प्रबुद्ध सदा श्रद्धामय
> इसको भी भक्ति को दे दो।[1]

---

१ अज्ञेय 'बावरा अहेरी', यह दीप अकेला, पृ० ६२–६३।

५ मनोवैज्ञानिक धाराएं और काव्य

इस विकास में बहुत बड़ी प्रेरणा प्रदान की फ्रायड, एडलर तथा युग ने। उन्होंने बताया कि मानव मन की कुण्ठाओं तथा ग्रंथियों को काव्य में किस प्रकार व्यवहृत किया जा सकता है। मनोवैज्ञानिकों ने चेतना धरातल के इस अतिरिक्त पक्ष या उपांग को खोज का विषय बनाया। मन के धरातलों को भी वर्गीकृत किया गया। चेतन मन को सर्वोपरि मानकर धारणा, भावना विचार को ही उसका विषय माना किन्तु इसका महत्व अब घट गया है। चेतन मन से थोड़ा नीचे उपचेतन मन, और उससे नीचे अवचेतन मन का प्रवाह माना गया है। जिस प्रकार भारतीय योगशास्त्र में चेतना की मूलशक्ति को कुण्डलिनी माना गया है, उसी से साम्य रखता हुआ मनोविज्ञान का प्रबूझा, व्यक्तित्व के अध गत में लीन अवचेतन मन ही मनुष्य की समस्त उपचेतन - चेतन क्रियाओं का मूल माना गया है।

६ 'फ्री-एसोसिएशन' या चेतना का मुक्त प्रवाह

इसी से शृङ्खलित प्रक्रिया को 'चेतन का मुक्त प्रवाह' (फ्री एसोसिएशन) कह सकते हैं। इन्हीं मन के विभिन्न स्तरों ने काव्यात्मक संवेदनाओं और काव्य-रचना प्रक्रियाओं को अप्रत्याशित रूप से प्रभावित किया।

दूसरी ओर अंतश्चेतन के मुक्त प्रवाह में संकेतों का या प्रतीकों का महत्व सबसे अधिक है। प्राचीन प्रतीक परम्परा और आधुनिक प्रतीक परम्परा में अन्तर यह है कि आज प्रतीकों की प्रक्रिया का समग्र ज्ञान हान से उनका प्रयोग बौद्धिक भूमि पर किया गया है। आधुनिक काव्य हृदय के तलस्पर्शी स्तरों में डूबने का प्रयास करता है और मनोविज्ञान शास्त्र के सिद्धांत और उसकी मान्यताएं इस दिशा में पूर्ण सहयोग देती हैं। प्राचीन कवियों ने काव्य के उद्बोधन में संकेतित अर्थों के साथ साथ अभिधार्थ का भी प्रयोग किया है लेकिन नये काव्य में अभिधार्थ के स्थान पर व्यंग्यार्थ अथवा संकेतित अर्थ का ही प्राबल्य है।

साथ ही काव्य में संवेदना भावना, विचार के मिश्रित स्मृत्यात्मक रूप को नहीं भुलाया जा सकता क्योंकि उनकी घनीभूत समष्टि ही अनुभूति से अभिहित

होती है। जब ऐसी अनुभूतिया आत्मा का अङ्ग बन जाती है और प्रज्ञा या रचनात्मक पूर्व चेतन मन का बिम्बात्मक प्रतिमान धारण कर अभिव्यक्त होती हैं तभी वे काव्य का यथार्थ स्वरूप ग्रहण करती हैं। अनुभूति मूलक बिम्बो के बारे मे जर्मन कवि रिल्के का मत है कि जैसा प्राय लोग सोचते हैं काव्य अनुभूति है, केवल भावनाए नही। एक कविता का सृजन करने के लिए नाना नगर, मानव, उपादान पशु विहगो की उडान उषाकाल मे मुकुलित पुष्पो की सुषमा का अवलोकन करना चाहिये। उसे कल्पना लोक के अज्ञात प्रदेश पथा पर अप्रत्याशित मिलन की यात्रा करनी होती है। सनातन काल स अपेक्षित बिछुडन की कल्पना करनी होती है। शैशव के धुधले दिवसो का उन माता-पिता की, जो उस क्षुद्र आनन्दानुभूति प्राप्त करना चाहते थे पर उनकी बात न ग्रहण करके उसने उनका हृदय वेदनासिक्त कर दिया था स्मृतिया आती हैं। लेकिन स्मृतियो का इतना होना पर्याप्त नही है। यदि वे बहुसख्यक हैं तो विस्मरण शक्ति भी होनी चाहिए तथा प्रतीक्षार्थ धैर्य भी होना चाहिए जब तक वे स्मृतिया लौट न आवें, क्योकि स्मृतियो का विशिष्ट महत्व होता है जब वे रग रग में रक्त बनकर दौडने लगती हैं। हमारी दृष्टि और मुद्राओ मे रम जाती हैं, जब वे सज्ञाहीन होकर हमसे इतनी तादात्म्य कर लेती हैं कि पृथक करके उन्हे नहीं देखा जा सकता, केवल तभी यह सम्भव हो सकता है जब किसी अलभ्य क्षण में कविता का प्रथम वर्ण उन स्मृतियो से उभरता और विकसित हो।[१]

इस आधार पर काव्य के तीन मूलतत्व हुए —

(१) स्वानुभूति
(२) प्रज्ञात्मक अन्तर्दृष्टि
(३) बिम्ब।

आधुनिक कविता में जिन मनोवैज्ञानिक तत्वो एव प्रक्रियाओ का उपयोग हुआ है, वे इस प्रकार हैं —

१ विस्तार के लिये देखिये — 'Note bool of Matte Laurido Brigge

(१) निर्बाध निर्भेर या चेतना का मुक्त प्रवाह (Free association जिसका आधार है आत्मोद्बोधन (Avocation) ।

(२) व्यंजना का उपयोग (सांकेतिकता) ।

( ) प्रतीकवाद । ये प्रतीक अनेक कोटियों के हैं स्वप्न प्रतीक नागरिक प्रतीक, यौन प्रतीक, आदि ।

(४) अन्तश्चेतना के प्रवाह की ग्रहणार्थ आधुनिक कवि वाक्य विन्यास में अनेक परिवर्तन करता है । विचार विन्यास के प्रक्षेप डाल कर और भावात्मक संगति के उपयोग के द्वारा वह अपने अन्तरंग का स्पष्ट चित्र हमें देना चाहता है । फलत आधुनिक काव्य में तर्क सिद्धि के द्वारा अभिव्यंजना का प्रयत्न न होकर उद्बोधक प्रतीकों द्वारा भावाभिव्यंजना का प्रयत्न हुआ है ।

(५) नया काव्य निर्वैयक्तिकता को वैयक्तिक ढंग से पकड़ता है और इस प्रकार उसमें जहाँ स्वच्छन्दतावादी काव्य की व्यक्तिपरता आ जाती है वहाँ उसमें क्लासिकल काव्य की सार्वभौमिकता और तटस्थता भी रहती है । सम्भवत इस दृष्टिकोण से बहिरंग कवि के अन्तरंग में प्रभावित होते हुए भी अपना स्वतन्त्र व्यक्तित्व रख सकता है और उसका भावात्मक एवं वैज्ञानिक परीक्षण सम्भव है ।

(६) मानव चरित्र के बारे में भी अभिनव दृष्टिकोण अपनाया गया है । मानव चरित्र आज स्वतन्त्र एवं स्थूल इकाई न होकर अचेतन प्रतिक्रियाओं का विशृङ्खल समूह मात्र रह गया है । इसलिए नये कवि पात्र को महत्ता न देकर खण्डचित्र को ही महत्त्व देते हैं । खण्डचित्र में तारतम्य स्थापित करने के लिए पाठक को अपनी ओर से प्रयास करना पड़ता है । पाठक और कवि का चरित्र भी विशृङ्खलित होता है । दोनों की भावात्मक एकता जागृत होने पर ही वे सूत्रबद्ध हो सकेंगे, इसके लिए व्यक्तिगत उद्भावनशील प्रतीकों का सहयोग सहानुभूत होगा ।

प्राचीनतम काल से ही काव्य में लक्षणा, व्यञ्जना और प्रतीकों का उपयोग बराबर होता रहा है। अन्तर केवल इतना है कि आज हम मन प्रक्रिया तत्व को समझ गये हैं। ये प्रतीक अब अबूझे और अयाचित नहीं है। जैसा कि डा० भटनागर का मत है—"आधुनिक कवि मनोविज्ञान की मान्यताओं या सूत्रों के सहारे अन्तरग के अतल में डुबकी लगाता है और वहां ऐसे रहस्यमय चित्र विचित्र भावयोगों की खोज करता है जो केवल अर्द्ध स्फुटित स्वप्नों और अर्द्ध मुकुलित प्रतीकों और ध्वनियों में ही आभासित किये जा सकते हैं।"[१]

चेतन मन के नीचे अस्पष्ट भावजगत के इस उपयोग ने काव्य निधि को भयतम रूप से प्रभावित किया है। लेकिन अभी नयी कविता प्रयोगावस्था में है। अवचेतन को रूप देने में कवि को अभीप्सित सफलता कदाचित नहीं प्राप्त हुई है। असफल होने की अवस्था में उसकी रचना कूट काव्य बन गई है। डे लेविस का मत है कि 'चेतना के मुक्त प्रवाह की प्रक्रिया' पाठकों को कठिनाई में डाल देती है क्योंकि विचार अथवा कल्पना चित्र के सम्बन्ध में उसके सन्दर्भ कवि के सन्दर्भ से भिन्न हैं और यह सम्भव है कि वह कदाचित् ऐसा चकित और उद्वेलित हो जाय मानो वह नींद में किसी से वार्तालाप कर रहा हो।"[२]

सैद्धान्तिक रूप से तो यह कठिनाई अवश्य है लेकिन व्यावहारिक रूप से नया कवि अपने व्यक्तिगत प्रतीकों द्वारा कुछ कुछ भावबोध कराने में समर्थ हो सका है।

नया कवि मनोवैज्ञानिक विभाजन के कारण अखण्डित सम्पूर्ण को न देकर, केवल जीवन खण्ड की ओर संकेत करता है। पाठक को उसमें एक सूत्रता स्थापित करनी होती है। लेकिन यह एकसूत्रता चरित्रगत या विचारगत एक सूत्रता नहीं होती। इसको भावसूत्रता कह सकते हैं। सेसिल डेलेविस इसे इमोशनल सीक्वेंस के नाम से अभिहित करता है। उसका कथन है कि 'तर्क संगति के नितान्त अभाव का आदी न होने के कारण पाठक पहले तो चिढ़ सा

---

१ डा० रामरतन भटनागर आलोचना, मनोविश्लेषण और आधुनिकता की सम्भावनाएं पृष्ठ ३०।

२ Cecil day Lewis 'A hope for poetry P 20

जाता है सगति सोचने के प्रयत्न मे उसे अपना बुद्धि पर जोर डाल कर उसे प्रति सवदित कर लेना ठीक नही होगा। इस यवस्था मे भाव-सवेदन के माध्यम म वह रसनिष्ठ हो सकेगा। कल्पना चित्रो के अधिक समय तक स्थित रहने पर उसे प्रतीत होगा कि उसने सूत्र ग्रहण कर लिया है, जसे एक स्फुलिंग मात्र से सारी पा‹वभूमि जगमगा उठी हो।[२]

पूववर्ती का य म त‹ सम्ब ध और विषय निवाह को सर्वोपरि समझा गया था। उस समय चेतन मन का कवि उपयोग करता था। नया कवि चतन मन की उपेक्षा कर उपचेतन या अवचेतन के विराधाभासपूर्ण असगत और अर्द्ध स्फुट विचार प्रवाह को ही अपना का यस्थान बनाता है, वहा तर्क शास्त्र सम्मत विषय निर्वाह की कल्पना भी रही की जा सकती है।

आज की परिस्थितिया इतनी विकट हैं कि कोई भी कवि किसी यक्ति क अ तर्बाह्य को सम्पूर्ण रूप मे नहा जान सकता है। कदाचित् अपने खण्डित ‹यक्तित्व क बारे म भी इतनी स्पष्ट स्वीकारोक्ति नहीं कर सकता है।

७ फ्रायड और उसका सम्प्रदाय

मनाविश्लेषण क क्षेत्र मे फ्रायड ने काव्य का सबसे अधिक प्रभावित किया है। उसकी मा यताए का य तत्व तथा का य प्रवृति पर सबसे अधिक प्रभाव डालती है। फ्रायड ने तीन स्थितिया स्वप्न, रुग्ण मनस्थिति और कला मे बहुत साम्य माना है। इन तीनो म अचेतन प्रक्रियाए गतिशील रहती हैं साथ ही तीना तत्वा म कम या अधिक कल्पनातिरेक का तत्व निहित हाता है। लेकिन कवि का स्वप्न जाग्रत स्वप्न है। वह अपन विषय मे अभिभूत नही होता बल्कि

२ The render unaccustomed to the total absense of logical continuity is is first inclined to irritation let him not over heat his intellectual bearings in an attempt to 'thinkout' the connections The only entry into the position is an emotional one If he will situation, See Op, CIT, P 20-1

उस पर नियन्त्रण रखता है। स्वप्न ग्राविष्ट ग्रौर रुग्ण की मन स्थिति मे स्वप्न द्रष्टा ग्रोर रोगी कल्पना विभोर होता है, मन के ग्रश्व का वल्गा उसके हाथ मे नही होती।

(१) फ्रायड का विचार है कि कलानुरजन के मूल मे कलाकार की दमित एव कुण्ठित काम प्रवृत्तियो की सत्ता होती है। ये वृत्तियाँ विविध प्रकार की बाह्यवर्जनाग्रो के कारण ग्रवचेतन मन में दमित ग्रवस्था म होती हैं। मार्ग प्रशस्त होने पर निकास का मार्ग खोज लेती है। ग्रत सम्पूर्ण कला ग्रवचेतन, ग्रथवा ग्रचेतन म दमित तथा कुण्ठित कामुक वृत्तियो की ग्रभिव्यक्ति है। यदि सामाजिक तथा बाह्य प्रतिरोधो से इन वृत्तियो का दमन हो तो ग्रनेक मानसिक व्याधिया तथा विकृतिया उद्भूत हो जाती है।

(२) फ्रायड के ग्रनुसार स्वप्न इच्छापूर्ति भर है, जिसका दमन चेतनावस्था म किया जाता है। उसके ग्रनुसार दमित तथा कुण्ठित ग्राकाक्षाए ग्रवचेतन म विद्यमान होती है जो सुप्तावस्था म एक एक कर बाहर निकलने लगती हैं।

(३) मनोविश्लेषक ग्रवचेतन ग्रथवा ग्रचेतन मन म दबी इन दमित एव कुण्ठित ग्राकाक्षाग्रो का पता लगाने के लिए 'फ्री एसोसियन' नामक पद्धति का प्रयोग करता है। इस पद्धति मे मनुष्य को पूर्ण विश्राम की ग्रवस्था म बिठा कर उसम उन सभी विचारो को, उसी क्रम से निर्बाध रूप मे व्यक्त करने को कहा जाता है, जिस क्रम से वे उसके मस्तिष्क मे उठे हो। ये विचार सुसम्बद्ध नही होगे परन्तु मनोविश्लेषक इन ग्रसम्बद्ध विचारों के द्वारा ही मनुष्य के मन की दमित ग्रन्थियो को खोलने का प्रयास करते हैं।

(४) मानव के हृदय म ही नरक स्थित है जिसमे निरन्तर ऐसी प्रेरणाए स्फुरित होती हैं जो उसकी पाशविकता को चरितार्थ करना चाहती हैं।

(५) फ्रायड प्रेम तत्व को प्रधानता देता है।

(६) फ्रायड का विश्वास है कि मानव के दुख का सबसे बडा स्रोत उसका अहवाद है।

फ्रायड का मनोविश्लेपण कुछ मात्रा मे सत्य है किन्तु उसकी यौन-परिकल्पनाओं ने काव्य को जिस रूप मे आक्रान्त किया है, उससे विद्रोह पैदा होता है। यौनाचार कामभावना फ्रायड की देन है। नये काव्य मे उन्हें यथेष्ट मात्रा मे ग्रहण किया गया है। दूसरी ओर उसने मानव के प्रति अवज्ञा प्रकट नही की है। जहा एक ओर विवर्जित यौन कुण्ठाओं के यथार्थवादी धरातल पर मानव की शल्य प्रक्रिया करता है, वहा दूसरी ओर उसे परम प्रममय रूप के दर्शन भी करा देता है।

हिन्दी की नई कविता पर फ्रायड के यौनवाद का ही अधिक प्रभाव पडा है। अज्ञेय ने तार सप्तक के वक्तव्य मे इसे स्पष्ट कर दिया है —

आधुनिक युग का साधारण मनुष्य यौन वर्जनाओ का पुञ्ज है। उसके जीवन का एक पक्ष है, उसकी सामाजिक रूढि की लम्बी परम्परा, जो परिस्थितियो के परिवर्तन के साथ विकसित नही हुई और दूसरा पक्ष है स्थिति परिवर्तन की असाधारण तीव्र गति, जिसके साथ रूढि का विकास असम्भव है। इस विपर्यास का परिणाम है कि आज के मानव का मन यौन परिकल्पनाओ से लदा हुआ है और वे कल्पनाएं सब दमित हैं, कुण्ठित हैं। उसकी सौन्दर्य चेतना भी इससे आक्रान्त है। उसके उपमान सब प्रतीकार्थ रखते हैं। और इस आन्तरिक सघर्ष के ऊपर जैसे काठी कस कर एक बाह्य सघर्ष भी बैठा है, जो व्यक्ति या व्यक्ति का नहीं व्यक्ति समूह और व्यक्ति समूह का वर्ग और श्रेणियो का सघर्ष है। व्यक्तिगत चेतना के ऊपर एक वर्गगत चेतना भी लदी हुई है।[1]

साधारण मनुष्य को यौन-वर्जनाओ का पुञ्ज कहना आधुनिक मनुष्य की चेतना परिधि को सीमित करना है एक तरह से सर्जक तथा प्रतिभाशाली कवि की प्रतिभा को सीमित दायरा मे बांधना है। मनोविश्लेषणशास्त्र ने मनुष्य के मन और व्यक्तित्व से सम्बन्धित जो सामग्री उपलब्ध की है यदि काव्य के रूपशिल्प मे उसको अभिव्यक्त किया जाय तो कल्याणकारी सिद्ध हो सकता है

१ अज्ञेय तार सप्तक, भूमिका।

लेकिन जब कवि मनोविश्लेषण शास्त्र के सिद्धान्तों को अपने काव्य का आदर्श बनाकर काव्य प्रक्रिया के साथ उसका तादात्म्य कर लेता है तो उसकी काव्य रचना सदिग्ध ही होगी। उपलब्धि के रूप मे वह समाज को कुछ नहीं दे सकेगा।

अज्ञेय' तथा उनके अनुयायियों ने अनेक कविताओं मे यौन वर्जनाओं, एवं विगलित कुण्ठाओं का चित्रण किया है –

ठहर-ठहर आततायी। जरा सुनले
मेरे क्रुद्ध वीर्य की पुकार आज सुनजा।

'अज्ञेय' ने यौन भावना द्वारा सामाजिक सस्पर्श ही नही किया अपितु प्रकृति के सहज चित्रों मे यौन भावना का सन्निवेश करके उन्हे यौन प्रतीक का रूप दे दिया है –

घिर गया नभ, उमड आये मेघ काले
भूमि के कम्पित उरोजों पर झुका-सा
विशद, श्वासाहत, चिरातुर
छा गया इन्द्र का नील वक्ष
वज्र-सा यदि तडित-सा झुलसा हुआ सा
आह मेरा श्वास है उत्तप्त–
धमनियो में उमड आई है लहू की धार
काम है अभिशाप
तुम कहा हो नारि।

आगे कवि देखता है 'धारयित्री', 'स्नेह से अलिप्त और बीज के भवितव्य से उत्फुल्ल तथा 'बद्ध' होकर 'सत्य सी निर्लज्ज', 'नगी औ समर्पित' वासना के पक सी फैली हुई थी।[1]

अज्ञेय से प्रभावित तथा कवि दमित एवं कुण्ठित भावनाओं की अभिव्यक्ति करने मे नही चूक रहा है –

---

१ अज्ञेय इत्यलम्, 'सावनमेघ', पृष्ठ १५४–१५५।

सहज चुम्बन, सहज आलिंगन
सहज – सी भूल,
थके मुग पर इस सफर की धूल।[1]
× × × ×
आमाशय
योनाशय
गर्भाशय, जिसकी जिन्दगी का यही आशय
यही इतना भोग्य,
कितना सुखी है वह,
भाग्य उसका ईर्ष्या के योग्य।
हाय पर मेरे कलपते प्राण
तुमको मिला कैसी चेतना का विषय जीवन मान?
जिसकी इन्द्रियों से परे
जाग्रत है अनेकों भूख।[2]

नयी कविता में स्वप्न प्रतीक भी ग्रहण किये गये हैं तथा फ्री एसोसिएशन भी काव्य शिल्प का अङ्ग बन गया है –

ले लो वह बेच रहा वेदना निग्रह रस
जा सरे बलम' की संग्रहणी को करता छू–मतर।
आह वेदना मिली विदाई
जब तुम चले 'आदम हौवा बन', 'इडन कुञ्ज से
शल्य चिकित्सा का युग है यह
क्यों न अपनी लें कामल ग्रंथि निकलवा लो?
ये दो लवणीय एक्वट्र ओ के कम्पोडियस और पोर्टबुल
उदधि भी सूखे रहा करेंगे।

१ कुवर नारायण, 'चक्रव्यूह' अतृप्त ज्वार पृष्ठ ३७।
२ कु वर नारायण, चक्रव्यूह पृष्ठ ८४।
३ नरेन्द्र नवेन्द्र के प्रपद्य।

'अज्ञेय' की मान्यता यह भी रही है कि आज के मानव की संवेदनाएं मह जात प्रवृत्तियां और सामाजिक वर्जनाओं के द्वन्द्व तथा बाह्य सामाजिक राजनैतिक संघर्ष के कारण जटिल हो गई हैं, अतः इन्हीं उलझी संवेदनाओं की सृष्टि का पाठकों तक अक्षुण्णरूप में पहुँचाना और इस तरह व्यक्ति सत्य को व्यापक सत्य बनाना ही आज के कवि का प्रमुख कर्तव्य है ।[1] यह सत्य है कि किन्हीं अंशों तक आज का मध्यमवर्गीय परिवार मानसिक ग्रन्थियों में उलझा हुआ है अथवा कुण्ठाग्रस्त है । लेकिन शेष बातें अवैज्ञानिक और असत्य ही नहीं, प्रयोगवादी काव्य को कदाचित् पतन की ओर ले जाने वाली हैं ।

एक नए कवि का मत है कि "विवेचना प्रधान दृष्टिकोण होने के नाते विश्लेषणात्मक प्रवृत्तियां आज की कविता का मुख्य अङ्ग हैं । इन प्रवृत्तियों में विश्लेषण है उस संस्कार का उस परम्परा का जो केवल उत्तराधिकार के बल पर आज भी जीवित रहना चाहती है । संस्कार के साथ-साथ आज की मनःस्थिति और परिवर्तित जीवन-सन्दर्भ की सार्थकता को स्वीकार करता हुआ अपनी कला अभिव्यञ्जना को आगे बढ़ाता है । आज की काव्य प्रवृत्ति कवि की मनःस्थिति के माध्यम से बाह्य तथा आन्तरिक जीवन अनुभूतियों में विवेचनात्मक शैली का निरूपण करती है ।'[2]

लेकिन यह कथन घूम फिर कर उसी बिन्दु पर आ जाता है । उलझी हुई संवेदनाओं से हट कर विवेचना प्रधान दृष्टिकोण अपनाने में स्थिति में कोई अन्तर नहीं पड़ता है ।

८ क्षणवाद

क्षणवाद भी पाश्चात्य काव्य की देन है जिसने मनोविश्लेषण के साथ तादात्म्य करके विभिन्न रूप धारण किये हैं । क्षणवाद प्रत्येक क्षण में कौंधने वाले भावों का भोग करता है । तत्पश्चात बिम्बों के माध्यम से उसे व्यक्त कर देता है । इस तरह क्षणवाद में नया कवि क्षण को समस्त अनुभूतियां, संवेदनाओं

---

१ तार सप्तक—विवृति और परिवृत्ति तथा अज्ञेय की कविता की भूमिका ।

२ लक्ष्मीकान्त वर्मा 'नयी कविता के प्रतिमान' पृष्ठ ४९–५० ।

नामों, विचारों, भावों को व्यक्त करता है, *जिनमें संचारियों की प्रमुखता* होती है।

क्षण भी कई प्रकार के होते हैं। प्रमुख रूप से स्थूल और सूक्ष्म, इन दोनों रूपों से इन्हें देखा जा सकता है। सूक्ष्म क्षण में कवि सत्य के साक्षात्कार कराने वाले क्षण की अनुभूतियों को व्यक्त करता है। यह मुक्ति का क्षण हो सकता है। वास्तविक आत्मोपलब्धि का भी हो सकता है। काल खण्ड के लिये न होकर अखण्ड काल के लिये हो सकता है। सत्य भी दो रूपों में हो सकता है — व्यक्ति सत्य, समष्टि सत्य। सूक्ष्म क्षण में समष्टि सत्य की अभिव्यंजना होती है जबकि स्थूल क्षण में असत्य भौतिक, मांसलता युक्त कालखण्ड की अभिव्यक्ति होती है। *अज्ञेय, स्थूल क्षण के अनुवर्ती हैं। तार सप्तक में उन्होंने स्थूल* क्षणिक संवेदना को ही अनुभूति और सत्य माना है। "इन्द्र धनु रौंदे हुए" में 'अज्ञेय' का दृष्टिकोण सत्य की उपलब्धि कराने वाले क्षण की ओर उन्मुख हो गया है। दृष्टान्त के लिये 'इलियट' और 'अज्ञेय' की दो कविताएं उद्धृत की जा रही हैं —

काल वर्तमान का और काल भविष्यत् का
चेतना को रचमात्र मुक्त नहीं करते।
चेतना होना काल से मुक्त होता है
किन्तु काल में ही पाटल-वन में का क्षण
उस लता गुल्म में का क्षण, जिस पर वर्षा झड़ी होती है
गोधूली बेला के धूपित गिरिजा पर में का क्षण
याद किया जाता है भूत और भविष्यत् में लिपटा।
काल के माध्यम से काल जीता है।

सत्य का क्षण, प्रेरणा क्षण होता है। उसे गहन अनुभूति का क्षण भी कहा जाता है। इस क्षण की विशेषता ही यही है कि यह कालहीन होता है —

आज के विविक्त अद्वितीय क्षण को
पूरा हम जीलें पीलें, आत्मसात करलें
इसकी विविक्त अद्वितीयता

१ टी० एस० इलियट, 'फोर क्वार्टेटस' पृ० ९–१०। डा० शम्भूनाथ सिंह द्वारा अनूदित।

आपको, किमपिको, क ख ग को
अपनी सी पहिचनवा सके
रसमय कर दिखा सके—
शाश्वत हमारे लिये वही है।
अजर अमर है।
वेदितव्य
अक्षर।
एक क्षण। क्षण में प्रवहमान
व्याप्त सम्पूर्णता।[१]

लेकिन एक सत्य ऐसा भी होता है जो 'क्षण' का सत्य होता है जो क्षणिक सत्य है। 'क्षण' मे पकड भी हो, लेकिन क्षणिक क्षण हो तो उससे क्या लाभ ? क्योंकि इसमे संवेदनाए, अनुभूतिया, भावनाए, नितान्त तात्कालिक, या अल्प कालिक होती है। एक नये कवि को इसी 'क्षण' मे जिज्ञासा हुई कि लोग आत्म हत्या कैसे करते हैं। बस इस क्षणिक अनुभूति को पद्यबद्ध करने मे वह लीन हो गया —

मानवता है खुदकुशी को कायरो का काम
आत्मघाती भावना से घृणा करता हूँ
मगर इस क्षण न जाने क्यो दिल चाहता है
झाक लू उस अन्ध तमसावृत अजाने लोक मे
जिसमे हजारो प्रेत बसते हैं
बहुत सम्भव है कि वे प्रेत हो अधिक उदार
इन भूलोकवासी सभ्य संस्कृत प्राणियो से
बहुत सम्भव है कि उनके ठहाको मे—
कही कुछ सद्भाव भी मिल जाय।[२]

---

१ अज्ञेय, 'इन्द्रधनु रौंदे हुए ये', नयी कविता एक सम्भाव्य भूमिका, पृ० ४४।

२ जगदीश गुप्त, विविधा २, पृष्ठ ११।

क्षण विफल भी है जो उचित तम का खोजना फिरता है। लेकिन साथ हा कवि उस क्षण के महत्व से सजग है —

यह विकल क्षण, जन्म को आतुर,
उचित तम खोजता
रक्ताभ कोरक के विनश्वर गर्भ में,
अनुकूल है ऋतु का खुला अभिप्राय
मर्म रत हो,
स्वप्न मत देखो,
कहीं उन्माद न रह जाए भौरों का
निरर्थक गीत उद्दीपन।

यह एक इलियट की क्षणानुभूति थी, जिसकी प्रतिछाया हिन्दी में विकृत हो गई है। प्रयोगवादियों ने क्षण की अनुभूति का आशय भ्रमपूर्ण लिया। उन्होंने इसे क्षण की स्थूल मन स्थिति समझा जिसमें चेतन मन का अहं क्रिया शील रहता है। मनुष्य अपने व्यक्तित्व की प्रतिष्ठा अहं के माध्यम से करना चाहता है। इसमें बाधाएं उसको उद्वेलित कर देती हैं जिससे वह विद्रोही बन जाता है, अथवा सामाजिक मर्यादा के प्रतिकूल कार्य करने लगता है। मेरा विचार है अहं एक नशा है, जो अनुकूल परिस्थितियों में गहरा हो जाता है, प्रतिकूलता में बुद्धि पक्ष को दबाकर दैत्य बन जाता है। यह समाज का अवांछनीय तत्व है। प्रयोगवादी कवि भी अहंवादी है जो अपनी परम्परा और वर्तमान परिस्थितियों के वैषम्य को पूर्णतया विध्वस्त कर देना चाहता है। वे अपने व्यक्तित्व की प्रतिष्ठा के लिये वे स्वयं संघर्ष भी करते हैं, लेकिन परस्पर मिल कर नहीं, व्यक्तिगत रूप से।

अज्ञेय ने तार सप्तक में अपने अहं को स्वीकार कर लिया है, कहा भी है कि आत्माभिव्यक्ति का महत्व मेरे लिये किसी से कम नहीं है।[२] लेकिन नया प्रयोगवादी आलोचक अहं को विवेक की संज्ञा देता है।[३] विवेक निर्णयात्मक

१ कुंवर नारायण, 'चक्रव्यूह', वेद के फूल, पृ० ३१।
२ अज्ञेय, तार सप्तक, पृ० ७५।
३ लक्ष्मीकान्त वर्मा 'नयी कविता के प्रतिमान'।

बुद्धि का नाम है। अब तो नयी कविता के समर्थक भी मानने लगे हैं कि प्रयोग वाद का अहं हानिकारक रहा है। 'तार सप्तक' के प्रायः सभी कलाकार अहं के प्रति निष्ठावान थे। इस अहं की अभिव्यक्ति प्रायः सभी कवियों में हुई है। अहं की मर्यादा की माँग, स्वत्व की यह स्वीकृति इस बात का परिचायक है कि ये कवि आत्मविश्वास खोकर भी मतवाद स्वीकार करने में अपने को असमर्थ पा रहे थे।[1]

अहंवाद के कारण क्षणवादी कविताएँ नीरस, अस्वस्थ असामाजिक अवांछनीय हो गई हैं।

अस्तित्व वाद

किर्कगार्ड, हैडिगर की परम्परा अस्तित्ववाद के रूप में याम्पर्स मार्सेल, कामू, सार्त्र द्वारा अग्रसर हुई। आलोचकों द्वारा इस वाद को आत्माभिमुखी आत्मभोगी अराजकतावादी असामाजिक दर्शन से युक्त घोषित किया गया। सार्त्र ने दो धारणाओं को प्रमुख रूप में सामने रखा —

(१) मानव रुचि के चुनाव तथा निर्णय में पूर्ण स्वतन्त्र है उसका सारा उत्तरदायित्व उसी के ऊपर है। इस तथ्य के प्रति सजग रहना उसको लाभप्रद है। इससे यह दर्शन घोर असामाजिक हो जाता है तथा आत्मोन्मुखता को प्रश्रय मिलता है। क्षणवादी विचार धारा इसकी देन है।

(२) व्यक्ति का अस्तित्व, समाज के अस्तित्व में असम्पृक्त है। उसे युग, देश, काल के अनुसार विभाजित नहीं किया जा सकता है। इससे उग्र राष्ट्रवाद का जन्म होता है जो वैयक्तिक अस्तित्व का नितान्त विरोधी होता है। ऐसे समय का निर्णय पूर्ण अधिकार व्यक्ति को ही सौंप देना चाहिए।

सार्त्र ने अपने कथा साहित्य में कुरूप, वीभत्स भयानक चित्रों को ही अधिक प्रस्तुत किया है।

---

१ लक्ष्मीकान्त वर्मा 'नयी कविता के प्रतिमान', पृ० १५२।

सार्त्र युद्ध विरोधी रहा है। प्रयोगवाद अथवा नयी कविता में सार्त्र के इस कल्याणकारी पक्ष को न अपनाकर अपनी दृष्टि को निरपेक्षतावादिनी तथा अवैयक्तिक बना लिया है। धर्मवीर भारती ने 'ठण्डा लोहा' में इसे अनुभव अवश्य किया है लेकिन कारण कार्य के सम्बन्धों पर विचार न करके आरोपित कष्ट को ही व्यक्त किया है।

यूरोप में सार्त्र के कुरूप वीभत्स सर्जन के विरुद्ध एक तीव्र आन्दोलन प्रारम्भ होने के कारण इस विचारधारा के अवशेष मात्र रह गये हैं।

सार्त्र का अस्तित्ववाद हिन्दी में अपना सीधा प्रभाव नहीं डाल सका है। व्यक्ति जीवित रहना चाहता है और किसी प्रकार अपना अस्तित्व मात्र बनाये रखना चाहता है, इस दृष्टिकोण से व्यक्ति अपने को समाज की घोर वीभत्सता में पिसा हुआ सोचता है। उसे न केवल अपने चारों ओर दैन्य और निराशा दिखाई देता है, वरन् वह स्वयं उसके विरुद्ध होने की कल्पना कर लेता है। इस दृष्टि से व्यक्ति अपने को निस्सहाय समझता है और समाज में अर्थ के घात प्रतिघात को भाग्यवाद की दुर्दमनीय प्रणाली मात्र समझता है। उसकी सत्ता अपने चारों ओर परिधि खींच लेती है और एक का अस्तित्व दूसरे के अस्तित्व से सामंजस्य नहीं ढूंढता, वरना वह दायरा में बंध जाता है और उसे यह प्रतीत होता है कि यह संसार वास्तव में उसको मिटा देने में लगा हुआ है।

अस्तित्ववाद की स्थापना यूरोपीय महायुद्ध के पश्चात् की निराशा में हुई जब पूंजीवादी संस्कृति की विभीषिका में व्यक्ति को लगने लगा कि वह हर ओर असुरक्षित है। साम्यवाद अस्तित्ववाद के दृष्टिकोण में सर्वहारा का शोर और निरंकुश अधिनायकत्व है जो व्यक्ति का समाप्त करके, ऊपर से ऐसा सामाजिक व्यवस्था लागू करना चाहता है जिसमें कहने-सुनने की गुंजायश नहीं है केवल नियन्त्रण का बोझ है, जिसमें व्यक्ति अपने को अवरुद्ध पाता है।

अस्तित्ववादी व्यंजना का अंतिम आश्रय स्थल प्रयोगवाद बना। यूरोप में पदर्शित अस्तित्ववाद को यहाँ शरण मिला, जिसका अस्तित्व अधिक समय तक न रह सका। इसी मध्य अनेक उत्साह से व्यक्ति ने अपने सामाजिक उत्तरदायित्व से मुँह मोड़ने का प्रयास भर किया था।

अति यथार्थवाद

फ्रायड से प्रभावित इस आन्दोलन का सूत्रपात सन् १९३० के दो घोषणा पत्रों से हुआ। कुछ आलोचकों की यह मान्यता (जो निराधार है) रही कि यह स्वच्छन्दतावाद का ह्रासशील रूप था। अति यथार्थवाद में प्रथम विश्वयुद्ध की विभीषिकाओं ने दमितवासनाओं, कुण्ठाओं, अतीन्द्रिय यथार्थ की अभिव्यक्ति तथा विशृङ्खल मानसिक गतिविधियों की प्रतीकात्मक अभिव्यक्ति को प्रमुख स्थान मिला। इससे नैतिक तथा सौन्दर्य सम्बन्धी मूल्यों का अतिक्रमण हुआ। यूरोप में इस वाद के विरुद्ध तीव्र आन्दोलन चला जिसके परिणाम स्वरूप उस उसके अनुयायी एक एक करके छोड़ गये। नयी कविता में अज्ञेय और धर्मवीर भारती पर इसका प्रभाव पड़ा।[१]

नव्य स्वच्छन्दता वाद

पाश्चात्य साहित्य में मिल्टन, गेटे, फास्ट आदि ने एक नई काव्य परम्परा का सूत्रपात किया जो नव्य स्वच्छन्दतावाद कहलाई। यह परम्परा यथार्थ

---

१ खामोशी छाती है
एक लहर आती है
सहसा दो नीरव होठों की सार्थकता
दो कपते होठों तक आने में रह जाती है।
—धर्मवीर भारती, सात गीत वर्ष, पृष्ठ १०२।

शाम हुई
केवल तुम्हारी रूप गन्ध में पगा मन
टूट टूट रह रह अलसाने लगा
मैंने कुछ नहीं किया
धीमे से तुम्हारे माथे पर झुके
रूखे हठीले एक कुन्तल को
होठों से सवार दिया।
—धर्मवीर भारती, सात गीत वर्ष, पृष्ठ १२८।

वाद और स्वच्छन्दतावाद का समन्वित रूप है। स्वच्छन्दतावाद अपनी चरम सीमा के पश्चात् आध्यात्मिकवाद में पर्यवसित होता है।

हिन्दी काव्य में यह प्रवृत्ति 'अज्ञेय' के माध्यम से आई। नव्य स्वच्छन्दतावाद की कविताओं में बौद्धिक तथा अबौद्धिक (भावात्मक) शक्तियों का संयोग घटित हुआ है। 'अज्ञेय' प्रारम्भ में यौन प्रतीकात्मक रचनाओं और विच्छिन्न अनुषंग चित्रों, अति यथार्थवादी चेतना से प्रभावित थे, किन्तु अब उनके काव्य में स्पष्ट नव्य स्वच्छन्दतावादी प्रवृत्तियों का आभास मिलता है।

नव्य स्वच्छन्दतावाद में बौद्धिक तथा भावात्मक शक्तियों का संयोग घटित हुआ।[1] प्रयोगवादी कविता में इसे तीव्रता से अपनाया गया।

नव्य प्रतीकवाद

यूरोपीय साहित्य तथा भारतीय साहित्य में प्रतीकों का प्रचलन प्राचीन काल से चला आ रहा है लेकिन फ्रांस में १८८० के लगभग जो प्रतीकवादी आन्दोलन चला वह भौतिक पदार्थों की पृष्ठभूमि में निहित सूक्ष्म अर्थ छायाओं को अभिव्यक्त करने लगा। मेलार्मे वेलरी वर्लें रिम्बो से प्रभावित होकर नव्य प्रतीकवाद भारत काव्य में आया। मलार्मे इसके रह रह कर आनन्द प्रदान करने की प्रमुख विशेषता बतलाता है।[2] कार्लाइल के मतानुसार प्रतीकों में गोपन और प्रकाशन की शक्ति निहित होती है।

प्रतीकवादियों की मान्यता है कि अनुभूति का प्रत्येक क्षण दूसरे क्षण से सर्वथा भिन्न होता है तथा विशिष्टता लिये होता है। उसकी यथावत् अभिव्यक्ति के लिये आवश्यक है कि कवि ऐसी विशिष्ट भाषा को प्रयुक्त करे जो अभिप्रेत अर्थ को सही मानों में व्यक्त करदे या ऐसे चित्रों का गुम्फन कर दे कि प्रतीति इस अनुभूतियों का आभास दे सके। यह प्रतीकों के माध्यम से ही सम्भव है यही कारण है कि प्रतीकवादी प्रतीक और बिम्बों की झड़ी लगा देता है उसे

---

१ See, 'Dictionary of world literary terms', edited By Joseph T Shipley, Page 354

२ Quoted from Axel's castle, Edmund Wilson P 20

अनुभूतियों को संकेतमयी भाषा में प्रयुक्त करना ही अच्छा लगता है। मेलार्मे ने इस ओर संकेत भी किया है कि अनुभूति की ओर संकेत करने वाली कविता ही श्रेष्ठ हो सकती है। प्रतीकों में –

१ आत्मोन्मुखता में वृद्धि हुई।
२ यथार्थ से पलायन हुआ।
३ अस्पष्टता और दुरूहता का समावेश हुआ।

फ्रेंच प्रतीकवादियों से प्रभावित होकर इलियट पाउण्ड, बादलेयर, डाइलन टामस ऑडेन ने इस नव्य प्रतीक परम्परा को आधुनिक युग की जटिल तथा गहन ग्रंथियों को सुलझाने के लिये विशिष्ट रूप से अपनाया। हिन्दी में नव्य प्रतीकवाद 'अज्ञेय' तथा उनके अनुयायियों के माध्यम से आया। अज्ञेय के यौन प्रतीकों को छोड़ कर कुछ प्रकृति प्रतीक अच्छे बन पड़े हैं –

भोर का बावरा अहेरी
पहले बिछाता है आलोक की
लाल – लाल कनियां
पर जब खींचता है जाल को
बांध लेता है सभी को साथ
छोटी – छोटी चिड़िया
मझोले परेवे
बड़े – बड़े पंखी
डैनों वाले डौल वाले
डौल के बेडौल
उड़ने जहाज।[1]

लेकिन बाद के नये कवियों ने इस प्रतीकों को बौद्धिकता से बोझिल कर दिया है।

---

१ अज्ञेय, 'बावरा अहेरी', बावरा अहेरी पृ० १६।

बिम्बवाद

पाश्चात्य काव्य मे प्रथम विश्वयुद्ध के पश्चात् ह्यूमी द्वारा बिम्बवाद का सूत्रपात हुआ। इजरा पाउण्ड द्वारा इसका विकास हुआ। ह्यूमी, फिलण्ट, रिचार्ड एडिंकटन इजरा पाउण्ड, लावेल आदि प्रमुख बिम्बवादी कवि थे। सन् १९१४ मे इजरा पाउण्ड द्वारा सम्पादित बिम्बवादियो का एक संग्रह (Des imagists) के नाम से प्रकाशित हुआ जिसमे फिलण्ट एलडिंग्टन, एमीलोवेल, हिल्डा डूलिटे, एच० एम० ह्यूफर जेम्स जायस, इजरा पाउण्ड, एलेन अडवड, विलियम कार्लोस विलियम्स की कविताए संग्रहित थी।

ह्यूमी ने अपनी विचारधारा मे तर्क को प्रबल न मान कर आत्मज्ञान पर अधिक बल दिया। फ्रेच लेखको से प्रभावित होकर शब्द सम्प्रदाय (The cult of words) चलाया, जो उसके प्रतिक्रियावादी होने का द्योतक है।

ह्यूमी ने अभिव्यक्ति के क्षेत्र मे स्पष्ट निरीक्षण यथार्थ चित्रण, बिम्बो के शुद्ध विधान पर बल दिया। इसके अलावा दृश्यमान पदार्थों के रूप, ध्वनि, सुगंध, स्पर्श, रस, भावात्मक अनुभूतियो पर विशेष ध्यान दिया। ह्यूमी की धारणा था (जो नितान्त असङ्गत है) कि सभी संवेदनाए यथार्थ एव ठोस दृष्टि या ध्वनि पर निर्भर होती है।[1]

इजरा पाउण्ड ने 'बिम्ब' की परिभाषा देते हुए कहा है — काल के एक क्षण मे उत्पन्न बौद्धिक तथा संवेदनात्मक कुण्ठा को ही बिम्ब कहा जा सकता है।[2] पाउण्ड का दृष्टिकोण नितान्त एकांगी है, वह केवल बिम्बो पर बल देता है, जबकि अन्य प्रकार के विचारो की अवहेलना करता है। इस तरह बिम्ब वादी काव्य केवल तात्कालिक संवेदना का कायमात्र रह जाता है, जिसमें क्षणिक उद्वेलन को ही अधिक प्रमुखता दी गई है। इन बिम्बो के साथ प्रतीक तथा मनोवैज्ञानिक विश्लेषण का समावेश हो गया है।

१ (T E Hulmi, 'The trend of modern poetry, P 81)
२ 'An image is that which presents an intellectual and emotional complex in an instant of time'

बिम्बवाद ने—

(१) स्वच्छन्दतावाद के विरुद्ध शास्त्रीय पद्धति को मान्यता दी।
(२) कम शब्दों का प्रयोग, शैली शिल्प की सज्जा, पर बल दिया।
(३) नई लय के समावेश पर बल दिया।
(४) प्रभाववादी चित्रकला का प्रभाव अंकित किया।

यह पाश्चात्य काव्य में अधिक जीवित नहीं रहा। अन्तिम कविता संग्रह १६३० में प्रकाशित हुआ। अनेक विरोधों के होते हुए भी इसने एक पूरी पीढ़ी को प्रभावित किया। इसके ह्रास के कुछ कारण थे —

(१) यह असामाजिक दृष्टिकोण लिए हुए था।
(२) यथार्थ के प्रति पलायनवादी दृष्टिकोण लिए हुए था।
(३) समाज और जीवन के प्रति निराशाजनक उद्गार व्यक्त करता रहा।

आगे चल कर बिम्बवाद ने दूसरा रूप ग्रहण कर लिया। १६५३ में एफ० एस० फ्लिंट तथा इजरा पाउण्ड ने 'अमेरिकन पोयट्री' नामक पत्रिका में नयी कविता के सम्बन्ध में कुछ विवेचन किया, जो इस प्रकार के विचार को और भी स्पष्ट करता है।[१]

हिन्दी की नयी कविता में बिम्बवाद को पूर्ण रूप से अपनाया गया। शमशेरबहादुर सिंह, गिरिजाकुमार माथुर, तथा 'अज्ञेय' ने बिम्बों का सफल प्रयोग किया —

> एक पुराना तालाब।
> और एक उछलते मेढक की आवाज
> पानी के भीतर।[२]

---

१ (T Issacs', The back-ground of modern english *poetry*, page 34)

२ शमशेरबहादुर सिंह, कुछ कविताएं।

अधेरा धुप
ताल का तट धुप।
एक बकड टुप।
दूसरा टुप।।
तीसरा टुप।।।[१]

यह प्रतीकात्मकता वही तक कायम रहती है जहां तक कि कविताए दीर्घ हैं। संक्षिप्त रचनाओ मे प्रतीकात्मकता लुप्त हो जाती हैं। इजरा पाउण्ड की इसी प्रकार की एक कविता है —

घाटो की,
लिली की पीत,
आर्द्र पत्तियो जैसी शीतल वह,
मेरे पास आकर नीचे लेट गई।[२]

बिम्बवाद ने प्रवाहहीन मुक्त छन्द को बहुलता से प्रयुक्त किया। हिन्दी की नयी कविता मे भी इसे अपनाया गया। लेकिन कवियो ने इसे अपने विश्रृंखलित तथा अपरिपक्व विचारो की अभिव्यक्ति हेतु प्रयोग किया जिससे अस्थायी सवेदनाओ तथा बौद्धिकता को स्थान मिला। भाव, गौण हो गये। बिम्बवादियो की कविता गद्य से मिलती जुलती है केवल स्वराघात और ध्वनि के झुकाव का अन्तर देखा जा सकता है।

व्यग्य प्रयोग

प्रथम विश्वयुद्धोत्तरकाल मे अंग्रेजी साहित्य में एक नई प्रवृत्ति ने जन्म लिया। काव्य मे व्यगोक्तियो को प्रधानता मिली। इन्ही व्यगोक्तियो के माध्यम से नये कवियो ने सभ्यता, सस्कृति, सामाजिक व्यवस्था पर तीव्र व्यग्य किये।

---

१ जगदीश गुप्त, कविताए ५८ मे सकलित 'थाह' कविता, पृ० १६।
२ As cool as the pale wet leaves of lily of the valley
She lay besides me in the down'

'अज्ञेय', भारतभूषण अग्रवाल, भवानीप्रसाद मिश्र के ¯पद्यो में प्रखर प्रतिभा, घाव करती हुई पैनी धार दिखलाई पड़ता है –

> साप ।
> तुम सभ्य तो हुए नही
> नगरो मे बसना
> भी तुम्हे नही आया ।
> एक बात पूछू – (उत्तर दोगे ?)
> तब कैसे सीखा डसना–
> विष कहा पाया ?[१]

> जी, पहने कुछ दिन शर्म लगी मुझको,
> पर बाद-बाद म अक्ल जगी मुझको,
> जी, लोगो ने तो बेच दिये ईमान,
> मैं सोच समझकर आखिर
> अपने गीत बेचता हूँ,
> जी हा हुजूर मैं गीत बेचता हूँ,
> मैं तरह-तरह के गीत बेचता हूँ,
> मैं किसम-किसम के गीत बेचता हूँ ।[२]

अन्य पाश्चात्य कवि और नई कविता

प्रथम विश्वयुद्ध के पश्चात् डी० एच० लारेंस टी० एस० इलियट, ई० ई० कमिंग्स का प्रयोगवाद पर व्यापक प्रभाव पड़ा है । डी० एच० लारेंस के यौन प्रतीको, मानवीय कुण्ठाओ, वीभत्स मुद्राओ का नया कविता में पूर्ण रूप से ग्रहण किया गया है । कमिंग्ज ने अपने काव्य मे –

१ शिल्प और बाह्य सज्जा पर बल दिया ।

१ अज्ञेय', इन्द्रधनु रौंदे हुए ये सांप, पृ० २६ ।

२ भवानीप्रसाद मिश्र गीत फरोश', गीत फरोश, पृ० १८० ।

२ शिल्पगत प्रयोग अति यथार्थवादी सीमाओं तक पहुँचा दिया जो चमत्कार भर उत्पन्न करते हैं।

ई० ई० कमिंग्ज का प्रभाव प्रयोगवादियों में भारतभूषण, शमशेर पर नकेनवादियों में नरेश पर स्पष्ट परिलक्षित होता है।

Little man
(In a hurry
full of an
important worry)
halt stop forget relax
wait
(little child
who have tried
who have failed
who have cried
lie bravely down
sleep
Big rain
Big snow
Big sun
Big moon [1]

जिसका प्रभाव हिन्दी मे इस प्रकार है —

जो कुछ है
जो कुछ है
खो !

---

१ Cummings, Collected poems, enterus Poem No 254

खो।
खा।
ओ शीरी। ओ लैला। ओ हीर।
– जा।
– जा।
– जा। – सो।
बेखबर आधी सी रात
बेखबर सपने हैं।
बाखबर है एक बस, उसकी जात।
तू मेरी।
आमीन।
आमीन।।
आमीन।।।

इलियट

नयी कविता पर सबसे अधिक प्रभाव इलियट का पड़ा है। ऊसर भूमि से प्रभावित आधुनिक अंग्रेजी कवि तथा हिन्दी कवि इलियट परिधि में ही चक्कर काटते रहे हैं। अंग्रेजी काव्य के कई दशक, इलियट की काव्यधारा से परोक्ष रूप में या प्रत्यक्ष रूप में प्रभावित रहे हैं। यूरोपीय सांस्कृतिक ह्रास के चित्रण, अनास्था एवं कुण्ठा के चित्रण इलियट से प्रभावित हैं। सम्भवतया स्रष्टा और द्रष्टा के रूप में इलियट ही ऐसा विद्वान है जिससे पिछले दशक का काव्य अप्रतिम रूप से प्रभावित हुआ है।

इलियट की उपलब्धियाँ और काव्य को देन

(१) काव्य की दृष्टि में इलियट व्यक्तित्व को काव्य से असम्पृक्त मानता है। उसका कथन है कि व्यक्तिगत भाव और काव्यगत भाव सर्वथा भिन्न हैं, इसीलिए काव्य को व्यक्तित्व से पलायन

२ शमशेरबहादुर सिंह, काव्यधारा, पृ० ११३।

(७) इलियट की तरह नया कवि भी स्वप्न सिद्धा त तथा 'फ्री एसोसिएशन' पर पूर्ण विश्वास करता है।

(८) इलियट ने नई उपमाए प्रदान की। वह अपने जीवन को काफी के चम्मचो से नाप चुका है।[१] अब नये कवि उसे नाप रह हैं।

(९) इलियट ने प्रहेलिका शैली को व्यवहृत किया।[२] 'अज्ञेय' ने उसे ग्रहण किया।

(१०) इलियट असम्पृक्त तात्कालिक क्षण म भूत और भविष्य का साम ञ्जस्य करता है। उसका विश्वास है कि किसी का 'अन्त', उसकी मृत्यु है।[३] इलियट को जहा क्षण का विशेष महत्व है। नया कवि भी उसे छोड नही सकता।

'अज्ञेय' ने अपने भावो की प्रतिच्छाया इलियट म देखी। परिणाम स्वरूप आज नयी कविता मे इलियटवाद की प्रचुरता है। डा० देवराज का कथन है कि हिन्दी का प्रयोगवाद बहुत हद तक इलियट, पाउण्ड आदि की शैली की नकल है।[४]

स्पष्ट हो जाता है कि पिछले दशक की अधिकाश कविता तथा नयी कविता प्रारम्भ स ही पाश्चात्य का य की ऋणी है। वादो का उद्भूत स्थल भी पाश्चात्य जगत रहा है। यूरोप मे ये वाद उठत गिरत हैं परन्तु हि दी मे इनका प्रभाव कभी भी विशेष चिन्तन बन कर नही पड सका है। सब ये विचार पहल का य पर मडराए है और फिर धीरे से अनजाने ही इन्होने अपने साहित्य म ऐसे स्थल ढू ढ निकाले हैं जिनक आधार लेकर ये पनप सके हैं।

१ 'I have measured out my life with coffee spoons'
२ D E S Maxwell 'Poetry of T S Eliot, p 78
३ T S Eliot, 'Four Quartets, The dry salvages, p 31
४ डा० देवराज नयी कविता (अक १) स० जगदीश गुप्त।

७ | प्रयोगवाद से नई कविता तक

सम्प्रदाय का सूत्रपात

प्रयोगवाद का आविर्भाव १९४३ में 'अज्ञेय' द्वारा सम्पादित 'तार सप्तक' के प्रकाशन से हुआ। इससे पूर्व 'प्रतीक' में तथा अन्य प्रकाशित 'अज्ञेय' की रचनाओं में विषयों और अभिव्यक्ति का एक भिन्न रूप मिलता है। दूसरा सप्तक के प्रकाशन के साथ ही प्रयोगवाद नाम आलोचना में व्यवहृत होने लगा। प्रयोगवाद ने, अपनी रूपरेखा पहले ही निर्धारित कर दी थी। 'तार सप्तक' की भूमिका के रूप में 'अज्ञेय' ने इस कविता की तकनीकी शैली के बारे में कहा है — 'प्रयोग सभी कालों में कवियों ने किये हैं। यद्यपि किसी एक काल में किसी विशेष दिशा में प्रयोग करने की प्रवृत्ति स्वाभाविक ही है किन्तु कवि क्रमशः अनुभव करता आया है कि जिन क्षेत्रों में प्रयोग हुए हैं उनसे आगे बढ़कर अब उन क्षेत्रों का अन्वेषण करना चाहिए जिन्हें अभी छुआ नहीं गया है, या अभेद्य मान लिया गया है।'[1] प्रयोगवादी कवि ही आगे चलकर इसके समीक्षक बने। आज यह स्थिति है कि रचना प्रकाशित होती है और प्रयोगवादी आलोचक उसके बारे में वक्तव्य देने लगता है।

प्रगतिवाद और प्रयोगवाद दोनों आन्दोलनों का अभ्युदय छायावाद की प्रतिक्रिया में हुआ। श्री शिवदानसिंह चौहान का कथन है — 'प्रयोगवादी कविता कोई नया उत्थान नहीं है, बल्कि छायावादी कविता के ह्रास का ही विकृत रूप है और हिंदी की विशाल काव्य धारा में प्रयोगवादियों की देन अभी बूंद के समान है।'[2] शिवदान सिंह चौहान के कथन

---

१ 'अज्ञेय', 'तार सप्तक', पृ० ७९।

२ शिवदानसिंह चौहान, काव्यधारा, 'हिन्दी कविता का विकास' पृ० ५।

का पूर्वार्द्ध विवादास्पद है, जबकि उत्तरार्द्ध सत्य के अंश का समाविष्ट किये है। प्रयोगवादी कविता, छायावादी कविता की प्रतिक्रिया मे उत्पन्न हुई है न कि उसका विकृत रूप है। नई कविता के समर्थकों ने छायावादी काव्यधारा को मृत, निर्जीव समझने मे प्रयोगवादी कविता का गौरव समझा है। एक कवि आलोचक का कथन है — 'यह दूसरी बात है कि पुरानी कविता शनैः शनैः सामान बांध कर जाने की तैयारी में लगी हुई है और घर जमा रही है।'[१] दूसरे स्थान पर इसी कवि आलोचक का कथन है—(इस समय भी जहा एक ओर नई कविता की प्रभात किरणे क्षितिज को आलोकित करने लगी हैं वहा आकाश और पृथ्वी पर गत निशा की नक्षत्रावलिया अब भी टिमटिमाती – मुस्कराती दीख पडती है सक्रान्ति के समय किसी एक का आधिपत्य नहीं होता और यह समय सक्रान्ति का ही है।)[२] यहा सक्रान्ति शब्द भ्रामक है। जहा सक्रान्ति मे (सायकालीन) आगत के आविर्भाव और तिरोहित के पलायन की सूचना मिलती है वहा प्रयोगवादी या नई कविता अरुणोदय कालीन दिव्यता से युक्त न होकर दीर्घ यामिनी सदृश है। डा० नगेन्द्र का भी कथन है कि प्रयोगवादी कविता का जन्म छायावाद के विरुद्ध प्रतिक्रिया के रूप मे हुआ है।[३]

नई कविता का व्याख्याता प्रयोगवाद पर कलम उठाने से पूर्व छायावाद का अवश्य विरोध करता है। सुमित्रानन्दन पत का कथन है — नई कविता ने मानव भावना को छायावादी सौन्दर्य के धडकते हुए पलने से बलपूर्वक उठाकर उसे जीवन समुद्र की उत्ताल लहरो मे पेग भरने को छोड दिया है, जहा वह साहस के साथ सुख-दुख, आशा-निराशा के घात प्रतिघातो मे बढती हुई युग जीवन के आधी-तूफानो का सामना कर सके अन्तर्वेदना से मुक्त होकर सामाजिक व्यथा के अनुभवो से परिपक्व बन सके, नई कविता विश्ववर्चस्व से प्रेरणा ग्रहण कर के तथा आज के प्रत्येक पल बदलते हुए युगपट को अपने मुक्त छन्दो मे सकेत की तीव्र-

---

१ बालकृष्ण राव, कल्पना जनवरी १९५६, नई कविता' पृ० ३।

२ वही पृ० ३।

३ भारत भूषण अग्रवाल, डा० नगेन्द्र के श्रेष्ठ निबन्ध पृ० १०३

मन्द गति–लय म अभिव्यक्त कर युग मानव के लिए नयी भाव–भूमि प्रस्तुत कर रही है।[१]

सुमित्रानन्दन पन्त ने छायावादी कविता और नई कविता के भेद को स्पष्ट कर दिया है। साथ ही बताया कि छायावाद स्वप्न और कल्पना की वस्तु थी जबकि नई कविता यथार्थ के धरातल को छूती है। नई कविता का महान निर्माण लक्ष्य भी है। जो युग मानव के लिए नई भावभूमि प्रदान करता है।

इस प्रकार छायावाद के विरोध मे यह आन्दोलन तीव्रता से उठा। प्रयोगवाद के पोषक एक आलोचक हैं डा० देवराज उनका कथन है — (प्रयोगवाद)– काफी सगठित है, उन्हे प्रतीक जैसा पत्र प्राप्त है।[२] आलोचक की यह बन्दर घुडकी मात्र नही थी। आज यह बात स्पष्टतया देखी जा सकती है कि उसने सम्पूर्ण पत्र पत्रिकाओं को आच्छादित कर रखा है।

नामकरण की समस्या

'तार सप्तक' का रचनाओ को 'प्रयोगवाद' के नाम से अभिहित किया गया क्योंकि सम्पादक 'अज्ञेय' द्वारा बार–बार प्रयोग शब्द का प्रयुक्त किया गया था। इस सम्प्रदाय के कवियो को नवीन प्रयोग करने की लालसा बहुत दिनों से थी। अज्ञेय ने तार सप्तक मे लिखा है — 'कवियो के चुनाव मे दूसरा मूल सिद्धान्त यह था कि सग्रहित कवि सभी ऐसे होगे, जो कविता को प्रयोग का विषय मानते है – जो यह दावा नही करते कि काव्य का सत्य उन्होने पा लिया है, केवल अन्वेषी ही अपने को मानते हैं।[३]

प्रयोग का मूल भी पाश्चात्य काव्य से आया है। इलियट ने 'प्रयोग' पर लिखते हुए कहा है — प्रयोग शब्द को उन कवियो की कृति के लिये प्रयुक्त किया जा सकता है जो प्रौढावस्था म परिणत होते और विकास

---

१ सुमित्रानन्दन पन्त, गगाधर झा (आलोचना) के निबन्ध, नई कविता प्रवादों की परीक्षा से उदधृत, पृ० ११।

२ डा० देवराज, साहित्य चिन्ता 'प्रयोगशील साहित्य' निबन्ध से उदधृत।

३ अज्ञेय तार सप्तक' भूमिका पृ० ५।

प्राप्त करते है। मनुष्य ज्यो-ज्यो प्रौढ होता जाता है वह नई विषय वस्तु की ओर मुडता या पुरानो विषयवस्तु को ही नये शिल्प माध्यम से उपस्थित करता है क्योकि हमारे आदिम ' स्व ' और युगीन ' स्व ' दोना विश्व म रहने लगते है अथवा उसी विश्व म भिन्न व्यक्ति होते हैं। ये परिवर्तन लयात्मक या बिम्बगत या रूपगत किसी भी तरह के परिवर्तन के मार्ग स उपस्थित हो सकते है। सच्चा प्रयोक्ता अस्थिर कुतूहल अथवा नव्य स्थापन की इच्छा या आश्चर्य म डालने की प्रवृत्ति मात्र से चालित नही होता, बल्कि वह एक कवि के रूप मे प्रत्येक नई कविता मे अपनी पूव कविताओ की तरह ही उन सवेदनाओ के लिए, जिसके विकास पर उसका कोई नियन्त्रण नही है उचित माध्यम की तलाश की अनिवार्यता से बाध्य होता है। १

---

१ The word ' experimentation ' may be applied, and honourably applied, to the work of many poets who develope and change in maturity As a man grows older he may turn to new subject matter, or he may treat the same material in a different way, as we both live in a different world and become different men in the same world The changes may be expressed by a change of rhythm of imagery, of form, the true experimentor is not impelled by restless curiosity or by desire for novalty, or the wish to surprise and astonish, but the compulsion to find in every peom as in his earliest, the right form for feelings over the development of which he has a poet, no control '

(T S Eliot Selected prose', experimentation, p 88)

इलियट के लयात्मक बिम्बगत या स्पन्दन परिवर्तन, नई वस्तु की ओर मुड़ना, या पुरानी विषय वस्तु को नये शिल्प माध्यम से प्रस्तुत करने को नया कविता में ज्यों की त्यों अपनाया गया है। आज कवि प्रयोग को अपना अभीष्ट मानता है, वह उसका कवि कर्म मानता है, क्योंकि आज की नित्य परिवर्तनशील यथार्थ की अभिव्यक्ति के लिये काव्य के रूप शिल्प में भी सतत परिवर्तन या प्रयोग करने की आवश्यकता है। *लेकिन आत्माभिव्यक्ति ही पुनरावृत्ति नहीं* होती है। आत्म सचेतना, कवि को अग्रसर करती रहती है,—

मैं राह के मध्य पहुँच गया हूँ
लगता है राह के बीस वर्ष व्यर्थ ही गुजर गये।
इसी बीच शब्दों के प्रयोग का अभ्यास करता रहा हूँ।
मेरा प्रत्येक प्रयास अभिनवता लिये रहता है
जिसकी परिणति भिन्न प्रकार की होती है।
इसका कारण यह है कि हम
शब्दों में अधिकाधिक अर्थ भरने का प्रयास करते हैं।
हम यह अवलोकन करना गवारा नहीं करते
कि वह बात पहले भी कही जा चुकी है,
या अभिव्यंजना पद्धति जो हम अपना रहे हैं
पहले भी व्यवहृत होती रही है।
इसी कारण मेरा प्रत्येक प्रयास, नवीन प्रारम्भ-अव्यक्त
की अभिव्यक्ति हितार्थ नव अभियान हो रहा है
मेरे अभियान के साधन भी अपरिमार्जित रहे
जिससे उनकी परिणति सदैव ही
अमक्षिप्त भावों और अनुशासित संवेदनाओं के रूप में होती रही है
मैंने देखा कि
जिस लक्ष्य की ओर मैं प्रवृत्त हूँ
उस पर अन्य भी कई बार पहुँच चुके हैं
किन्तु मुझे इससे प्रतिस्पर्धा नहीं।
हमारा अभियान उस वस्तु को पुनः प्राप्ति के लिये है
जो अनेकानेक बार खोई,

पाई,
पाकर खोई जाचुकी है। १

यूरोप मे 'प्रयोग' का अर्थ व्यापक और सकुचित दोनो अर्थ में लिया गया है। व्यापक अर्थ मे विचार, अनुभूति भाव की अभिनवता सघनता, गहनता तथा रूप–शिल्प की परम्परागत पद्धति का 'प्रयोग' कहा जाता है।

सकुचित अर्थ मे 'प्रयोग' का अर्थ केवल रूप–शिल्प मे निरुद्देश्य और अनावश्यक अभिनवता प्रयुक्त करने वाले प्रयासो के लिए प्रयुक्त होता है। इसका उदाहरण देते हुए अग्रेजो के प्रसिद्ध उपन्यासकार फिलिप टायनबी ने लिखा है — यूरोप के बहुत से स्थानो पर ऐसी पुस्तके जिनके वाक्य

---

१ "So here I am in the middle way having had twenty years largely wasted

Trying to learn to use words, and every attempt is a wholly new start, and a different kind of failure Because one has only learnt to get the better words for the thing one no longer has to say=, or the way in which one is no longer disposed to say it And so each ventu e is as new beginning, a raid on the inarticulate with shabby equipment always deteriorating In the general mess of impresision of feeling undisciplined squads of emotion And what there is to conquere by strength and submission, has already been discovered once or twice or several times be men whom one cannot hop to emulate–but there is not competition–There is only to fight to recover what has been lost and found and lost again and again

सीधे नही, बल्कि उपर से नीचे की ओर छप हा या जिनको विभिन्न रगो मे छपाई हुई हो, साहसपूर्ण तथा मनोरजक प्रयोग के रूप म स्वीकृत की जाती हैं, चाह उनका वस्तु तत्व बहुप्रयुक्त आर अनुकृत ही क्यो न हो।[१]

टायनबी द्वारा सकेतिक ' प्रयोग ' यथाथ मे ' प्रयोग ' नही है, क्योकि ये ' प्रयोग ' निरुद्देश्य होते है। इन्हें ' विकृत प्रयोग ' या ' प्रयाग के प्रयोग ' ही कहा जा सकता है।

डा० एच० वी० रथ ने भी प्रयोगा पर बल दिया है तथा बीसवी शताब्दी के द्वितीय दशक मे होन वाले परिवतना को ध्यान मे रखत हुए का य क मूल म निहित आश्चर्य तत्व का अनिवाय बताया है। उसके अनुसार — ' कला को सदैव अभिनव रूप प्रदान करते रहना चाहिए। उसका सृजनात्मक प्रभाव आश्चय तत्व पर निर्भर हाता ह। कलात्मक अभिव्यजना की परम्परा की सद्य ता और अभिनवता एक बार समाप्त हो जाती है तो पाठक या सहृदय उससे विमुख होकर दैनिक कार्यों म लग जाता है। कला और साहित्य में अभिनव दृष्टि अवेपित करता है लेकिन ऐसी प्राचीन अभिव्यजनाओ म उसे केवल स्थूल रूप के ही दर्शन होते है। इसलिए किसी महान पुस्तक मं अभिनवता द्वारा आश्चर्य से चकित कर देने की शक्ति होनी चाहिए ताकि पाठक के हृदय म कौतूहल की वृद्धि होती जाय और उसे यह विश्वास हो जाय कि अनुभूतिया व्यापक और गम्भीर छवियो के निर्माण तथा कारयित्री प्रतिभा की क्रीडा की सामग्री मात्र है।[२]

---

१ "A bool which is printed upside down or in a particular print can still be aclaimed in some part of Europe as a bold and interesting experiment even if its matter is the most backneyed imitation."
(Philip Toynbee, London Magazine Experiment and the future of the novel, May 1956)

२ ' Art must always be renewed It s creative influ &

'प्रयोग' मे अभिव्यजना पद्धति को प्रमुख स्थान प्राप्त होता है। लेकिन अभिव्यजना पद्धति सम्बन्धी प्रयोग तभी सफल प्रयोग माने जायेंगे जबकि कथ्य या अनुभूति सत्य में नई पद्धति अपनाई गई हो। इसमे सस्ती लोकप्रियता, यश, धन, सम्मान या सस्ती लोक रुचि को ग्रहण करना तथा पूर्व परम्परा का अनादर करके नाम कमाना अवाछनीय माना जायगा, भले ही वह अभिव्यजना पद्धति प्रयोगशील हो अथवा रूढिबद्ध हो।

फिलिप टायनबी ने अपने 'प्रयोग और उपन्यास का भविष्य' शीर्षक निबन्ध मे लिखा है — सत्य यह है कि उपन्यास के क्षेत्र में अब तक किए गए पद्धति-सम्बन्धी प्रयोगो का विश्लेषण करना व्यर्थ होगा यदि हम उनके माध्यम से उनके मूल में निहित उन तत्वो पर विचार नही करते, जो उन पद्धति सम्बन्धी प्रयोगो में कई गुना अधिक महत्व के होते हैं। यह तो सर्व विदित है कि अभिव्यजना पद्धति और उसके पीछे काम करने वाले तत्व अविच्छेद हैं, किन्तु यदि हम आलोचक हैं तो इस अविच्छेदता की जानकारी के बावजूद हमे दोनो में अन्तर अवश्य करना चाहिए। मेरे विचार से वह अन्तर यह है कि किसी गम्भीर लेखक के दिमाग में यह बात स्पष्ट होनी चाहिए कि कोई कार्य कैसे किया जाए, यह प्रश्न

❀ ence depends on surprise When once the freshness of the presentment has faded, the reader relapses into his daily habits He looks for a vision and sees only phenomena So a great book must always come with a shock of novelty convincing the enquirer that he is only at the beginning of things, and that experiences are only materials to play with and reconstruct into a deeper or wider perception"

(Dr H V Routh–English literature and ideas in the Twentieth century page 2)

उतने ही महत्व का नहीं है कि क्या किया जाय और क्यों किया जाय ?[1]

प्रयोग क्या किये जाते हैं इस पर भी पाश्चात्य विचारकों द्वारा विचार हुआ है। अंग्रेजी के प्रसिद्ध आलोचक जान लिविंगस्टन लावस के अनुसार — जब काव्य रूढ़ियां निर्जीव हो जाती है तो उस समय कवियों के सामने तीन रास्ते होते हैं —

१ या तो वे उन रूढ़ियों को अपनाकर ग्रामोफोन की तरह उन्हें दुहराते जाते हैं।

२ या अपनी रचनात्मक प्रतिभा द्वारा उस मृत और खोखले रूपाकार में नई शक्ति और नया जीवन भर कर उसका स्वरूप ही परिवर्तित कर देते हैं।

३ अथवा वे विद्रोह करके 'पुराने सिक्कों' को बिल्कुल अस्वीकार कर देते हैं और ' नये सिक्का ' का निर्माण स्वयं करने लगते हैं। किन्तु कला के क्षेत्र में क्रिया प्रतिक्रिया का चक्र चलता रहता है। रूढ़ियां

---

१ ' For the truth is that an examination even of past method is of no general interest unless it is used as a means of discussing and infinitely more important elements which lie behind method We know all about the inseperability of method from those other elements which lie behind it, but if we are critics we had better beware of knowing too much about it It is our job to make these distinctions even if we try to obliterate them afterwards, and simple distinction which I would make is that the how to do some thing must be subordinate in the serious writers mind to the 'what to do and the 'why to do'

—'London Magazine, May 1956

के विरुद्ध विद्रोह करके जो नई पद्धतियाँ निर्मित होती हैं व स्वयं कालान्तर में रूढ़ि बन कर नई पद्धतियों के मार्ग में बाधा देने वाली हो जाती हैं, पहले की स्वतन्त्रता अब संकीर्णता का रूप धारण कर लेती है और नये विरोधी उस परम्परा को अत्याचार कहने लगते हैं।[१]

वस्तुतः कविता में किसी विशेष युग की विशेष परिस्थितियों में कवि कुछ ऐसे सत्यों की उपलब्धि करता है जिनको पूर्ववर्ती कवि अपनी युग सीमाओं के कारण नहीं कर सके थे। पूर्ववर्ती कवि के छन्द अलंकार, अप्रस्तुत योजना, बिम्ब प्रतीक, परवर्ती कवि के लिए अग्राह्य तथा अपूर्ण प्रतीत होने हैं क्योंकि इनके माध्यम से नये युग के बदली हुई परिस्थितियों में सत्यों की अभिव्यंजना नहीं की जा सकती है। युग परिवर्तन के साथ ही कवि की अनुभूतियाँ, सौन्दर्य बोधात्मक संवेदनाएं, नैतिक मूल्य, जीवन मूल्य भी परिवर्तित हो जाते हैं। ऐसे समय कवि को युग सापेक्ष्य को ध्यान में रखते हुए, युगानुरूप चेतना के साथ नये जीवन मूल्यों का इस प्रकार समन्वित करना पड़ता है कि वह दूसरों के लिये सम्प्रेषित हो सके।

नई कविता में प्रयोग के साथ प्रयोगशीलता भी उसी प्रकार लग गई है जिस प्रकार प्रगतिवाद के प्रगतिशीलता। 'प्रयोग को संकुचित अर्थ में प्रयुक्त किया

---

१ ' Poets may set the conventions going with the detachment of a photograph, and evan absent them selves, to all intents and purposes entirely, or they may exercise creative energy, as we have seen upon dead forms en pty shells and bring about a metamo rphosis or, finally, they may rise up in revolt, repudiate the old coinage altogether, and more or less definitely set themselves to minting new '

—John Livingston Lowes 'Convention and revolt in Poetry Page 92'.

जाता है और प्रगतिशील को "यापक अर्थ में' जैसे प्रगतिवाद और प्रगतिशील मे अंतर था। 'अज्ञेय' ने प्रयोगवाद नाम का विरोध किया है और प्रगतिशील शब्द को कई बार व्यवहृत किया गया है। सम्भवतया 'अज्ञेय' यह चाहते हों कि आलोचक यह न खोज निकाले कि प्रयोगवाद पाश्चात्यों की देन है। लेकिन जब खोज निकाला गया तो लगे प्रयोगवाद नाम का विरोध करने।

'अज्ञेय' के कथन भ्रमपूर्ण हैं। उसने प्रयोग का अर्थ प्रयोग के लिये प्रयोग से लगाया। जिसका संकेत पहले हो दिया जा चुका है कि यूरोप में प्रयोग के लिये यही संकुचित अर्थ प्रयुक्त होता था। इस बात में 'अज्ञेय' के कथनों की परीक्षा की जाय तो अंतर्विरोध स्पष्ट दिखलाई पड़ता है। उनका कथन है—कवि क्रमश: यह अनुभव करता आया है कि जिन क्षेत्रों में प्रयोग हुए हैं, उनमें आगे बढ़ कर अब उन क्षेत्रों में अन्वेषण करना चाहिये, जिनमें अभी नहीं हुआ है जिनको अभेद्य मान लिया गया है। फलतः भाषा को अपर्याप्त पाकर विराम संकेतों में अंकों और सीधी तिरछी लकीरों में, छोटे बड़े टाइप में, सीधे या उल्टे अक्षरों से लोगों या स्थानों के नामों में अधूरे वाक्यों से सभी प्रकार के इतर साधनों से कवि यह उपयोग करने लगा कि अपनी उलझी संवेदना की सृष्टि को पाठकों तक अक्षुण्ण पहुँचा सके।'[१]

उपरोक्त कथन में स्पष्ट होता है –

(१) हिन्दी काव्य में नई 'प्रयोगशीलता' लाने वाले 'अज्ञेय' ही हैं।

(२) अभेद्य क्षेत्र में वैज्ञानिक और शोधकर्ता जाते हैं न कि कवि।

(३) उलझी हुई संवेदना वाली बात तो और भी भ्रामक है जिसको आगे चलकर व्यक्त किया जायगा।

(४) 'अज्ञेय' ने अभिव्यंजना पद्धति पर ही बल दिया है। 'अज्ञेय' के भाषा सम्बन्धी प्रयोग जेम्स ज्वॉयस ने पूर्व ही पर्याप्त मात्रा में किए

---

१ अज्ञेय, 'तार सप्तक' भूमिका।

है। यहा पर 'अज्ञेय' प्रयोगा के प्राए अनुभूत सत्य की उपेक्षा कर गये हैं। 'तार सप्तक' के दूसरे वक्तव्य द्वारा यह और भी स्पष्ट हो जाता है 'जो व्यक्ति का अनुभूत है, उसे समष्टि तक कैसे उसकी सम्पूर्णता म पहुँचाया जाय यह पहली समस्या है, जो प्रयोगशीलता को ललकारती है। इसके बाद इतर समस्याए है – कि वह अनुभूत ही कितना बड़ा या छोटा, घटिया या बढ़िया, सामाजिक या असामाजिक ऊर्ध्व या अध या अन्त या बहिर्मुखी है इत्यादि।'[1]

यहा पर अभिव्यजना सम्बन्धी प्रयाग कवि की प्रथम समस्या है फिर अनुभूत सत्य का कैसे अपेक्षा की जा सकती है। जबकि कवि के समग्र मूल समस्या युग सापेक्ष्य सत्य की उपलब्धि की होती है। सत्य कभी घटिया छोटा, अधो मुख, असामाजिक नहीं होता।

'दूसरे सप्तक' की भूमिका मे अज्ञेय ने अपना दृष्टिकोण बदल दिया है— तो प्रयोग अपने म इष्ट नही है वह साधन है और दोहरा साधन है। क्योंकि एक तो वह उस सत्य को जानने का साधन है, जिसे कवि प्रेषित करता है, दूसरे वह उसे प्रषण की क्रिया की और उसके साधनों को जानने का भी साधन है। अर्थात् प्रयोग द्वारा कवि अपने सत्य को अच्छी तरह जान सकता है और अधिक अच्छी तरह व्यक्त कर सकता है। वस्तु और शिल्प दोनो के क्षेत्र म प्रयोग फलप्रद होता है।[2]

(१) यहा पर शिल्प के प्रयाग पर ही नही, वस्तु प्रयोग पर भी बल दिया गया है। अज्ञेय का आग्रह वस्तु म निहित अनुभूत सत्य पर उतना नही है जितना वस्तु के प्रयोग पर।

(२) प्रयोग द्वारा सत्य को दूसरो के लिये सम्प्रेषित किया जा सकता है, लेकिन उस समय कवि अपने सत्य स अनभिज्ञ रहता है।

---

१ अज्ञेय, 'तार सप्तक' भूमिका।

२ अज्ञेय, दूसरा सप्तक, भूमिका।

(३) अपने सत्य से अनभिज्ञ कवि से प्रयोग के अस्तित्व की अपेक्षा नहीं की जा सकती।

लेकिन बाद में इसी भूमिका में अनुभूत सत्य की महत्ता पर बल दिया है—'केवल प्रयोगशीलता ही किसी रचना का काव्य नहीं बना देती। हमारे प्रयोग का पाठक या सहृदय के लिये कोई महत्त्व नहीं है, महत्त्व उस सत्य का है जो प्रयोग द्वारा हम प्राप्त हों। प्रयोगों का महत्त्व कर्ता के लिये चाहे जितना हो, सत्य की खोज, लगन चाहे उसमें कितनी ही उत्कट हो, सहृदय के निकट वह सब अप्रासंगिक है। पारखी मोती परखता है, गोताखोर का असफल उद्योग नहीं।—इस प्रकार प्रयोग का वादे और भी बेमानी हो जाता है। जो सत्य की शोध में प्रयोग करता है वह खूब जानता है कि उसके प्रयोग उसके निकट जीवन मरण का ही प्रश्न क्यों न हो, दूसरों के लिए उसका कोई महत्त्व नहीं। महत्त्व होगा शोध के परिणाम का।'[1]

अज्ञेय ने Contemporary Indian literature में प्रयोगवाद नाम की व्याख्या करते हुए कहा है 'नव्य, आधुनिक व्यक्तित्व के अन्वेषक, मानववादी आन्दोलन को प्रयोगवाद नाम दिया गया है, जो विशिष्ट महत्त्व नहीं रखता है। लेकिन यह ह्रासोन्मुख सन्दर्भ में प्रयुक्त किया गया था जैसा कि छायावाद अपने प्रारम्भिक दिनों में प्रयुक्त हुआ था।'[2]

---

१ अज्ञेय दूसरा सप्तक, भूमिका।

2 'The new modern humanist movement of the search for personality was given the name of prayogavada or experimentalism the name had no special aptness or significance and was applied in a rather derogatory sense, just as the name chhayavada was in its early days'

—Contemporary Indian literature, Hindi literature, Page 95

आगे चलकर 'अज्ञेय' ने प्रयोगवाद नाम का कड़े शब्दों में विरोध किया है— 'यदि नैतिक दृष्टि से नैतिकता से सम्बन्धित, नए मूल्यों की प्यास, मूलभूत संवेदनाओं का गवेषणात्मक परीक्षण, मूल्यों के स्रोतों की खोज को प्रयोग कहा जा सकता है तो नया आंदोलन भी इस नाम के लिए उपयुक्त है। सामान्य रूप से इस सम्प्रदाय के कवि अपनी सर्जना को नई कविता कहलाना पसन्द करते हैं।'[१]

इस प्रकार 'अज्ञेय' ने दूसरा नाम 'नयी कविता' सुझा दिया। आगे चलकर यही प्रयोगवाद नयी कविता में परिणत हो गया।

हिन्दी के गणमान्य आलोचकों ने भी प्रयोगवाद नाम को व्यवहृत किया है। नन्ददुलारे वाजपेयी का कथन है— पिछले कुछ समय से हिन्दी काव्य क्षेत्र में कुछ ऐसी रचनाएं हो रही हैं, जिन्हें किसी सुलभ शब्द के अभाव में प्रयोगवादी रचना कहा जा सकता है।[२]

दूसरे स्थान पर नन्ददुलारे वाजपेयी ने कहा है— 'इन रचनाओं को यह नाम स्वयं इनके रचयिताओं ने दिया है, अतएव इनके लिए किसी दूसरे नाम की खोज करना हमारे लिए अनिवार्य नहीं है।'[३] प्रयोगवादी शैली कभी भी सम्मान सूचक नहीं रही है। प्रयोग शब्द से प्रायः नए

---

१ 'But it is a profound ethical concern, The quest for new values and regarding examination of the basic sanctions or sources of values may be called experiment the new movement may deserve the name Poets of this school *generally prefer to call their* writing new poetry

—Contemporary Indian literature Page 96

२ नन्ददुलारे वाजपेयी आधुनिक साहित्य, प्रयोगवादी रचनाएं, पृष्ठ ६८।

३ " " " "

अभ्यास, नवीन प्रयास या नई निर्माण चेष्टा का अर्थ लिया जाता है। प्रयोगवादी साहित्यिक से साधारणत उस व्यक्ति का बोध होता है जिसकी रचनाएं कोई तात्विक अनुभूति, कोई स्वाभाविक क्रम विकास या कोई सुनिश्चित व्यक्तित्व न हो।[1]

वाजपेयी जी का कथन है कि स्वयं रचयिताओं ने यह नाम दिया है, इसमें सन्देह है। क्योंकि अज्ञेय ने प्रयोग शब्द का व्यवहृत अवश्य किया है लेकिन प्रयोगवाद का नाम कहीं भी लिया है। 'दूसरे सप्तक' में इसका प्रतिवाद भी किया है। 'प्रयोग का कोई वाद नहीं है, हम वादी नहीं रहे, न ही हैं। न प्रयोग अपने में इष्ट या साध्य है—अत हमें प्रयोगवादी कहना उतना ही सार्थक या निरर्थक है जितना कवितावादी कहना।[2] इसी को तार सप्तक में पहले ही स्पष्ट कर दिया था तथा भूमिका में किसी भी वाद से अपना या अपने सहधर्मियों से सम्बन्ध जोड़ने का कड़ा विरोध किया था।[3]

अन्य प्रयोगवादियों ने भी इस नाम का विरोध किया है। जैसे गिरिजाकुमार माथुर[4] बालकृष्ण राव[5] ने। लेकिन अज्ञेय के बाड़े में कोई-कोई मस्त विजार भी है जो उन्मत्त (परन्तता में) होकर भाग छूटता है।

मैं अगर दो शब्दों का प्रयोग करूँ तो ज्यादा अच्छा होगा– प्रयोग और 'प्रयोग प्रयोग जैसा कि अज्ञेय ने स्पष्ट किया है, निरन्तर होते आये हैं। प्रयोग के अन्तर्गत मेरा निवेदन यह है—वह वह एक रुझान है जो उपरोक्त

---

१ नन्ददुलारे वाजपेयी, आधुनिक साहित्य, प्रयोगवादी रचनाएं पृ० ६६।

२ अज्ञेय, 'दूसरा सप्तक, भूमिका, पृष्ठ ६।

३ " 'तार सप्तक वक्तव्य, पृष्ठ ७५।

४ गिरिजाकुमार माथुर, प्रयोगशील कविता का भविष्य', प्रवर्तिका, जनवरी १६५५।

५ बालकृष्ण राव, नई कविता २, कल्पना, जून १६५६।

दो कविता सग्रहो (तार सप्तक, दूसरा सप्तक) म और आमतौर से 'प्रतीक' की कविताओ म पाया जायगा और वह हिन्दी म नई आज की चीज है। यह चीज यूरोप म १९वी शताब्दी के अन्त में पैदा हुई, पहले विश्वयुद्ध के आसपास परवान चढी और अब अमरीका को छोडकर अन्य जगहो म कमजोर पड गई है। उर्दू म भी यह चीज आई थी मगर मजाज, साहिर, सरदार, मखदूम, कैफी जोश की कविताओ ने उसे बिल्कुल दबा दिया। इस रुझान म 'सिम्बोलिज्म' और फार्मेलिज्म' (प्रतीकवाद और रूप प्रकारवाद) के नाना रूप और छायाएँ हैं। यूरोप म ये आन्दोलन लगभग अपना काम पूरा कर चुके हिन्दी म इनका युग आना बाकी था, सो आया।[1]

शमशेरबहादुरसिंह के कथन म स्पष्ट हो जाता है—

(१) प्रयोगवाद पाश्चात्य काव्य जगत की देन है।

(२) प्रयोग रुझान है जो तार सप्तक और 'दूसरा सप्तक' तीसरा सप्तक' तथा 'प्रतीक' की रचनाओ म प्रकट होता है।

डा० नगेन्द्र भी 'प्रयोग' शब्द का प्रयुक्त करते हैं— यो तो प्रत्येक युग की ही कविता प्रयोगवादी होती है क्योकि यह वस्तु और शैली दोनो मे अपनी पूर्ववर्ती भिन्न प्रयोग करके ही अपने आविर्भाव की घोषणा करती है। परन्तु इन दिनो यह विशेषण आधुनिक कविता की एक प्रवृत्ति विशेष के लिये प्राय रूढ हो गया है।'[2]

इस प्रकार आलोचको ने 'प्रयोगवाद' शब्द का विशेष रूढिबद्ध कविता के लिये प्रयुक्त किया है जिसके प्रवर्तक 'अज्ञेय' हैं और 'तार सप्तक तथा प्रतीक' से जिसका प्रारम्भ होता है। लेकिन प्रयोगवाद नाम अनुपयुक्त है —

---

१ शमशेर बहादुर सिंह, 'कला और साहित्य मे प्रयोगवाद –आलोचना २ जनवरी १९५२।

२ डा० नगेन्द्र डॉ० नगेन्द्र के श्रेष्ठ निबन्ध मे प्रयोगवाद निबन्ध, पृ० १०२।

(१) प्रयोग शाश्वत है। प्रत्येक युग मे प्रयोग होते रहते है। कबीर के शैली, विषय सम्बन्धी प्रयोग अनूठे थे। आधुनिक युग म सुमित्रा नन्दन पन्त का काव्य भी स्वय प्रयोग है।

(२) प्रयोगवादी कवियो ने प्रयोग के लिय प्रयोग' किये हैं। प्रयोग शीलता का कम अपनाया है।

लेकिन अनेक विरोधो के बाद भी 'प्रयोगवाद' शब्द यवहृत हो चुका ह। अत हम भी उसे आधुनिक कविता की एक विशेप प्रवृत्ति के लिये प्रयुक्त करते हैं। पिछले युग म हुए काव्य प्रयोगो तथा प्रयोगवादी प्रयोगो का अन्तर स्पष्ट करते हुए बाल कृष्ण राव न कहा है– पिछले सभी प्रयोग चाहे वे विषयवस्तु को लेकर किय गये हो या अभिव्यजना के साधन को, किसी न किसी विशिष्ट रेखा द्वारा मर्यादित क्षेत्र के भीतर ही होते रहे फलत वे प्रयोग शील अथवा प्रयोगवादी प्रयत्न न कहे गये।[१] उपरोक्त लेखक प्रयोगवाद को अमर्यादित, निर्द्वन्द्व, उच्छृ खल बना देने पर तुला हुआ है। विभाज्य रेखा पूर्णतया अस्पष्ट है। कबीर ने अपनी समस्त परम्पराए तोड दी थी। वह भी निर्द्वन्द्व था।

प्रयोगवाद की प्रतिक्रिया मे बिहार के एक प्रान्तिक गुट ने न–के–न वाद' का जन्म दिया जो कि वास्तव मे प्रयोगवाद का विकृत तथा वीभत्स प्रतिरूप है। अज्ञेय ने जहा प्रयोगवाद मे प्रयोगो को 'साधन' घोषित किया वहा, न–के–न वादी उन्हे साध्य' स्वीकार करते हैं। इस कविता का विवेचन आगे किया गया है। प्रयोगवाद को 'प्रपद्यवाद' का नाम भी दिया गया जो कि स्वीकृत न हो सका।[२]

अब आता है प्रश्न, प्रयोगवाद के दूसरे नाम 'नयी कविता' का। लेकिन एक आश्चय है कि अज्ञेय ने 'तार सप्तक में प्रयाग और प्रयोगशीलता' पर

---

१ बालकृष्ण राव नयी कविता ५ कल्पना, जून १९५६।

२ द्रष्टव्य 'न-के न वाद के प्रपद्य', नलिनो विलोचन शर्मा, केसरी, नरेश आदि।

बल दिया है, दूसर तार साहक मे उसका प्रबल विरोध किया है । इसका कारण यह भी हो सकता है जैसे देश मे अराजकता उत्पन्न करने वाला विद्रोही शासनाधिकारियो की गिरफ्त से बचने के लिये तथा उनकी नजर बचा जाने के लिये नित्य अपने रूप और नाम बदलता रहता है वैसे ही यह नयी कविता भी शायद समालोचको के कठोर अनुशासन एव नियन्त्रण से बचते रहने के लिये अपना नाम और रूप बदलती रही है । पूछा जा सकता है कि फिर नई कविता की यह परिवर्तन परम्परा पकड मे कैसे आई ? इसका उत्तर भी सरल है। नाम-रूप का परिवर्तन सरकारो मे कोई परिवर्तन नही कर सकता, नाम-रूप के बदलने पर भी स्वभाव, सस्कार, आन्तें और आचरण मे कोई अन्तर नहीं आता । उधर साहित्य के अनुशासक भी नई कविता के पीछे पड गए । आज तो नई कविता के विद्रोही ने आज की बदली हुई भौतिक परिस्थितियो और परिवेश मे पर्याप्त रूप से शक्ति सकलन कर लिया है और अब तो वह अनुशासको के सामने मोर्चाबन्दी करके खुले रूप से आ गया है ।'[1] इस कथन मे सत्य का अश निहित है ।

उक्त आलोचक ने आगे बताया कि छायावाद की प्रतिक्रिया स्वरूप प्रगति वाद प्रयोगवाद ने ज म लिया । वस्तुत दोनो में अन्तर न होकर नाम परिवर्तन का अन्तर है । डा० नगेन्द्र ने भी कहा है— प्रारम्भ म इस प्रतिक्रिया (छायावाद के विरुद्ध) का एक समवेत रूप ही दिखाई देता था । कुछ ही वर्षो म इन कवियो के दो वर्ग पृथक हो गय—पहले वर्ग को हिन्दी में प्रगतिवादी और दूसरे को प्रयोगवादी नाम दिया गया । कहने की आव श्यकता नही कि इन दोनो का पार्थक्य सर्वथा स्थिर और सीमा रेखाए एकान्त दृढ नही हैं ।[2]

यह सत्य है कि कुछ प्रगतिवादियो ने अपने साथ प्रयोग को भी आत्मसात कर लिया है । डॉ० रामविलास शर्मा, भारतभूषण अग्रवाल, नेमीचन्द्र जैन,

---

१ ब्रजलाल वर्मा, नई कविता-दो समीक्षाए पृ० ६५ ६६ आलोचना (अक्टूबर ५६) ।

२ डा० नगेन्द्र, डा० नगेन्द्र के श्रेष्ठ निबन्ध, प्रयोगवाद पृ० १०२-१०३ ।

ऐसे ही कवि हैं। डा० शिवमगलसिंह 'सुमन', रागेय राघव, शील, नागार्जुन, केदारनाथ अग्रवाल आदि कवियो ने अपनी परम्परा को अक्षुण्ण बनाने का भर सक प्रयास किया है। लेकिन 'अज्ञेय' के कथनानुसार–प्रगतिवादी व्यापक उद्देश्य को लेकर ही प्रयोगवादी क्षेत्र मे आये हैं। वह व्यापक उद्देश्य है, नये सत्य की खोज।[1] लेकिन प्रयोगवाद और प्रगतिवाद का अन्तर स्पष्ट है।

(१) डा० नगेन्द्र के अनुसार ही 'एक वर्ग सचेत होकर निश्चित सामाजिक राजनीतिक प्रयोजन मे साम्यवादी जीवन दर्शन की अभिव्यक्ति को अपना परम कवि-कर्तव्य मान कर रचना करने लगा है। दूसरे वर्ग ने सामाजिक राजनीतिक जीवन के प्रति जागरूक होते हुए भी अपना साहित्यिक व्यक्तित्व बनाये रखा।[2]

(२) डा० रागेय राघव के अनुसार 'प्रयोगवाद मूलत वर्ग सघर्ष को नकारात्मक स्थान देता है और व्यक्ति को चेतना को अपनी वस्तु स्थिति से अलग करके देखने का प्रयास करता है।'[3]

(३) प्रगतिवादी शिल्प, वस्तु शैली की चिर प्रयोगशीलता पर उतना विश्वास नही करता जितना प्रयोगवादी उसके प्रति आग्रही है।

(४) प्रगतिवाद मार्क्स के सिद्धान्त रूस की क्रान्ति से प्रभावित है। जबकि प्रयोगवाद फ्रायड, टी० एस० इलियट, इजरापाउण्ड, कमिग्स, सार्त्र से प्रभावित है।

प्रगतिवाद का जब अवसान हुआ तो अनेक कवि प्रयोगवादी आन्दोलन मे भर्ती हो गये। उन्होंने प्रयोगो को आत्मसात कर लिया।

---

१ अज्ञेय, 'तार सप्तक' पृ० ७।

२ डा० नगेन्द्र डॉ० नगेन्द्र के श्रेष्ठ निबन्ध, प्रयोगवाद, पृ० १०२।

३ डा० रांगेयराघव, 'आधुनिक कविता मे विषय और शैली', भूमिका।

नयी कविता के अनुयायियों ने विशिष्ट शैली की रचना को 'नयी कविता' का नाम दिया है। प्रयोगवाद नाम तो उस जीर्ण शीर्ण वस्त्र के समान हो चुका है जिसको नयी रुचि वाला युवक उतार कर फेंक देना चाहता है। बालकृष्ण राव ने नयी कविता की परिभाषा करते हुए कहा है 'हम नयी कविता' के नाम से इधर एक विशिष्ट शैली और स्कूल' की काव्य कृति को पुकारने पहचानने लगे हैं और अब शायद यह कहने की आवश्यकता नही रही कि सभी सामयिक अथवा आधुनिक कविता नई होते हुए भी नयी कविता नही है।'[१]

यहा पर नई कविता से प्रयोजन उस कविता से लिया गया है जो प्रसाद, पंत, निराला महादेवी की छायावादी तथा रहस्यवादी प्रतिक्रिया में उत्पन्न हुई। या यह कहा जा सकता है कि नई कविता का अभिप्राय उस कविता से है जो 'अज्ञेय' के 'तार सप्तक' तथा दूसरा सप्तक से फूटी।

नयी कविता की परिभाषा करते हुए गिरिजाकुमार माथुर ने कहा है— 'मौजूदा कविता के अन्तर्गत वह दोनो प्रकार की कविताए कही जाती रही है जिनमे एक ओर या तो शैली शिल्प और माध्यमो के प्रयोग होते रहे हैं या दूसरी ओर समाजोन्मुखता पर बल दिया जा रहा है। लेकिन नई कविता हम उसे मानते है, जिसमे इन दोनो के स्वस्थ तत्वो का सन्तुलन और समन्वय है। यह नई कविता नये शिल्प और उपमानों के प्रयोग के साथ समाजोन्मुखता और मानवता को एक साथ अजुलि मे भरे भविष्य की ओर अग्रसर हो रही है। उसकी नजर अतीत की श्यामलता और वतमान के सघर्ष से आगे भविष्य पर टिकी है। जीवन की सघर्ष-जन्य कटुता के बीच भारतीय आदर्शानुसार उसकी आशा की लौ निष्कम्प है क्योकि उसे विश्वास है कि आज चाहे जो स्थिति हो मानवता का भविष्य कल्याणमय है और वह हर अमगल शक्ति

---

१ बालकृष्ण राव, कल्पना (जनवरी १९५६), 'नई कविता ।

पर निश्चित रूप से विजय प्राप्त करेगी। इसीलिए नई कविता पलायन पस्ती और पराजय की कविता नहीं हो सकती।'[1]

इस परिभाषा के आधार पर नयी कविता का क्षेत्र अत्यन्त विस्तृत हो जाता है। 'कामायनी' भी नई कविता के अन्तर्गत आ जाती है। उसमें शिल्प और समाजोन्मुखता का समन्वय है। नये उपमानों के प्रयोग हुए हैं। अतीत और वर्तमान का समाहार और अतिक्रमण करते हुए भविष्य के प्रति गति मानता है।

लेकिन 'नई कविता' उस कविता का नाम है, जिसे हिन्दी में 'प्रयोगवाद' अभिधान मिला है और 'तार सप्तक' जिसका आदि स्रोत है।[2] इस नयी कविता की परिधि सीमित है और जो स्वयं के बारे में मुखर है। उसकी मान्यता नई कविता नाम से प्रकाशित होने वाले व्याख्या समन्वित संकलनों में प्राप्त होती है।

लेकिन नई कविता का अर्थ जिस संकुचित अर्थ में लिया गया है वह अनुचित है। कविता तो नई वह है जो पुरानी परम्परा से विलग होकर नये विकास की सूचना देती है। नये विकास बौद्धिक चेतना, भाववस्तु अभिव्यंजना शैली प्रत्येक क्षेत्र में देखे जा सकते हैं। दूसरे आज जो नई कविता है कल आने वाले युग के लिए क्या वह नयी रह पायेगी। अतः 'नयी कविता' नाम उतना उपयुक्त नहीं है।

आचार्य नन्ददुलारे बाजपेयी ने 'नई कविता' नाम का कड़ा विरोध किया है उनका कथन है– एक विशेष तबके के कवि एक विशेष लहजे की रचनाएँ तैयार कर रहे हैं और इसे वे नई कविता का नाम देने लगे हैं। इस नई सृष्टि में भाव या विचार अथवा शैली और शिल्प की दृष्टि से ऐसी

---

१ गिरिजाकुमार माथुर, गंगाधर झा के निबंध, नई कविता प्रवादों की परीक्षा (आलोचना) से उद्धृत पृ० ११।

२ गंगाधर झा, नई कविता प्रवादों की परीक्षा से उद्धृत।

विशिष्टता नही लाई जा सकी है कि हम उसे हिन्दी कविता के विकास का आगामी चरण कह सके । इस प्रकार की रचना भविष्य के प्रति कोई बडी आशा भी नही बधाती । ऐसी स्थिति मे हिन्दी कविता की स्वस्थ और प्राजल परम्परा को छोडकर इस अटपटी शैली की रचना को नई कविता का नाम देना भ्रामक और असमीचीन होगा ।[1]

इस लेख म कहा है 'हिन्दी के अधिकाश प्रौढ और गणमान्य कवि अब भी भिन्न प्रकार की रचनाए प्रस्तुत कर रहे हैं जिनकी अपनी गरिमा और महत्त्व है । यह कहना भी अनुचित न होगा कि हमारी नई कविता का प्रतिनिधि और प्राजल रूप वही है, जो उन प्रौढ कवियो द्वारा प्रस्तुत किया जा रहा है ।[2]

लेकिन आज 'नयी कविता' शब्द सर्वत्र ग्राह्य हो गया है । केदारनाथ अग्रवाल ने कहा है 'नयी कविता' से हिन्दी काव्य धारा की एक विशिष्ट रूप गुणवाली कविता का बोध होता है । नयी कविता छायावादी, प्रगतिवादी और प्रयोगवादी कविताओ से अपने रूप और गुण म अवश्य भिन्न है ।

इसकी विशेषताओ का उल्लेख करते हुए कहा है—इसमे आत्माभिव्यक्ति को प्रधानता दी गई है । कविताए गद्यवत् हैं ।[3]

डा० शम्भूनाथसिंह ने भी कहा है—'नयी कविता नाम प्रचलित हो जाने के बावजूद बहुत से लोग प्रयोगवाद और नयी कविता म कोई भेद नही मानते क्योकि बाह्यरूपाकार की दृष्टि से दोनो मे विशेष अन्तर नही है । किन्तु आन्तरिक तत्त्वो पर अभिव्यजना पद्धति का विश्लेषण करने पर दोनो मे बहुत अधिक अन्तर दिखलाई पडता है ।—बीसवी शताब्दी के

---

१ नन्ददुलारे वाजपेयी, आलोचना सम्पादकीय, नई कविता, पृ० १ अक्टूबर ५६ ।

२ वही ।

१ केदारनाथ अग्रवाल के 'प्रतिकल्पा' मे प्रकाशित निबन्ध, नई कविता से उद्धृत ।

पाँचवे दशक के प्रारम्भ मे प्रयोग और प्रतिक्रिया की बहुलता लेकर पूर्ववर्ती छायावादी शैली की कविताओं से भिन्न जो तर्कपूर्ण उपदेशात्मक और परम्पराभंजक कविता सामने आयी, उसे आलोचकों ने प्रयोगवाद नाम दिया। —छठे दशक के प्रारम्भ के साथ ही प्रयोग के अतिरिक्त उत्साह से मुक्ति पाकर हिन्दी कविता नई दिशा मे मुड़ी, जिसमे परम्परा को आत्मसात् करके स्वीकारने और स्वानुभूति की सघनता के दबाव से विवश होकर सहज आत्माभिव्यक्ति करने की प्रवृत्ति प्रमुख थी।[1]

केवल आत्माभिव्यक्ति के आधार पर प्रयोगवाद और नयी कविता का पृथक् पृथक् कह देना उचित नही है। वस्तुतः नयी कविता प्रयोगवाद का ही विकसित रूप है। आत्माभिव्यक्ति, लय का अभाव, उसकी नई विकासोन्मुख प्रवृत्तियाँ हैं। बाह्य सज्जा मे दोनो एक हैं। दोनो के विभाजन की कोई स्पष्ट रेखाएं भी नहीं हैं। आगे चलकर प्रयोगवाद के इस विकसित रूप पर भी विचार करेंगे। यहां पर प्रयोगवादी कविताओं मे उठाये गये कतिपय प्रश्नों पर विचार करेंगे।

(१) नये सत्य की खोज :

अज्ञेय के अनुसार प्रत्येक युग का अपना एक सत्य होता है। दूसरे युग मे उसकी कोई महत्त्वता नही रह जाती। 'तार सप्तक' की भूमिका मे अज्ञेय ने प्रयोगों का सर्व प्रथम उद्देश्य व्यक्तिगत नये सत्य की खोज बताया है।[2] 'दूसरा सप्तक' मे इस सत्य के महत्व का विस्तार करते हुए लिखा है—'महत्त्व उस सत्य का है, जो प्रयोगों द्वारा हमें प्राप्त हो।[3] क्योंकि 'पारखी' मोती परखता है, गोताखोर के असफल उद्योग[4] नही।

---

१ शम्भूनाथसिंह, 'नयी कविता सयुक्तांक ५ ६, डा० जगदीशचन्द्र गुप्त द्वारा उद्धृत।

२ अज्ञेय, 'तार सप्तक' विवृति और पुनरावृत्ति पृ० ५।

३ अज्ञेय, 'दूसरा सप्तक' भूमिका पृ० ८।

४ वही।

इसी कायगत नय खोज की प्रयागवादी कवि ने नयी राहा का अ वेषण किया तथा अभेद्य क्षेत्रा की ओर जाने का अपना रुचि प्रकट की। विचारा मे घार असमानता होत हुए भी उन्हें एक सूत्र मे बाध दिया।

(१) लेकिन कवि का उद्देश्य तथा लक्ष्य सत्य की खोज न होकर उसका प्रकाशन और प्रकटीकरण होता है।

(२) म य प्रयोगवादी ने सत्य की जा याख्या की है वह 'अज्ञेय'से भिन्न है— आज के काव्य का सत्य वे बाह्य वास्तविकताए हैं जिनके बीच मे हमारा साहित्य गुजर रहा है।[1]

(३) डा० शिवकुमार मिश्र का मत है— 'कवि कर्म की सार्थकता इस सत्य के साथ आख मिलाकर, उसकी विरूपता और भयावहता को नष्ट कर, इस प्रकार निखार कर प्रस्तुत करने मे हैं कि जीवन, कला और साहित्य उसम स तोष, सुख, समृद्धि का जिन्दगी जी सके, उसम घुटकर तिल तिल गलते और मिटत न रह।[2]

(४) 'अज्ञेय' न यह नही बनाया कि नई कविता के कवि अन्वेषी किस वस्तु के है। अपने का य सम्ब धी व्यक्तिगत अनुभवा म इसे स्पष्ट किया है। प्रयोग (या अन्वेषण) सभी काला म कवियो ने किया हैं। किन्तु कवि क्रमश अनुभव करता आया ह कि जिन क्षेत्रो म प्रयोग हुए हैं, उनसे आगे बढकर अब उन क्षेत्रो का अन्वेषण करना चाहिये, जिन्हें अभी नही छुआ गया हैं या जिनको अभेद्य मान लिया गया हैं।[3]

नन्ददुलारे वाजपेयी ने कहा है– 'यहा थोडी सी उलझन हम भी पैदा होती है। एक ओर अज्ञेयजी कहते हैं कि सभी काला के कवियो ने प्रयोग या अन्वेषण किये है और वह स्वभावत नए और अभेद्य क्षेत्रो मे अ वे

---

१ गिरिजाकुमार माथुर, 'काव्य में प्रयोगशीलता', आलोचना, जनवरी ५२।

२ डॉ० शिवकुमार मिश्र, 'नया हिन्दी काव्य, पृ० २१५।

३ अज्ञेय, तार सप्तक, पृ० ७४-७५।

पण करता हुआ आजकल 'सीधी तिरछी लकीरों' और सीधे या उल्टे अक्षरों के क्षेत्र में आ गया है। पर दूसरी ओर संकेत करते हैं कि अपनी उलझी हुई संवेदना की सृष्टि को पाठकों तक अक्षुण्ण पहुँचाने की नीयत से वह ये प्रयोग करता है। उलझन यह है कि दोनों में कौन सी वस्तु उन प्रयोगों की प्रेरक है— अभेद्य क्षेत्रों में जाने की स्वाभाविक आकांक्षा या उलझी हुई संवेदना को पाठकों तक पहुंचाने की उद्विग्नता ?[1]

(५) प्रयोगवादी अभी राहों का अन्वेषण कर रहे हैं। अभेद्य क्षेत्रों की ओर प्रस्थान सत्य की खोज से सम्बन्धित है। इसीलिये वे अन्वेषी हैं। स्पष्ट है कि गन्तव्य और लक्ष्य अनिश्चित है फलस्वरूप प्रयोगवादी अभी भटक रहे हैं।

(६) जब लक्ष्य अनिश्चित है, तब वाञ्छित मार्ग के निर्देशन के अभाव में उपलब्धियों का प्रश्न नहीं है। यदि प्रयोग ही लक्ष्य हैं, तो उनका प्रयोजन क्या है ?

(२) उलझी हुई संवेदनाएं और साधारणीकरण

'तार सप्तक' में अज्ञेय ने साधारणीकरण के बारे में बहुत कम लिखा है। भाषा से सम्बन्धित विचारों को व्यक्त करते हुए अनुभूति की कि उसकी भाषा किसी अन्य युग के काव्य सत्य की प्रेषणीयता के लिये भले ही अपर्याप्त हो परन्तु विगत मानों के इस युग में वह व्यापकता शेष नहीं रह गई जो शब्द को साधारण अर्थ में बड़ा अर्थ ढोकर कवि के सामने उपस्थित समस्या का समाधान कर सके।[2] फलस्वरूप नयी भाषा की खोज हुई और विविध उपायों को काम में लाया गया। उलझी हुई संवेदनाओं को पाठक तक पहुँचाने में दूसरी ओर इस उद्देश्य के हेतु ऐसे जटिल उपायों का आश्रय लेने में कवि को पूर्णतया असफलता मिली। उसे पागल प्रलापी समझा गया। 'अज्ञेय' ने ऐसे लोगों को चेतावनी

---

१ नन्ददुलारे वाजपेयी, 'आधुनिक साहित्य', प्रयोगवादी रचनाएं पृ० ७३।

२ अज्ञेय, 'तार सप्तक' पृ० ७५।

देते हुए लिखा था— बहुत से लोग इस बात को भूल गये हैं कि कवि आधुनिक जीवन की एक बहुत बड़ी समस्या का सामना कर रहा है। भाषा की क्रमशः संकुचित होती हुई सार्थकता की केंचुल फाड़कर उसमें नया अधिक व्यापक, सारगर्भित अर्थ भरना चाहता है और अहङ्कार के कारण नहीं— इसलिये कि उसके भीतर इसकी माँग स्पंदित है कि वह व्यक्ति सत्य को व्यापक सत्य बनाने का सनातन उत्तरदायित्व अब भी निबाहना चाहता है।[1]

दूसरा सप्तक' में भाषा सम्बन्धी विकास क्रिया का उल्लेख करते हुए अज्ञेय ने लिखा है—'इस प्रकार विकास की किस प्रक्रिया द्वारा किसी भाषा से शब्द समय समय पर नये चमत्कार व नये अर्थों से पूर्ण होते रहे हैं और अपना कार्य समाप्त कर कालान्तर में अभिधेय बन जाते हैं तब उनमें पुनः नया अर्थ व नया चमत्कार भर कर उन्हें जीवित किया जाता है और इस प्रकार का क्रम सदैव ही चला करता है।[2]

इसी तारतम्यता में अज्ञेय' ने साधारणीकरण सम्बन्धी अपनी मान्यताओं को परम्परागत मान्यता के विरोध में प्रकट किया है।

जब चमत्कारिक अर्थ मर जाता है और अभिधेय बन जाता है तब उस शब्द की रागात्मक शक्ति भी क्षीण हो जाती है। उस अर्थ से रागात्मक सम्बन्ध नहीं स्थापित होता। तब उस अर्थ की प्रतिपत्ति करता है जिससे पुनः राग का संचार हो, पुनः रागात्मक सम्बन्ध स्थापित हो। साधारणीकरण का अर्थ यही है।[3]

उलझी हुई संवेदना के बारे में अज्ञेय' का मत है— इस उलझी संवेदना के दो कारण हैं—आन्तरिक संघर्ष और बाह्य संघर्ष। आन्तरिक संघर्ष के

---

१ अज्ञेय, 'तार सप्तक' पृ० ७५।

२ दूसरा सप्तक' भूमिका, पृ० ११।

३ " " " पृ० १२।

फलस्वरूप 'आज के मानव का मन यौन परिकल्पनाओं से लदा हुआ है, और वे कल्पनाएं सब दमित और कुण्ठित हैं। उसकी सौंदर्य-चेतना भी इससे आक्रान्त है। उसके उपमान सब यौन प्रतिकार्थ रखते हैं।'[१]—और इस आन्तरिक संघर्ष के ऊपर जैसे काठी कसकर एक बाह्य संघर्ष भी बैठा है, जो व्यक्ति और व्यक्ति का नहीं, व्यक्ति-समूह का, वर्गों और श्रेणियों का संघर्ष है। व्यक्तिगत चेतना के ऊपर एक वर्गगत चेतना भी लदी हुई है और उचितानुचित की भावनाओं का अनुशासन करती है, जिससे एक दूसरे की वर्जनाओं का पुंज खड़ा होता है।'[२]

(१) उलझी हुई संवेदनाओं की अक्षुण्ण अभिव्यक्ति को नई भाषा खोजने का प्रयास प्राग्ल भाषा के कवियों द्वारा भी किया गया था, जिससे भाषा गूढ़ विशृङ्खलित, अगम्य हो गई थी। इस बड़े और सारगर्भित अर्थ भरने की प्रयोगवादियों की भाषा का क्या रूप होगा, यह स्पष्ट देखा जा रहा है।

(२) 'अज्ञेय' का कथन है कि साधारणीकरण की पुरानी प्रणालियां आज के जीवन की अतिशय उत्तेजना को वहन करने में असमर्थ हैं। नई प्रणालियों की उद्भावना अभी नहीं हुई, इसलिये कवि अपने अर्थात् व्यक्ति के अनुभूत को सहृदय-समाज का अनुभूत बनाने में असमर्थ रहता है, असत्य है। प्रयोगवादी कवि नवीनता की धुन में साधारणीकरण का प्रयास नहीं करता। यदि प्रयास करता है तो उनसे साधारणीकरण के मूल सिद्धान्तों का निषेध करता है। वास्तव में साधारणीकरण एक मनोवैज्ञानिक प्रक्रिया है जिसका मूल आधार मानव-सुलभ सह अनुभूति है। डा० नगेन्द्र का कथन है— 'इसमें सन्देह नहीं कि आज का जीवन विगत जीवन की अपेक्षा कहीं अधिक उलझा और पेचीदा हो गया है और मानव मन की प्रवृत्तियां भी उसी अनुपात से निविड एवं जटिल हो गई हैं। फिर

---

१ ' 'तार सप्तक', " भूमिका।

२ " " ' " ।

भी साधारणीकरण के सिद्धात म इससे कोई अतर नही आता क्योकि कवि के मन को निविडता भी तो उसी अनुपात से बढ गई है। जिन परिस्थितियो ने कवि के मन को प्रभावित किया है उन्ही ने सहृदय के मन पर भी प्रभाव डाला है। अतएव कवि और सहृदय के मानसिक धरातल म एक सा परिवर्तन होने के कारण साधारणीकरण की स्थिति वैसी ही रहती है। परतु वास्तविकता यह है कि कवि साधारणीकरण का प्रयत्न ही नही करता।[1]

(३) अज्ञेय' न साधारणीकरण का अर्थ, अर्थ की उस प्रतिपत्ति से लगाया है जिससे पुन राग का सचार हो। यही कारण है नयी कविता में मकरद के स्थान पर पसीना और मूत्र, मृग और उसकी चचलता के स्थान पर गधा और उसका बुद्धूपन साधारणीकरण के माध्यम बनाये गये हैं, जो साधारणीकरण के लिये विकृति मात्र हैं। डा० नगेद्र ने इसीलिये कहा है—प्रयोगवादी कवि बुद्धि व्यवसायी है, अपनी अनुभूति पर उसे विश्वास नही है। परिणामत वह सहानुभूति मे असमर्थ रहता है, अर्थात् अपने सवेद्य को विश्वास रूप मे न तो वह ग्रहण कर सकता है और न प्रस्तुत ही कर सकता है और इसके बिना काव्य रचना सम्भव नही है।[2]

(४) उलझी हुई सवेदनाओ पर फ्रायड के मनोविश्लेषणवाद का प्रभाव है। नददुलारे वाजपेयी ने कहा है— 'कदाचित इस उलझी हुई सवेदना के परिणाम स्वरूप ही कवि 'स्वात सुखाय' नही लिखता—वह अनुभूति की उस भूमि पर पहुँच नही पाता, जो वास्तविकता की भूमि है, और जिस पर पहुँच कर ही स्वात सुखाय लिखा जा सकता है।[3]

---

१ डा० नगेद्र, डा० नगेद्र के श्रेष्ठ निबध, पृ० ११०, सम्पादक भारतभूषण अग्रवाल।

२ डा० नगेद्र आधुनिक हिदी कविता की प्रमुख प्रवृत्तियाँ, पृ० १२३।

३ आचार्य नददुलारे वाजपेयी 'आधुनिक साहित्य' प्रयोगवादी रचनाए, पृ० ७३ ७४।

(५) जिस माध्यम से उलझी हुई सवेदनाओ को प्रयोगवादी रखना चाहते हैं उससे सवेदनाए सुलझने की अपेक्षा उलझ जायेंगी। डा० नगेन्द्र का मत इस बारे मे सत्य है–'यदि आज जीवन जटिल है और इस कारण कवि की अनुभूतिया उसकी सवेदनाए उलझ गई है, तो कवि कर्म की सार्थकता इस बात मे निहित होनी चाहिये कि कवि अपनी उलझी अनुभूतिया को सरल सुलझे रूप में अपने पाठको तक पहुचाये जिससे वे उसके द्वारा अधिक से अधिक मात्रा मे ग्राह्य हो सके न कि उन्हे उलझे रूप मे ही उनके सम्मुख रख कर उनकी उलझन को और भी बढा दे। फिर भाषा के विचित्र प्रयोग कहा तक कवि की उलझी सवेदनाओ को उसके पाठको तक अक्षुण्ण पहुँचा सकते है।[१]

(६) प्रयोगवादियो का दृष्टि 'व्यक्ति द्वारा अनुभूत सत्य' का समष्टि' तक पहुँचाने के लिए, कतिपय समान मानसिक स्थिति वाले व्यक्तियो तक पहुँचकर ही सीमित रह जाती है। इससे कविता लोक ग्राह्य नही हो पाती है। साधारणीकरण तथा सप्रेषणीयता ही काव्य के अधिकाधिक प्रसार तथा प्रचार का कारण होती हैं।

(७) प्रयोगो की अतिशयता से नयी कविता दुरूह हो गई है। पाठको का विशिष्ट समुदाय बनाकर कविता अस्तित्व नही बना सकती है।

(८) अज्ञेय ने व्यक्ति सत्य (कवि की अनुभूति) और व्यापक सत्य (सार्वजनिक अनुभूति) का अन्तर बौद्धिक भूमि पर किया है जो उलझी हुई सवेदना पर आधरित है। प्रयोगवादियो का व्यक्ति सत्य, व्यापक सत्य तभी बन सकता है जब कवि सामान्य भावभूमि पर उतर कर समस्या का समाधान न खोजे। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल का मत है– सच्चा कवि वही है जिसे लोक हृदय की पहिचान हो जो अनेक विशेषताओ और विचित्रताओ के बीच मनुष्य जाति के सामान्य हृदय को देख सके।[२]

---

१ डॉ० नगेन्द्र, विचार और विवेचन, पृ० १४८।

२ आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, 'चितामणि भाग–१ पृ० २२७।

लगता है 'अज्ञेय' पर इन आलोचनाओं का प्रभाव पड़ा है साधारणीकरण की समस्या पर द्वितीय तथा तृतीय सप्तक के बीच की अवधि में विचार किया गया है। तभी कहा है 'नये (या पुराने भी) विषय की कवि की संवेदना पर प्रतिक्रिया और उससे उत्पन्न सारे प्रभाव जो पाठक श्रोता, ग्राहक पर पड़ते हैं और उन प्रभावों को संप्रेष्य बनाने में कवि का योग मौलिकता की कसौटी पर यही है।'[1]

अज्ञेय ने 'संप्रेष्यता' पर बल देना प्रारम्भ कर दिया है जो उनके साधारणीकरण के बारे में सोचने का प्रतीक है। अब कवि आड़ी तिरछी, विराम रेखाओं की उतनी बात नहीं करता।

(३) रस और बौद्धिकता

अज्ञेय' ने रस सम्बन्धी कोई विचार प्रस्तुत नहीं किये है। लेकिन अनुयायियों ने निम्न तथ्य प्रस्तुत किये हैं —

१ प्रयोगवादी कविता का लक्ष्य रसानुभूति नहीं है।[2]

२ रस सिद्धान्त से उसका विरोध है।[3]

३ रस के स्थान पर बौद्धिकता उनका लक्ष्य है।

४ काव्य की आत्मा को अलंकार, ध्वनि, रीति, वक्रोक्ति रस सम्बन्धी मान्यताए उतनी प्रमुख नहीं है जितनी कि बौद्धिकता है।

---

१ अज्ञेय, तीसरा सप्तक भूमिका पृ० १५।

२ जगदीश गुप्त, नई कविता—रस और बौद्धिकता, आलोचना, ७ अप्रेल १९५३।

३ जगदीश गुप्त नई कविता, अर्थ की लय, नई कविता, अंक ३।

५ बौद्धिकता का पूर्ण समर्थन होने से भावुकता, तुकान्तता, गेयता की उपेक्षा होने से कविता गद्यवत् हो जाय तो कोई चिन्ता नही।[१]

६ काव्यशास्त्रियो द्वारा निर्धारित नव रसो के अन्तर्गत प्रयोगवादी काव्य नही आता है अत नये कवियो ने एक नये रस की खोज की है जिसे बुद्धि रस के नाम मे अभिहित किया गया है।

इन तथ्यो पर यदि विचार किया जाय तो —

(१) यह सत्य है कि अति भावुकता न तो श्लाघ्य है और न समाचीन ही, लेकिन अतिभावुकता के विरोध मे अतिबौद्धिकता को अपना लेना भी समीचीन प्रतीत नही होता। किसी भी साहित्य का श्रेष्ठ कविता भावुकता और बौद्धिकता के उपयुक्त सन्तुलन को लिये हुए होती है।

(२) यह भी सत्य है कि भावबोध परिवर्तित हो गया है। परन्तु प्राचीन रस सिद्धान्त सवमान्य सार्वकालिक है, यदि वह युग की परिस्थितियो के अनुकूल नही है तो उसको त्याज्य न समझकर उसको परिष्कृत तथा परिमार्जित करने की आवश्यकता है। नयी कविता क समर्थको को इस पर विचार करना चाहिये।

(३) प्रयोग काव्य के साधक है साध्य नही। काव्य की आत्मा को अस्वीकार करके, बौद्धिकता को स्थान देना, काव्यगत मूल्यो का अनुचित तथा अनावश्यक क्रम व्यय है।[२]

(४) डॉ० नगेन्द्र का कथन है— काव्य के विषय म और चाहे कोई सिद्धान्त निश्चित न हो, परन्तु उसकी रागात्मकता असदिग्ध है। इसे पौरस्त्य

---

१ जगदीश गुप्त नई कविता—रस और बौद्धिकता, आलोचना, ७ अप्रेल १९५३।

२ डॉ० नगेन्द्र, डॉ० नगेन्द्र के श्रेष्ठ निबन्ध प्रयोगवाद नामक निबन्ध से उद्धृत।

और पाश्चात्य दोनो ही काव्यशास्त्र निर्भ्रान्त रूप मे स्वीकार करते हैं। कविता मानव मन का शेष सृष्टि के साथ रागात्मक सम्बन्ध स्थापित करती है—यह एक विश्वजनीन सत्य है, और कविता की यही चरम सार्थकता है। समय समय पर बुद्धि और राग मे थोड़ी बहुत प्रतियोगिता रही हो वह दूसरी बात है परन्तु कभी भी बुद्धि को राग के स्थान पर काव्य तत्त्व होने का सौभाग्य प्राप्त नही हुआ। जब कभी बुद्धि तत्त्व राग तत्त्व के ऊपर हावी हुआ है काव्य तत्त्व भी उसी अनुपात मे क्षीण हो गया है।[1]

(५) काव्यशास्त्र के अनुसार कोई भी रचना रस रहित होने पर काव्य के अन्तर्गत स्वीकार नही की जा सकती है। काव्यशास्त्र मे कविता का उद्भव हृदय तथा उसकी ऊपर आत्मा द्वारा स्वीकार किया गया है। यही कारण है कि वास्तविक कविता (*Genuine Poetry*) तथा पद्य रचना मे बहुत अन्तर होता है। लिविस ने ड्रायडेन पोप तथा उनके वर्ग के कवियो की कविताओ और वास्तविक कविताओ मे अन्तर स्पष्ट किया है।[2] अतः बुद्धि रस पर जीवित कविता कितने समय तक अस्तित्व बना सकेगी, यह स्पष्ट ही है।

(६) डा० नगेन्द्र ने नयी कविता मे दुरूहता का एक कारण भावतत्व और वस्तु अनुभूति के बीच रागात्मक के बजाय बुद्धिगत सम्बन्ध का होना माना है।[3]

---

१ डॉ० नगेन्द्र, डा० नगेन्द्र के श्रेष्ठ निबन्ध प्रयोगवाद नामक निबन्ध से उद्धृत।

२ 'The difference between genuine poetry and the poetry of Dryden, Pope and all their schools, is *briefly this* Their *poetry* is conceived and comp osed in their wits, genuine poetry is conceived and composed in soul

—New wearing in English poetry, page 9

३ डा० नगेन्द्र, डॉ० नगेन्द्र के श्रेष्ठ निबन्ध, पृ० १०८।

(७) आचार्य नन्ददुलारे बाजपेयी ने कहा है–'प्रयोगवादी रचनाएं पूरी तरह काव्य की चाहद्दी में नहीं आती। वे अतिरिक्त बुद्धिवाद से ग्रस्त हैं।'[1]

(४) परम्परा

अज्ञेय ने 'दूसरा सप्तक' की भूमिका में स्पष्ट किया है कि कवि के लिये परम्परा का क्या स्थान है, वह कहां तक ग्राह्य है? अथवा अग्राह्य है।

'जो लोग प्रयोग की निन्दा के लिये परम्परा की दुहाई देते हैं वे यह भूल जाते हैं कि परम्परा, कम से कम कोई ऐसी पोटली बांधकर अलग रखी हुई चीज नहीं है, जिसे वह उठाकर सिर पर लाद ले और चल निकले। परम्परा का कवि के लिये कोई अर्थ नहीं रखता। जब तक वह उसे ठोक बजाकर तोड़ मरोड़ कर आत्मसात नहीं कर लेता, जब तक वह एक इतना गहरा संस्कार नहीं बन जाती कि उसका चेष्टापूर्वक ध्यान रखकर उसका निर्वाह करना आवश्यक न हो जाय।'[2]

धर्मवीर भारती और लक्ष्मीकान्त वर्मा ने इसका समर्थन करते हुए लिखा है 'हम नये इसलिये हैं क्योंकि हमारा पाठक आधुनिक है, उसकी समस्याएं नई हैं, उसका सारा परिवेश नया है। हम नया इसलिये लिखते हैं कि नया देशकाल का यथार्थ है, हमारा पाठक इसलिये पढ़ता है कि हमारा और उसका यथार्थ अलग अलग नहीं है। रही परम्परा, सो हम एक अकर्मण्य पुत्र की भांति उसे दफना कर छोड़ नहीं देना चाहते–और न श्रेयस्कर समझते हैं कि कृपणों की भांति जीते जी ही बौद्धिक मौत मर कर उस पर सांप बनकर बैठ जाएं और अपनी राह जाने वाले हर भले मानुष पर अकारण फुफकारते रहें।'[3]

---

१ नन्ददुलारे बाजपेयी, आधुनिक साहित्य, पृ० ७८।

१ अज्ञेय 'दूसरा सप्तक', भूमिका, पृ० ६७।

२ धर्मवीर भारती तथा लक्ष्मीकांत वर्मा, निकष, अंक १, सम्पादकीय।

अज्ञेय द्वारा उठाया गया 'परम्परा' का प्रश्न सार्थक है लेकिन वे उसे स्पष्ट नहीं कर पाये। फलस्वरूप उनके अनुयायियों ने स्पष्टीकरण तथा निर्णय के अभाव में परम्परा का प्रमुख स्थान नहीं दिया। नरेश मेहता का कथन है— प्रयोगों की नींव पर टिका आज का अधिकांश काव्य परम्परा के अस्वीकार का काव्य है।[1] नई तकनीक, नये शिल्प प्रकार, नये विषयों से काव्य परम्परा हीन हो गई है। इलियट के साथ भी यही हुआ। उसके अनुसार — परम्परा का कवि के लिए तभी कोई अर्थ हो सकता है, जब वह उसे आत्मसात करले और मस्तिष्क में स्थायी स्थान प्रदान करदे।[2] इलियट के अनुयायियों ने इलियट के परम्परा विराग को तो देखा, जिसे लक्ष्य बनाकर वे आगे बढ़ गये, लेकिन परम्परा के बारे में उन्होंने आँखें बन्द करली।

(५) असमाजिकता

नन्ददुलारे वाजपेयी ने प्रयोगवाद सम्बन्धी निष्कर्षों में जो सहज अनुमेय हैं कहा है- प्रयोगवादी रचनाएं वैयक्तिक अनुभूति के प्रति ईमानदार नहीं है और सामाजिक उत्तरदायित्व को पूरा नहीं करती है।[3] डा० नगेन्द्र ने भी प्रयोगवादी कविता को असमाजिक माना है।[4] उन्होंने इसके कारणों में- भाषा का एकान्तिक प्रयोग और दुरुहता, को सम्मिलित किया है।

डा० रघुवंश ने बताया कि-नई कविता पर असामाजिकता का आरोप लगाना उचित नहीं है। क्योंकि यह युग अन्ध जड़ता का युग है जिसमें समस्त सामाजिक, धार्मिक राजनीतिक तथा आर्थिक मान्यताएं झूठी पड़ गई हैं। —यह समाज व्यापी कुण्ठा निराशा, अवसाद तथा 'अन्ध

---

१ नरेश मेहता, सम्याख्या नई कविता, अंक ३।

२ T S Eliot, 'The tradition and individual talent The Sacred Wood P P 47

३ नन्ददुलारे वाजपेयी, आधुनिक साहित्य, पृ० ७८।

४ डा० नगेन्द्र, डॉ० नगेन्द्र के श्रेष्ठ निबन्ध, पृ० १११।

ग्रास्था का परिणाम है कि हम इन सबके बावजूद व्यक्तिगत स्वार्थी वेईमानो, घूसखोरी, चोरबाजारी, अकर्मण्यता से अपने को बचाने मे असमर्थ है। — आज की इस सामाजिक परिस्थिति ने कवि को सवेदित किया है। वह इस सर्वग्राही जडता और कुण्ठा का अनुभव अपने जीवन में कर रहा है। यह कुण्ठा पलायनवादी न होकर परिस्थिति जन्य है। आज के कवि का सघर्ष उसकी आशा निराशा जन्य कुण्ठाए व्यक्तिगत से अधिक सामाजिक है।[1]

लेकिन डॉ० रघुवश का कथन सदेहास्पद है। डॉ० रघुवश को ध्यान रखना चाहिये था कि –

(१) ये कुण्ठाए कतिपय व्यक्तियो तक ही सीमित हैं। अन्य सामाजिको पर इनका प्रभाव कम है।

(२) नये कवियो ने कुण्ठाओ को ही अधिक व्यक्त किया है उनके कारणो को बताया नही। कुण्ठाग्रस्त समाज का उद्धार केवल कुण्ठाओ के सकेत मात्र कर देने से नही हो सकता है। अपितु उन कुण्ठाओ को उत्पन्न करने वाले कारणो की ओर सकेत करना भी अनिवार्य है।

(३) समाज म एक ओर कुण्ठा, निराशा, अध जडता है, दूसरी ओर आशा, विश्वास की लौ भी जल रही है। फिर उधर ही नये कवि क्यो नही उन्मुख होते।

(६) अर्थलयवाद

जगदीश गुप्त ने नयी कविता को एक नई चीज दी है वह है अर्थ की लय। जगदीश गुप्त ने प्रयोगवाद मे लय के अभाव को उचित बताते हुए कहा है कि सगीतात्मकता के स्थान पर प्रयोगवादी कविता में 'अर्थ की लय' रहती

१ डा० विश्वम्भरनाथ उपाध्याय की पुस्तक 'आधुनिक हिन्दी कविता' से उद्धृत पृ० ५६।

है। लय निश्चित रूप से गति और यति से उत्पन्न होती है। यदि गति मे निश्चित स्थान पर विराम लगता है तभी लय पैदा होती है। जगदीश गुप्त ने इसके दो उदाहरण प्रस्तुत किए हैं —[१]

अर्थ की लय से हीन पद्य :

बुंजर बुंदेली धरती पर केन सहारे,
कालिंजर का दुर्ग नही है दूर यहा से,
कोसल जन सस्कृति के अचल की सीमा पर
चित्रकूट की छाया में यह नगर बसा है।

अर्थ की लय से युक्त पद्य :

रात का बन्द नीलम किवाडा हुला,
लो क्षितिज छोर पर देव मंदिर खुला
हर नगर झिलमिला, हर डगर को खिला
हर बटोही जिला, ज्योतिप्लावन चला।

(१) यहा पर अर्थ की लय नही है। गति को प्रत्याशित, कही अप्रत्याशित रूप से विराम देने का प्रयास किया है, जिससे सगीतात्मकता आ गई है।

(२) शब्दार्थ जो गति पकडते है। वह गति से उत्पन्न लय है।

(३) गति का अत्यधिक क्षीण होना ही गद्य हो जाता है।

(४) *दोनो उदाहरणो मे वस्तु व्यजना है। यदि अर्थ की लय है भी, तो दोनो* मे है। लेकिन शब्द और अर्थ म अपनी लय नही होती है।

अत जगदीश गुप्त का यह सिद्धात पूर्ण अमान्य है। यह प्रयलयवाद अज्ञेय के विराम चिन्ह आडी तिरछी लकीरो वाले सिद्धान्त का ही एक रूप है।

---

१ जगदीश गुप्त, 'नयी कविता', अ क ३।

(७) लघुमानववाद :

लक्ष्मीकान्त वर्मा ने नयीकविता के प्रतिमान में लघुमानववाद की स्थापना की है। वर्मा के अनुसार अध्यात्मवाद और प्रगतिवाद में महामानव की पूजा हुई। अधिनायकवादी सत्ताओं, तथा प्रगतिवाद में तानाशाही व्यक्ति पूजा का एक रूप थी। लेकिन प्रयोगवाद मनुष्य की लघुता पर अधिक विश्वास करता है तथा सुपरमैन (महामानव) में वह आस्था नहीं रखता। वर्मा के अनुसार प्रयोगवाद के समय की परिस्थितियाँ बदल गई हैं 'आज का युग सत्य है कि महामानव के निर्माण में मानव समाज ने आज तक जितनी आहुतियाँ दी है उनका कोई महत्त्वपूर्ण परिणाम नहीं निकला है। जीवन के चारों ओर जो घुटन और पीड़ा अपनी समस्त संवेदना के साथ बार बार दबे हुए सत्य को उभारती रही है, उसका एक नियमित मूल्य रहा है और इस मूल्य की गहराई और बुनियादी अस्तित्व का बहुत बड़ा महत्त्व भी है।'[1] लक्ष्मीकान्त वर्मा ने इसको प्रमाणित करने के लिये पुरुषोत्तम खरे का एक कविता का उदाहरण दिया है —

हम छोटे नये लोग
खोजों के पीछे पागल हैं
अनस्पर्श छूने को व्याकुल हैं
अनगढ़ गढ़ने में रत हैं हम।
आ जमा रहे हैं वे रंग
जो उड़ न पाये धूप में
हम छोटे नये लोग नींव और सीढ़ियाँ॥[२]

आगे लक्ष्मीकान्त वर्मा ने कहा है 'महामानवों की शृंखला की सबसे बड़ी विद्रूपता यह रही है कि उन्होंने अपने झंडे और पताके उठवाकर अपना जुलूस तो निकलवाया है किन्तु उन्होंने इस दिशा में ध्यान नहीं

---

१ लक्ष्मीकान्त वर्मा, नयी कविता के प्रतिमान पृ० १७०।
१ लक्ष्मीकान्त वर्मा नयी कविता के प्रतिमान, पृ० १७० से ही उद्धृत।

दिया कि उनके पीछे आने वाला व जन समुदाय म कितने ऐसे हैं जो इस महा रथ-यात्रा म केवल घुटकर मर रह हैं और वस्तुत यह रथ-यात्रा उनको कुचलकर बढने का प्रयास कर रहा है जो अपनी लघुता के परिवेश म इनसे कही अधिक पूर्ण थे क्योकि व जीवन का प्रत्यक क्षण जीवित रहकर बिताना चाहते थे और उस बिताने म वे मानक मे अधिक अपनी आन्तरिक आस्था और जीवन के यथार्थ से परिचालित थे।'[1] आगे कहा है 'व रथ जिनम महाप्रभु की प्रतिमा रखकर यात्रा की जाती थी आज उनकी धुरिया टूट चुकी हैं साथ ही उनक चमत्कार नष्ट हो चुके हैं। रथ यात्रा म जुते हुए मानव समूह की चेतना आज मात्र यन्त्रवत् अस्तित्वहीन अयथार्थ शक्तिया मे परिचालित नही की जा सकती।'—'ये प्रतिमाए टूट रही हैं और उनके टूटने मे जो उपलब्धिया प्राप्त हो रही हैं उनका मूल्य और उनका अस्तित्व मानव चेतना म अधिकाधिक आत्म विश्वास और आत्मबल भर रहा है।'[2]

(१) लक्ष्मीकान्त वर्मा का लघुमानववाद आत्मस्वाभिमान क लिये विरोधी है। लघुता की भावना हीन भावना का ही प्रतिरूप है।

(२) महामानव की कल्पित मूर्ति निश्चित लक्ष्य और आनन्दमय जीवन के लिये प्रेरित करती है। जबकि लघुता उस पतन की ओर ले जाती है।

(३) प्रतिमाओ के टूटन से उपलब्धिया क्या होगी ? यह समझ मे नही आता। निराशा और कुण्ठाए ही हाथ आ सकती हैं। कुशल शिल्पी की तरह उस अनगढ प्रतिमा को सुघड बनाया जा सकता है।

(४) खरे की कविता निराशा, वेदना, कुण्ठा से युक्त है जो लघुमानवाद की ही देन है। या कहो वर्मा जी की नकल है।

---

१ लक्ष्मीकान्त वर्मा, नयी कविता के प्रतिमान, पृ० १७०–१७१।

२ " " " पृ० १७१।

यह सिद्धान्त भी अमान्य है। क्योंकि स्वयं नये कवियों तथा आलोचकों को ही इस पर आस्था नहीं है। जगदीश गुप्त ने विरोध करते हुए कहा है—'क्या लघुमानव की भावना स्वाभिमान की प्रेरक हो सकती है? मेरे विचार से मानव स्वाभिमान तथा व्यक्तित्व से सम्पन्न मनुष्य अपने को लघु माने, यह आवश्यक नहीं है। यदि 'लघुता' का एक मानव मूल्य माना जाय तो यह निश्चित रूप से स्वाभिमान का विरोधी सिद्ध होगा।'—मेरे विचार में नयी कविता के प्रतिमानों की खोज में उत्साहवश लघुता पर अत्यधिक बल देना अनावश्यक है।'[1]

अब नयी कविता पर थोड़ा विचार कर लिया जाय। प्रयोगवाद का पर्यवसान 'नयी कविता' के रूप में हो गया है। प्रयोगवाद के शव की परीक्षा भी हो चुकी है लेकिन वही प्रयोगवाद 'नयी कविता' के रूप में विद्यमान है। अन्तर तो तथ्यों को लेकर आया है, अन्य सभी प्रयोगवादी विशेषताएं मूल रूप में 'नयी कविता' में विद्यमान है —

(१) भाषा में प्रवाह का अभाव है। गद्य का, लय की प्रचुरता है। 'अज्ञेय' ने इस बारे में कहा है 'बाह्य अनुशासन हेय नहीं तो गौण मान लेने पर आन्तरिक अनुशासन को यह अधिक महत्व देता है।—इससे कविता पंक्तियाँ केवल खंडित गद्य की पंक्तियाँ रह जाती हैं। अनुभूति का खरापन उक्ति की प्रभावशीलता उनमें रहती है, पर कविता का सर्वांङ्ग सौंदर्य उन्हें नहीं मिलता क्योंकि लय की बुनियादी मांगें वे पूरा नहीं करतीं।'—यह ठीक है कि यह दोष उस कविता में बहुधा पाया जाता है जिसे नयी कविता की अभिधा दी जा रही है।'[2]

(२) नयी कविता 'मैनरिज्म' (अभिव्यंजना रूढ़ि) में ग्रस्त है। एक रसता का उसमें प्रसार हो रहा है। डॉ० देवराज का कथन है 'नयी कविता में

---

१ जगदीश गुप्त नयी कविता, अंक ४, पृष्ठ १५–१६।

२ अज्ञेय 'नयी कविता' अंक २ पृष्ठ ३८।

(४) नये कवियो के पास मौलिक कथ्य बिल्कुल नही है।

(५) नयी कविता में प्रतिमान दोषपूर्ण, भ्रामक हैं। 'प्रयोग के लिये प्रयोग', 'लघु मानव', 'क्षण की अनुभूति', ग्रह की स्थापना में नये कवियो ने निरर्थक बौद्धिक कलाबाजियां की हैं। क्षण की अनुभूति ने कवियो की प्रतिभा को अल्पकालिक बना दिया है।

(६) नयी कविता मे विराट वैयक्तिक व्यक्तित्वो का अभाव है। नयी कविता ने दो चार भी विराट व्यक्तित्व वाले कवि नही दिये हैं। 'प्रसाद' के बाद हिन्दी कविता मे विराट व्यक्तित्व वाला कवि आया ही नही है। इसमे सामूहिक व्यक्तित्व भी विराट नही हो पाया है।

(७) नयी कविता आन्दोलन बन गई है जिसके संघटित तथा सामूहिक प्रयास से बहुत से अनपेक्षित, अयोग्य, प्रतिभाहीन कवि भी प्रसिद्धि प्राप्त कर रहे हैं। इन आन्दोलनो के दो चार मठाधीश बन गये जिनकी अन्धाधुन्ध कठमुल्लो ने नकल करनी शुरू करदी। 'अज्ञेय' को छोडकर कोई प्रतिभा शाली नेता ही नही हुआ। बाकी रचनाओ मे अनुकृति, आन्दोलन बोलने लगा, प्रतिभा नही।

(८) नयी कविता मे वक्तव्य अधिक दिये जा रहे है। कोई आत्मबोध, आत्म कथन मे तल्लीन है। कही शिक्षक की वाणी बोलती है, तो वैज्ञानिक दावे के नाम पर या किये जाते हैं। कमकर के टिफिन कैरियर मे पाई गई महाभिनिष्क्रमण की गाथा गाई जाती है तो डेड लेटर आफिस की टोकरी मे पडा पत्र वक्तव्य देने लगता है। लावारिस लाश के सिरहाने पर रखा हुआ टेम्प्रेचर चार्ट भी वक्तव्य देने लग गया तो परचून की दुकान से प्राप्त डायरी का पृष्ठ क्या न बोले। नया कवि, मैं कुत्ता हू, लाश हू गलिताग हू, वमन हू जारज हू, फेंका हुआ भ्रूण हू, खडित हू शहीद हू, दर्द, पीडा, हे पिता, हे पूर्वज ओ रे ओ के माध्यम से उपलब्धियो को नाप रहा है। भले आदमियो तुम कुत्ता हो लाश हो, जारज हो खडित हो तो बचारे पाठक को क्या लेना देना, तुम क्या उसकी खोपडी को

खंडित करने पर तुले हो। सीधे सीधे क्यों नहीं लिख देते हो कि मैं कुत्ता इन परिस्थितियों वश बना, अमुक इस कारण से बना।

निश्चय यह है नयी कविता ह्रासोन्मुख रही है। सन् ४० के बाद से ही हिन्दी कविता ने क्या उपलब्धियाँ दीं, किन विराट व्यक्तित्वों को दिया? यदि इन प्रश्नों पर सोचा जाये, तो सहज ही कहा जा सकता है कि उपलब्धियाँ अतिसामान्य है। विराट व्यक्तित्वों का पूर्णतया अभाव है। छायावादी युग पर नये कवियों ने कितने ही व्यंग्य कसे हैं लेकिन आत्मरक्षा में लीन, आक्षेपों में लिप्त नया कवि कब सम्हलेगा? छायावाद की उपलब्धियाँ युग मूल्यों के आधार पर है। उसने चार विराट व्यक्तित्व व्यक्तित्वों को दिया। लेकिन प्रगति प्रयोग युग से नयी कविता तक विराट व्यक्तित्वों का नितान्त अभाव सा ही है।

नयी कविता आन्दोलन के रूप में सफल रही है। सामूहिक प्रयास, सघटित योजना ने हिन्दी के महारथियों को हिला दिया है। परम्पराओं को तोड़कर नये मार्ग का अनुसंधान स्तुतनीय प्रयास है।

किन्तु नयी कविता निष्प्राण नहीं है। अज्ञेय' की प्रतिभा अकेली ऐसी है जो वट वृक्ष के समान छाई हुई है। अनेक नये कवि जिसके आश्रय में पल रहे हैं। अज्ञेय ही इस आन्दोलन का सच्चा नेता है जिसकी प्रतिभा निरन्तर विकासशील है। तार सप्तक के कवि, 'दूसरा सप्तक' के कवि अपने स्थान पर जमे रहे यद्यपि विकास की परम्परा में उनका अपना महत्व है। शमशेर बहादुरसिंह अपने साथियों को पीछे छोड़कर बहुत आगे बढ़ गये हैं। 'तीसरा सप्तक' में मग्न वात्स्यायन, केदारसिंह का व्यक्तित्व प्रबल है। दोनों कवि नितान्त भिन्न मार्गों को अपनाये हुए बढ़ते जा रहे हैं। 'नयी कविता' के पत्रों में प्रकाशित कुछ कविताएं भी नयी कविता का सच्चा प्रतिनिधित्व करती है। अन्य नये कवियों में नरेश मेहता, शकुन्त माथुर भारती, गिरिजाकुमार माथुर,

जगदीश गुप्त, कीर्ति चौधरी, रमासिंह, अनन्तकुमार पाषाण, अजितकुमार, नित्यानन्द तिवारी ने अच्छी कविताएं लिखी हैं।

इन दिनों 'नयी कविता' में एक प्रवृत्ति और दृष्टिगोचर हो रही है कि कवि आत्मालोचन में लगे हुए हैं। यदि नयी कविता को अधिक सुव्यवस्थित मार्ग पर चलाया जाय तो निश्चित रूप से हिन्दी काव्य में उसका विशिष्ट स्थान बना रह सकता है।



८ | न-के-न वाद

'अज्ञेय' के प्रयोगवाद की प्रतिक्रिया में बिहार के कतिपय कवि, नलिन विलोचन शर्मा, केशरीकुमार एवं नरेश द्वारा एक नये वाद का सूत्रपात हुआ जो 'न-के-न-वाद' के नाम से प्रसिद्ध हुआ। उपर्युक्त नाम प्रवर्तकों के नामों के प्रारम्भिक अक्षर के आधार पर अभिहित किया गया। वैसे प्रवर्तकों द्वारा इस वाद के लिये अन्य नाम 'प्रपद्यवाद' भी सुझाया गया है। उनके मतानुसार प्रयोगवाद के लिये 'प्रपद्यवाद' कहना उत्तम है, साथ ही वे प्रयोगवाद के प्राचीन स्वरूप से अत्यन्त असन्तुष्ट है।[1]

नकेनवादी 'अज्ञेय' द्वारा प्रवर्तित प्रयोगवाद को प्रयोगशील मानते हैं न कि यथार्थ प्रयोगवाद। वे अपने को सच्चे प्रयोगवादी मानते हैं और नलिन विलोचन शर्मा को प्रयोगवाद का वास्तविक प्रवर्तक। इन कवियों द्वारा 'प्रपद्य द्वादश सूत्री' में प्रपद्यवाद के बारह सूत्रों से युक्त एक घोषणा पत्र प्रस्तुत किया है जिसमें प्रथम बार प्रयोगवाद और प्रयोगशीलता के अन्तर को स्पष्ट किया है।[2] प्रपद्यवाद के बहुचर्चित तथा बहु आलोचित सूत्र इस प्रकार हैं[3] —

(१) प्रपद्यवाद भाव और व्यंजना का स्थापत्य है।

(२) प्रपद्यवाद स्वतन्त्र है; इसके लिये शास्त्र या दल निर्धारित नियम अनुपयुक्त हैं।

---

१ केशरीकुमार, प्रपद्यवाद की दार्शनिक पृष्ठभूमि-अवन्तिका, जनवरी, ५४।

२ " " "

३ " " "

(३) प्रपद्यवाद महान पूर्ववर्त्तियो की परिपाटियो को भी निष्प्राण मानता है।

(४) प्रपद्यवाद दूसरो के अनुकरण की तरह अपना अनुकरण भी वर्जित समझता है।

(५) प्रपद्यवाद को मुक्त काव्य की नही, स्वच्छन्द-काव्य की स्थिति अभीष्ट है।

(६) प्रयोगशील प्रयोग को साधन मानता है प्रपद्यवादी साध्य।

(७) प्रपद्यवाद की दृक्वाक्यपदीय प्रणाली है।

(८) प्रपद्यवाद के लिए जीवन और कोष कच्चे माल की खान हैं।

(९) प्रपद्यवादी प्रयुक्त प्रत्येक शब्द और छन्द का स्वय निर्माता है।

(१०) प्रपद्यवाद दृष्टिकोण का अनुसन्धान है।

(११) प्रपद्यवाद मानता है कि पद्य म उत्कृष्ट केन्द्रण (पद्य के लयात्मक और सगीतात्मक उपादानो के फलस्वरूप उसमे अतिरिक्त शब्दो के बिना ही रागात्मक घनत्व सन्निविष्ट हो जाता है) होता है और यही गद्य और पद्य म अन्तर है।

(१२) प्रपद्यवाद मानता है कि चीजो का एकमात्र सही नाम होता है।

केसरीकुमार ने अपने अनेक लेखो मे नकेनवाद की प्रतिस्थापना करने के लिये बल दिया है। नकेनवादियो का 'नकेन के प्रपद्य' नाम से चिर प्रतीक्षित सग्रह भी 'परपशा सवलित रूप मे' प्रकाशित हुआ है। नकेनवादियो द्वारा कोई नया दृष्टिकोण इसमें प्रस्तुत नही किया गया है। केसरीकुमार के लेखो की पुनरावृत्ति मात्र ही मिलती है।

प्रयोगवाद और प्रपद्यवाद में भेद इस प्रकार स्पष्ट किया गया है —

(१) अज्ञेय द्वारा 'सप्तकों' मे जिस काव्य का शील निरूपण हुआ है, वह प्रयोगवादी न होकर प्रयोगवाद है।

(२) प्रयोगवादी के लिये प्रयोग साध्य है, अज्ञेय उसे साधन मानते हैं।[1]

(३) 'प्रयोगशील' उनकी सवेदनाओं और साधारणीकरण एवं निवेदन के दबाव में रहने के कारण आपदधर्मी बना रहता है। समझौते की समस्या का उलझन और साधारणीकरण की युगल उपलब्धि के सैद्धान्तिक प्रयास की अर्जित समस्या है उसके लिये बनी रहती है।

(४) अज्ञेय इस स्वीकार नही करते कि 'स्वांत सुखाय' कोई लिख सकता है।[2]

(५) प्रयोग को साधन बनाने के कारण प्रयोगशील कविता मुक्त होगी स्वच्छन्द नही।

(६) अज्ञेय 'साधारणीकरण', 'कस्मैदेवाय' आदि प्रश्नो को महत्व देते हैं।[2]

(७) अज्ञेय अतीत और परम्परा को कुछ अंशो तक स्वीकार करते हैं।[3]

(८) अज्ञेय के अनुसार प्रयोग सत्य का साधन है, उस सत्य की उपलब्धि ही उनका ध्येय है।[4] क्या अज्ञेय सत्य की-जिसकी खोज मे वह प्रयोग कर रहे हैं, उपलब्धि (?) के बाद कविता करना छोड देंगे। प्रयोक्ता की गोताखोर से तुलना भी कोई अर्थ नही रखती। गोताखोर अपरिचित

---

१ अज्ञेय, दूसरा सप्तक, भूमिका।

२ वही।

३ वही।

४ वही।

५ केसरीकुमार, (प्रयोगवाद और उसके आलोचक) पाटल मार्च ५३-जुलाई ५३ तक।

सागर से परिचित मोती निकालता है, जिसे पुराने जमाने में कभी लहरों ने किनारे फेंका होगा। कवि परिचित वस्तु से अपरिचित भाव सम्बन्ध लाता है। गोताखोर का मोती पाना बहुत कुछ भाग्य पर निर्भर है, कवि का शक्ति और केन्द्रीकरण पर। मोती बहुत कुछ मुस्तकिल है, काव्य के भाव मूल्य और व्यंजना के उपादान नहीं।

इन मतभेदों के साथ प्रयोगवादियों ने अपनी कविता के उद्देश्यों के बारे में विचार व्यक्त किये हैं —

(१) प्रतीक उनके लिये साधन है, साध्य नहीं।

(२) प्रयोगों की आवश्यकता शाश्वत है, अतः प्रयोग की परम्परा कभी समाप्त नहीं होती।

(३) कविता भावों, विचारों, दर्शनों, छन्दों, पिंगल अथवा अलंकार आदि से नहीं लिखी जाती। वह केवल शब्दों से लिखी जाती है, जिसके निर्माता वे स्वयं हैं।

(४) कविता में सदा ही पुनर्निर्माण हुआ है।

(५) *कविता का बुद्धि से सम्पर्क टूटना खेद-जनक है कारण बौद्धिकता काव्य का प्राण है।*

(६) जटिल संवेदनाओं को लेकर भी कवि कवि बना रह सकता है। सरल संवेदना के दो ही सनातन अधिकारी हैं— बालक और गंवार।

(७) साधारणीकरण की नयी और पुरानी दोनों ही मान्यताएँ व्यर्थ हैं अतः त्याज्य हैं। उनके काव्य के लिये एक प्रतिशत पाठक ही ठीक है— कारण काव्य कभी भी जन साधारण की वस्तु नहीं रहा।

(८) उनके काव्य की दुरूहता के कई कारण हैं पर जो अनिवार्य हैं। दुरूहता का वास्तविक उत्तरदायित्व पाठकों तथा आलोचकों पर है कवि पर नहीं।

(९) भाषा के प्रश्न पर उन्हें 'अज्ञेय' के विचार बहुत ही मान्य हैं। यद्यपि प्रेषणीयता उन्हें स्वीकार नहीं। प्रेषण गद्य का गुण है काव्य का नहीं।

(१०) उपचेतन की समस्या काव्य की सनातन समस्या है। 'फ्री ऐसोसियशन' काव्य के लिये अनिवार्य है।[१]

प्रपद्यवादियों ने अज्ञेय की मान्यता को ही खंडित करने का प्रयास नहीं किया है अपितु गणमान्य आलोचक नन्ददुलारे वाजपेयी तथा डॉ० नगेन्द्र पर भी आघात किये हैं। विषयवस्तु, शैली शिल्प की दृष्टि से प्रयोगवादियों की कतिपय विशेषताएं इस प्रकार हैं —

१ प्रयोगों की अतिवादिता से कविता दुरूह, क्लिष्ट, भारग्रस्त हो गई है।

२ कमिंग्ज जैसी शैली का अनुकरण किया है, यद्यपि नकेनवादी नकल को बुरा समझते हैं —

सेठ — चेह — रोवाला—
छाये हुए सिग
रेट के धुए — सा
कश-म-कश म ग्रेव
नाह हो जाता है।[२]

३ कविताएं व्यक्तिवादी, निष्प्राण, बौद्धिकता से युक्त हैं।

४ सौंदर्य बोध अश्लीलत्व की ओर उन्मुख हो गया है।

समझे न वर्मा जो, वह है बम्रोत ग्रली
(दो सतरे ओ जिन ! हा)

---

१ द्रष्टव्य, केसरीकुमार द्वारा लिखित निबन्ध 'प्रयोगवाद और उसके आलोचक' (पाटल) तथा प्रपद्यवाद की दार्शनिक पृष्ठभूमि (अवन्तिका)।
२ केशरीकुमार—'नकेन के प्रपद्य' प्रपद्य प्रस्थ।

नीबू नही, नीबू नही, नही डार्लिंग–नरेश–श्रोतू ।
जैसे टेस्ट ट्यूब म भी बेबी भर दे
रख मिस का मिसपन, रहे, अक्षत यौवना ।'[२]

५ ऑटो एसोसियेशन के प्रयोग ने काव्य को दुरूह अस्पष्ट बना दिया है ।

६ अधिकाश कविताए प्रभावोत्पादक तथा अग्रहणीय है ।

७ यह प्रयोगवाद का ही एक स्वरूप है । प्रयोगवाद जिन बातो को गोल मोल कर गया । प्रपद्यवाद ने उसे खोलकर रख दिया है ।

८ प्रयोगवाद ने जहा अपने को एक सीमित दायरे में बाध दिया था, नकेनवाद ने उसे उच्छ खलित रूप प्रदान कर दिया था ।

९ प्रयोगवाद में कुण्ठाए और विकृतिया के बावजूद भी काव्यात्मक थी जबकि प्रपद्यवाद मे इसका पूर्ण अभाव है ।

इस प्रकार प्रपद्यवाद भी ह्रास युग के पतनोन्मुख शृङ्खला म एक कडी है । यह हिन्दी काव्य जगत् का सौभाग्य है कि नकेनवाद के इस एक मात्र संग्रह के पश्चात् इस भौंडी कविता का अवसान हो गया ।



२ नरेश, 'नकेन के प्रपद्य', मिसमोमिसा ।

८| उपसंहार

उपलब्धि और काव्य में स्थिति की दृष्टि से विवेच्य दशक की कविता रम्परागत तथा अभिनवोन्मुख के बीच एक महत्त्वपूर्ण कड़ी रही है। प्रबन्ध ाव्या मे 'पार्वती,' 'वर्द्धमान,' 'उर्मिला,' एकलव्य,' 'सेनापति कर्ण,' ाचीन परम्परा से प्रेरित तथा मौलिक उद्भावनाओ से युक्त हैं। उन्होंने महाकाव्य परम्परा को विकसित किया है। अभाव इस बात का कि कोई भी महाकाव्य सर्वकालिक और सर्वजनीन महत्त्व का नहीं ान सका है। वे देशकाल की संकुचित परिधियो मे आबद्ध है। लेकिन सके आगामी उज्ज्वल भविष्य की कल्पना की जा सकती है। सद्य प्रकाशित उर्वशी इसी शृंखला की देन है जो कि विवेच्य दशक के बाद का स्वागत है।

प्रगति प्रयोग धाराओ के गीतकारो की देन नगण्य सी है। प्रगतिवादियो में रांगेय राघव, डॉ० रामविलास शर्मा, नागार्जुन, 'सुमन' ने सुन्दर काव्य लेखा है। गीतकारो मे सुमित्रा कुमारी सिन्हा, 'अचल,' 'नीरज,' शम्भूनाथसिंह, वीरेन्द्र मिश्र के गीतों से कुछ धैर्य बधता है।

नयी कविता में भाषा की प्रविति मे अभाव सा आ गया है। गद्य में लय की प्रचुरता है। अज्ञेय का इस बारे में कथन है कि 'बाह्य अनुशासन' हेय नहीं तो गौण मान लेने पर आंतरिक अनुशासन को महत्त्व देता है। इससे कविता को पंक्तियाँ केवल खण्डित गद्य की पंक्तियाँ मात्र रह जाती हैं।[1]

नयी कविता 'मैनरिज्म' (अभिव्यंजना रूढ़ि) से भी ग्रस्त है। एक रसता का उसमें अभाव है। डा० देवराज का कथन है कि नयी कविता

---

१ अज्ञेय, नयी कविता अंक २, पृष्ठ ३८।

में जिस अनुपात से एकरसता बढ रहा है, उसी अनुपात में नयापन कम हो रहा है।[१] अभिमन्यु, 'चक्रव्यूह, 'बौने' आदि प्रतीक न रह कर अभिप्राय बन गये हैं। जब एक लब्ध प्रतिष्ठित कवि अभिमन्यु द्वारा प्रयुक्त रथ के टूटे पहिये व अस्त्र की प्रतीक के रूप में प्रयुक्त करता है तो फिर अन्य कवियों के लिए राम, कृष्ण अर्जुन, युधिष्ठिर, द्रोणाचार्य, कर्ण (सूर्य पुत्र), अश्वत्थामा, भीष्म, राधा, सीता, द्रोपदी, बृहनला आदि पौराणिक पात्र प्रतीकों का धड़ल्ले से प्रयोग करने का मार्ग खुल जाता है। जब वह शरद चांदनी को अंजुरी भर पीने लगता है तो अन्य कवि धूप, किरण आदि को भी अंजुरी भर पीने लगते हैं। जब एक कवि आत्मा में भूठे माथे पर शर्म और हाथों में 'टूटी तलवारों की मूठ' वाली पराजित पीढी का गीत गाने शुरू करता है तो अन्य कवि भी 'हम नये छोटे लोग,' 'हम सब बौने हैं', 'हम लघु हैं, नगण्य हैं' आदि की ऐसी दादुर रट लगाते हैं, कि जिससे सुनने वाले के मन में इस तरह की कविताओं के प्रति वितृष्णा उत्पन्न हो जाती है। इस प्रकार नयी कविता की भी अभिव्यंजना रूढ़ियां बनती जा रही हैं, जिसे फैशन या मैनरिज्म का रोग मानना होगा।[२]

जैसा कि संकेत किया जा चुका है कि इस प्रकार के बहु प्रयुक्त या घिसे पिटे नारों के ढंग के प्रयोगों के अतिरिक्त समान या मिलते जुलते शब्द प्रयोगों की बहुलता भी बासीपन या अनुकृति की द्योतक है, जैसे 'जलपाखी,' 'वनपाखी,' 'अन्धायुग' 'अन्धी गली,' 'अन्धी प्रतिक्षाओं' अन्धी पुत्रियों,' अन्धी आस्थाओं,' दिगम्बर आस्थाओं,' 'मुमुर्षयातनाओं,' मयूर पंखी,' 'जिजीविषाओं,' 'अंजुरी भर धूप' अंजुरी भर चांदनी,' 'अंजुरी भर फूल,' 'भटकै जल यात्री', 'सर्प भटकी यात्राएं, फूल यात्रा,' दिग्विजय का अश्व,' 'चक्रव्यूह,' 'कवच और कुण्डल का दान, 'आज का दिन' 'आज का बच्चा,' 'मेरे प्रभु' 'मेरे परमेश्वर,' 'मर्यादा,' आस्था, 'कुण्ठा, 'अहम्, शकापुत्र,' 'शाका का वृक्ष,' 'परिधि,' 'केन्द्र,' 'त्रिभुज,' 'चतुर्भुज', 'बिन्दु', वृत,' 'मुट्ठी की बालूसा खिसकना,' मर कर अन्धे प्रेत-सा भटकना आदि। शब्द प्रयोगों की यह अनु

---

१ डा० देवराज, नयी कविता, अंक ५–६, पृष्ठ २६।

२ डॉ० शम्भूनाथसिंह, नयी कविता अङ्क ५–६, पृष्ठ ३३।

वृत्ति और प्रावृत्ति स्यात कवियां तक में मिलती है ।[1] गिरिजा कुमार माथुर ने भी इस बात का अनुमोदन किया है ।[2]

परिणामत नयी कविता ह्रासोन्मुख हो रही हैं। इन दिनों नयी कविता में एक और प्रवृत्ति दृष्टिगोचर हो रही है कि कवि आत्मालोचन में लगे हुए है। यदि नयी कविता को अधिक सुव्यवस्थित मार्ग पर चलाया जाय तो निश्चित रूप से हिन्दी काव्य में उसका विशिष्ट स्थान बना रह सकता है।

दशक की उपलब्धियां अति सामान्य हैं। विराट व्यक्तित्वों का पूर्णतया अभाव है।



1 डॉ० शम्भूनाथसिंह नयी कविता, अंक ५ ६ पृष्ठ ३३ ३३४।

2 गिरिजाकुमार माथुर, नयी कविता, अंक ५-६, पृष्ठ ४०।

	६ बगाल का अकाल १० सूत की माला
	११ सगरगिणी १२ मिलन यामिनी १३ सोपान
	१४ प्रणय पत्रिका १५ प्रारम्भिक रचनाए भाग१
	१६ प्रारम्भिक रचनाए भाग २
	१७ बुद्ध और नाचघर १८ धार के इधर उधर
भगवतीचरण वर्मा	१ प्रेम सगीत २ मानव ३ एक दिन ४ मधुकण ५ कृष्णायन
रामेश्वर शुक्ल 'अचल'	१ अपराजिता २ किरण बेला ३ करील ४ लाल चूनर ५ वर्षांत के बादल ६ विराम चिन्ह
हरिकृष्ण प्रेमी'	१ रूप दर्शन २ आखो मे ३ वदना के बोल ४ अग्निगान
माखनलाल चतुर्वेदी	१ हिम किरकटी २ हिम तरंगिनी ३ माता ४ समर्पण ५ युग चरण
बालकृष्ण शर्मा नवीन'	१ अपलक २ क्वासि ३ रश्मि रेखा ४ बिनोवा स्तवन
जगन्नाथ प्रसाद 'मिलिन्द'	१ नवयुग के गान २ बलि पथ के गीत ३ जीवन सगीत ४ भूमि की अनुभूति
उदयशकर भट्ट	१ तक्षशिला २ अमृत और विष ३ मानसी
केदारनाथ मिश्र प्रभात	१ कर्ण २ कैकेयी ३ तप्तगृह ४ ऋतम्वरा
आरसीप्रसाद सिंह	१ कलापी २ सचयिता ३ प्रेम गीत ४ जीवन और यौवन ५ नई दिशा
गोपालसिंह नेपाली	१ पाचजन्य २ नवीन
सुमित्राकुमारी सिन्हा	१ विहाग २ आशापर्व ३ पथिनी ४ बोलो के देवता
जानकी वल्लभ शास्त्री	१ रूप अरूप २ तीर तरग ३ शिप्रा मेघ गीत ५ अवन्तिका ६ गाथा

नरेन्द्र शर्मा	१ प्रभात फेरी, २ कामिनी, ३ प्रलाशवन ४ प्रवासी के गीत, ५ मिट्टी और फूल ६ रक्त चन्दन, ७ अग्नि शस्य, ८ हंसमाला, ९ कदलीवन, १० द्रोपदी,
शिवमंगलसिंह 'सुमन'	१ हिल्लोल २ जीवन के गान, ३ प्रलयसृजन ४ विश्वास बढ़ता ही गया ५ पर आंखें नहीं भरीं
रामविलास शर्मा	१ रूपतरंग
रांगेय राघव	१ अजेय खंडहर, २ पिघलते पत्थर ३ मेधावी, ४ पांचाली, ५ राह के दीपक
केदारनाथ अग्रवाल	१ नींद के बादल, २ युग गंगा ३ लोक और अलोक
नागार्जुन	१ युगधारा, २ प्रेत का बयान ३ सतरंगे पंखों वाली
'अज्ञेय'	१ चिन्ता, २ इत्यलम्, ३ बावरा अहेरी ४ हरी घास पर क्षणभर, ५ इन्द्र धनु रौंदे हुए ये ६ अरी ओ करुणा प्रभामय
त्रिलोचन	१ धरती, २ दिगंत
प्रभाकर माचवे	१ स्वप्न भंग, २ अनुक्षण
गिरिजाकुमार माथुर	१ धूप के धान
भारतभूषण अग्रवाल	१ छवि के बंधन, २ जागते रहो, ३ मुक्तिमार्ग ४ जो अप्रस्तुत मन
शमशेरबहादुरसिंह	१ कुछ कविताएं
धर्मवीर 'भारती'	१ ठण्डा लोहा, २ अंधा युग, ३ कनुप्रिया ४ सात-गीत-वर्ष
नरेश मेहता	१ बन पाखी सुनो
जगदीश गुप्त	१ नाव के पांव, २ शब्द-दंश

शम्भूनाथसिंह	१ रूप रश्मि, २ छायालोक, ३ उदयाचल ४ मन्वन्तर, ५ दिवालोक, ६ माध्यम मे
सर्वेश्वरदास सक्सेना	१ काठ की घटियां
कुंवर नारायण	१ चक्रव्यूह
अजीतकुमार	१ अकेले कण्ठ की पुकार
श्रीकान्त वर्मा	१ भटका मेघ
केदारनाथसिंह	१ अभी बिल्कुल अभी
कीर्ति चौधरी	१ कवितायें
कु० रमासिंह	१ समुद्र के फेन
डा० देवराज	१ धरती और स्वर्ग २ उर्वशी ने कहा
दुष्यन्त कुमार	१ सूर्य का स्वागत
गोपालदास 'नीरज'	१ आसावरी, २ बादर बरस गयो, ३ दो गीत ४ विभावरी ५ प्राण-गीत, ६ नदी किनारे
रामावतार 'त्यागी'	१ आठवां स्वर
बालस्वरूप 'राही	१ मेरा रूप तुम्हारा दर्पण
रामेश्वर खडेलवाल	१ हिमाचल
रमानाथ अवस्थी	१ रात और शहनाई
वीरेन्द्र मिश्र	१ गीतम, २ लेखनी वेला
हंसकुमार तिवारी	१ रिमझिम २ अनागत
बरसानेलाल चतुर्वेदी	१ रग और व्यग्य
गोपालप्रसाद व्यास	१ चले आ रहे हैं
रमई 'काका'	१ पाकिट मार से होशियार
बेढ़ब 'बनारसी	१ बिजली
लोकप्रिय कवि संग्रह	१ दिनकर (सम्पादक मन्मनाथ गुप्त) २ 'बच्चन (सम्पादक चन्द्रगुप्त विद्यालंकार) ३ 'अचल' (स० डॉ० पद्मसिंह शर्मा 'कमलेश) ४ भगवतीचरण वर्मा (स० अमृतलाल नागर)

काव्य संग्रह

१ तार सप्तक (स० 'अज्ञेय'),
२ दूसरा सप्तक (स० 'अज्ञेय')
३ तीसरा सप्तक (स० 'अज्ञेय')
४ राजधानी के कवि (स० रामावतार त्यागी और गोपाल कृष्ण कौल)
५ रूपाम्बरा (स० स० ही० 'अज्ञेय')
६ ताज की छाया में (स० नियमतसिंह चौहान)
७ काव्यधारा (स० नियमतसिंह चौहान एवं गोपाल कृष्ण कौल)
८ नई कविता भाग १ (स० जगदीश गुप्त)
९ " भाग २
१० " भाग ३ "
११ " भाग ४ "
१२ भाग ५ ६
१३ निकष भाग १ (स० धर्मवीर भारती, लक्ष्मीकान्त वर्मा)
१४ निकष भाग २ (स० धर्मवीर भारती लक्ष्मीकान्त वर्मा)
१५ निकष भाग ३ (स० धर्मवीर भारती, लक्ष्मीकान्त वर्मा)
१६ निकष भाग ४ (स० धर्मवीर भारती
१७ भारती (स० पंत राव, नगेन्द्र)
१८ कविताएं (१९५४)
१९ कविताएं (१९५७)
२० कविताएं (१९५८)
२१ नकेन के प्रपद्य (नलिनी विलोचन शर्मा, नरेश, केसरीकुमार)

गए	१	प्रतीक (स० अज्ञेय) २ भारतेंदु
	३	गृहिणी, ४ सरस्वती
	५	विशाल भारत, ६ आलोचना
	७	सम्मेलन पत्रिका, ८ कल्पना
	९	युगचेतना, १० नया पथ, ११ हंस
	१२	नया साहित्य, १३ कृति, १४ आजकल
	१५	राष्ट्रवादी १६ नये पत्ते १७ पाटल
	१८	अजंता, १९ संगम, २० राष्ट्र भारती
	२१	नया समाज २२ नयी चेतना
	२३	समालोचन, २४ जागरण, २५ ज्ञानोदय
	२६	कविता, २७ साहित्य संदेश
	२८	जन भारती, २९ धर्मयुग
	३०	साप्ताहिक हिंदुस्तान

ोचना ग्रंथ

ार्य रामचंद्र शुक्ल	१	हिंदी साहित्य का इतिहास
	२	चिंतामणि भाग २
आचार्य नंददुलारे वाजपेयी	१	आधुनिक साहित्य बीसवी शताब्दी
	२	आधुनिक साहित्य
	३	नया साहित्य नये प्रश्न
डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी	१	नया साहित्य
डा० नगेन्द्र	१	विचार और विश्लेषण
	२	विचार और विवेचन
डा० केसरीनारायण शुक्ल	१	आधुनिक काव्य धारा सांस्कृतिक स्रोत
डा० रांगेय राघव	१	प्रगतिशील साहित्य के मान दंड
	२	काव्य, कला और यथार्थ
	३	आधुनिक हिंदी कविता में प्रेम और शृङ्गार
	४	आधुनिक हिंदी कविता म विषय और शैली,

पत्रिकाएं

१ प्रतीक (स० अज्ञेय) २ भारतेन्दु
३ सुगृहिणी, ४ सरस्वती
५ विशाल भारत, ६ आलोचना
७ सम्मेलन पत्रिका, ८ कल्पना
९ युगचेतना, १० नया पथ, ११ हंस
१२ नया साहित्य, १३ कृति, १४ आजकल
१५ राष्ट्रवादी १६ नये पत्ते १७ पाटल
१८ अजन्ता, १९ सगम, २० राष्ट्र भारती
२१ नया समाज, २२ नयी चेतना
२३ समालोचन, २४ जागरण, २५ ज्ञानोदय
२६ कविता, २७ साहित्य सन्देश
२८ जन भारती, २९ धर्मयुग
३० साप्ताहिक हिन्दुस्तान

आलोचना ग्रन्थ

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल
१ हिन्दी साहित्य का इतिहास
२ चिंतामणि भाग २

आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी
१ आधुनिक साहित्य बीसवी शताब्दी
२ आधुनिक साहित्य
३ नया साहित्य नये प्रश्न

डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी
१ नया साहित्य

डा० नगेन्द्र
१ विचार और विश्लेषण
२ विचार और विवेचन

डा० केसरीनारायण शुक्ल
१ आधुनिक काव्य धारा सांस्कृतिक स्रोत

डा० रागेय राघव
१ प्रगतिशील साहित्य के मान दंड
२ काव्य, कला और यथार्थ
३ आधुनिक हिन्दी कविता में प्रेम और शृङ्गार
४ आधुनिक हिन्दी कविता म विषय और शैली,

डॉ० रामविलास शर्मा	१	स्वाधीनता और राष्ट्रीय साहित्य
	२	प्रगति और परम्परा
	३	प्रगतिशील साहित्य की समस्याए
श्री शिवदानसिंह चौहान	१	हिन्दी साहित्य के अस्सी वर्ष
	२	साहित्यानुशीलन, ३ प्रगतिवाद
डा० देवराज	१	छायावाद का पतन
श्री प्रकाशचन्द्र गुप्त	१	साहित्यधारा, २ नया हिन्दी साहित्य
	३	हिन्दी साहित्य की जनवादी धारा
	४	आधुनिक हिन्दी साहित्य, एक दृष्टि
श्री रामेश्वर शुक्ल 'अचल'	१	समाज और साहित्य
डा० नामवरसिंह	१	आधुनिक साहित्य की प्रवृतिया
	२	छायावाद
डॉ० पट्टाभि सीता रमया	१	काग्रेस का इतिहास
डा० भोलानाथ	१	हिन्दी साहित्य
डॉ० धर्मवीर भारती	१	प्रगतिवाद
डा० शिवकुमार मिश्र	१	हिन्दी निबन्ध, २ नया हिन्दी काव्य
डा० शम्भुनाथसिंह	१	छायावाद युग
डॉ० रवीन्द्रसहाय वर्मा	१	हिन्दी साहित्य पर आग्ल प्रभाव
	२	निराकु
श्री अज्ञेय	१	आत्मनपद
डॉ० रघुवश	१	प्रकृति और काव्य
श्री प्रतापनारायण टडन	१	हिन्दी साहित्य, पिछला दशक
डा० विश्वम्भरनाथ उपाध्याय	१	आधुनिक हिन्दी काव्य
श्री लक्ष्मीकान्त वर्मा	१	नयी कविता के प्रतिमान

ENGLISH LITERATURE

A C Ward	Twentieth century literature
A. S Colline	English literature of 20th century
A Yusuf Ali	A Cultural history of India during British time
B Ifor Evans	English literature between the wars
Douglas Bush	English poetry main currents
F L Lucas	Literature and psychology
Geoffrey Bullough	The trend of modern poetry
H J C Grierson	A critical history of English poetry
Ishwari Prasad	A modern history of India
J M Cohen	Poetry of this age
Jean Paul Sartre	Existentialism and humanism
Joseph T Shipley	Dictionary of world literary terms
K Ahmed	Psycho Analysis and literary criticism
K Markand	The manifesto of the communist party
F Engels	
L Abercrombie	The theory of poetry
Lois Mac Niece	Modern Poetry
Maxwell	Poetry of T S Eliot
R A Scott James	Fifty years of English literature
Sherard Vines	Hundred years of English literature
T S Eliot	What is a classicy
"	The sacred wood
"	Selected essays
"	Point of view
"	Waste land
"	Four quartets
Vivian de Soda Pinto	Crisis in English Poetry
Wilson	Axil s castle

—o—

ENGLISH LITERATURE

A C Ward	Twentieth century literature
A. S Colline	Englfsh literature of 20th century
A Yusuf Ali	A Cultural history of India during British time
B Ifor Evans	English literature between the wars
Donglas Bush	English poetry main currents
F L Lucas	Literature and psychology
Geoffrey Bullough	The trend of modern poetry
H J C Grierson	A critical history of English poetry
Ishwari Prasad	A modern history of India
J M Cohen	Poetry of this age
Jean Paul Sartre	Existentialism and humanism
Joseph T Shipley	Dictionary of world literary terms
K Ahmed	Psycho Analysis and literary criticism
K Markand F Engels	The manifesto of the communist party
L Abercrombie	The theory of poetry
Lonis Mac Niece	Modern Poetry
Maxwell	Poetry of T S Eliot
R A Scott James	Fifty years of English literature
Sherird Vines	Hundred years of English literature,
T S Eliot	What is a classic}
,,	The sacred wood
,,	Selected essays
,,	Point of view
,,	Waste land
,,	Four quartets
Vivian de-Soda Pinto	Crisis in English Poetry
Wilson	Axil's castle

—o—